॥ ब्रह्मवाद ॥

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : सहयोग प्रकाशन
१.श्रीलक्ष्मीदास कापडिया, १६८, रुईकर कॉलोनी, कोल्हापुर ६५१३६७.
२.श्रीमती क.आर.काणकिया, ६२, स्वस्तिक सो., चौथा रस्ता, जुहु स्कीम, विलेपार्ले (प). ४०००५६
३.बिनाबेन नविनचन्द्र, कांदीवलि, मुंबई ४०००६७
४.सवितावेन शाह, कांदीवलि, मुंबई ४०००६७
५.जयश्रीबेन कडकिया, कांदीवलि, मुंबई ४०००६७

आलेखप्रस्तुति : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : पवित्रा एकादशी वि.सं.२०७२.

प्रति : ५००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : शैलेष प्रिन्टर्स्,
१४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई : ४०००५९.

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

सम्पादकीय

'श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट्'द्वारा आयोजित विविध आन्तरिक संगोष्ठीकी शृंखलामें 'ब्रह्म संगोष्ठी'को आयोजन मुंबईमें कांदिवली स्थित ठठ्ठाई भाटिया हॉल्में वि.सं.२०७२में भयो हतो. यामें ब्रह्मके विभिन्न पहलूनको विशद्‌रूपसु विचार-मंथन भयो हतो. प्रतियोगिनने अपने-अपने विचार्यविषयको यथामति संकलित करके प्रस्तुति करी हती. संगोष्ठीके उपक्रममें गो.श्रीश्याममनोहरजीने ब्रह्मविषयक वैदिक एवं अवैदिक दर्शनको तुलनात्मक विचार प्रस्तुत कियो हतो वाको लिपिबद्ध करके यहां ग्रंथित कियो हे. याके अलावा उनके अन्य ब्रह्म विषयक आलेखकनको यहां संग्रहित कियो हे. ग्रन्थकी भूमिकाके रूपमें वैदिक और वैज्ञानिक चिन्तनमें ब्रह्मांडकी अवधारणाको आलेख प्रस्तुत कियो हे. ग्रंथारंभमें 'आनन्दमीमांसा', द्वितीय क्रममें ब्रह्मवाद, पश्चात् ब्रह्मवादी और सापेक्षतावादी चिन्तन और परिशिष्टमें 'तादात्म्यमथवा शून्यम्', या क्रममें ग्रन्थबद्ध कियो हे.

श्रीअंबिकादत्तजीने या विषयपे अपनो पुरोवाक् लिखके ग्रन्थकी शोभावृद्धि करी हे. तहे दिलसे हम साधुवाद प्रकट करे हें.

ये छोटी पुस्तिका तत्त्वात्मक दृष्टिसु इतनी दमदार हे के वाकु संजोवेके लिये कई सुज्ञ परिजनोंने अपनो योगदान दियो हे जामें श्रीअशोक शर्मा, श्रीअतुल्य शर्मा, श्रीयोगेश रायठठ्ठा, श्रीप्रवीण डढाणिया, श्रीपीयूष गोधिंया, श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला, श्रीअनिल भाटिया, श्रीजगदीश शेठ अविस्मरणीय हे. आवरक चित्र चि.ख्याति भुलाने बनायो हे. संपूर्ण मुद्रणकार्यको उत्तरदायित्व श्रीमनीष बाराईने वहन कियो हे.

वि.सं.२०७२.पवित्रा एकादशी

परेश शाह
मनीषा शाह

।। पुरोवाक् ।।

भारतीय आध्यात्मिक-दार्शनिक चिन्तन-परम्परामें आरम्भसे ही दर्शनके विभिन्न सम्प्रदायोंका अस्तित्व रहा है. निगमागमीयआकर स्रोतोंमें मूलित इन दर्शनोंका विकास सूत्र भाष्य वार्तिक टीका टिप्पणी एवं प्रकरण ग्रन्थोंके माध्यमसे अविच्छिन्नरूपसे होता रहा है. आचार्य और गुरु-शिष्य परम्पराके माध्यमसे भारतीय दर्शनोंकी ऐसी प्रवहमानता प्राचीनकालमें जैसी जीवन्त रही वैसी ही आज भी न्यूनाधिकरूपसे बनी हुई है. भारतमें आज भी ऐसे आचार्यकुल हैं जो वंशानुगतरूपसे किसी शास्त्र अथवा दर्शन-प्रस्थानका आजीवन अभ्यास अपने जीवनका सर्वोपरि कर्तव्य समझते हैं. महाप्रभु वल्लभाचार्यकी १६वीं पीढ़ीके उत्तराधिकारी पूज्य गोस्वामी श्याममनोहरजीका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है. परन्तु यह एक विडम्बनासे कम नहीं कि आधुनिक मनोवृत्तिके लोग जब भारतीय दार्शनिकोंके विषयमें बातें करते हैं तो उनके मनमें प्रथमतया किसी ऐसे व्यक्तिकी प्रतिमा महत्त्वबोधके साथ जागती है जो पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तनकी वकालत करता हो और अंग्रेजी भाषामें लिखता-पढ़ता हो. यह बात अलग है कि वह पाश्चात्य विचार-परम्परामें कितनी पैठ रखता है और पाश्चात्य विद्वान उसे कितना महत्त्व देते हैं. इस मनोवृत्तिके 'सत्ताधारी एलिट्' वैसे व्यक्तियोंको भारतीय दार्शनिकका दर्जा भी नहीं देते जो भारतीय ज्ञान-परम्पराओंका परम्परागतरूपसे अध्ययन करते हैं. केवल अध्ययन ही नहीं बल्के आजीवन किसी विद्याविशेषका वाचिक और लिखित रूपमें अभ्यास करते हुए उसके स्वकीय विकासकी निरन्तरता बनाए हुए हैं. अवधेय है कि किसी विचार-परम्परामें परिवर्धन परिष्कार और यहां तक कि उसका कायाकल्प यदि, वास्तवमें, स्वकीय परम्पराके अन्तर्गत घटित होकर ही सार्थक होता है तो भारतीय विद्याओंके पारम्परिक अभ्यासकोंको उन अध्येताओंसे अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए जो भारतीय ज्ञान-परम्पराके मूल स्रोतोंसे अवगत

हुए बिना ही उसकी आधुनिक व्याख्या अथवा आलोचना करनेका दावा करते हैं. इसका परिणाम यह होता है कि ज्ञानकी मूल परम्परा पर आधुनिक दृष्टि हावी हो जाती है, जबकि ज्ञानकी मूल परम्पराओंको ही आधुनिक दृष्टि तक सम्भवित होना चाहिए.

सम्प्रति पूज्य गोस्वामी श्याममनोहरजी भारतीय ज्ञान-परम्पराओंके आर-पारके निष्णात ऐसे ही अभ्यासक और अध्यवसायी विद्वान हैं, जिनके चिन्तन और लेखन में भारतीय ज्ञान परम्पराएं न केवल आधुनिक दृष्टियों और प्राचीन अभारतीय परम्पराओं बल्कि आधुनिक विज्ञानकी तत्त्वदृष्टि तक अपनेको सम्भवित कर उन्हें सम्बोधित करनेका सामर्थ्य रखती हैं. यद्यपि गोस्वामी श्याममनोहरजीकी स्वकीय निष्ठा वंशानुगत प्रभावके कारण वाल्लभवेदान्तके प्रति है, परन्तु उनकी दार्शनिक निष्ठाको किसी सम्प्रदायमें बांधा नहीं जा सकता. यदि उनका कोई वाद है तो उसे 'अद्वैतवाद' ही कहा जाना चाहिए, जहां और वादोंका पर्यवसान हो जाता है. इसीलिए उनके चिन्तनमें वाल्लभवेदान्तकी तत्त्वदृष्टि अद्वैती चिन्तनकी अभिधा बन कर प्रकट होती है. महाप्रभु वल्लभाचार्य जब शुद्धाद्वैतको 'सर्ववादानवसर' और 'नानावादानुरोधी' कहते हैं तो गोस्वामी श्याममनोहरजी अपने सम्पूर्ण अध्यवसायसे और अपनी ज्ञान-साधनाके द्वारा शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादके उसी स्वरूपका अलंकारभाष्य करते हुए प्रतीत होते हैं. उनके विपुलकाय लेखन और सम्पादन से उदाहरणके बतौर केवल दो ग्रन्थों — साकार-ब्रह्मवाद और वाल्लभवेदान्त निबन्धावली — का उल्लेख करना यहां पर्याप्त होगा, जिसमें शुद्धाद्वैतकी उस आधारिक संरचनाका उद्घाटन हुआ है जो सर्ववादानवसर और नानावादानुरोधी है तथा श्रुति-स्मृति एवं पुराणों के माध्यमसे विकसित हुई 'एकमेवाद्वितीयम्' की ब्रह्मवादी विचार-परम्पराका मूलगामी स्वरूप है.

शुद्धाद्वैती वाल्लभवेदान्तको आधुनिक युगमें पुनर्जीवित करनेका इतिहास मुंबई निवासी एम.टी.तेलीवालासे प्रारम्भ होता है. वे पेशेसे

वकील थे और अपने जीवनके मात्र ३६ वर्षोंमें उन्होंने अकेले दमपर शुद्धाद्वैती दार्शनिक और साधनापरक साहित्योंका विपुल सम्पादन-प्रकाशन किया था. वाल्लभवेदान्तके आधुनिक अध्येताओंमें काशीके प्रो. केदारनाथ मिश्रका (१९३५-१९९९) नाम भी आदरके साथ लिया जाता है. उन्होंने 'तत्त्वार्थदीप निबन्ध : स्नेह प्रपुरणी हिन्दी टीका', 'विद्वन्मण्डन समीक्षा' और 'अणुभाष्य समीक्षा' लिख कर वाल्लभवेदान्तको भारतीय विश्वविद्यालयीय शिक्षण-व्यवस्थामें प्रचारित करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य किया था. परन्तु इस क्षेत्रमें गोस्वामी श्याममनोहरजीका प्रयास युगान्तकारी रहा है. २०वीं-२१वीं शताब्दीमें शुद्धाद्वैती दार्शनिक वाङ्मय और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणाली से सम्बन्धित लगभग समस्त ग्रन्थों और परवर्ती प्रकरणात्मक एवं व्याख्याग्रन्थों का प्रकाशन एवं प्रचार कर उन्होंने वाल्लभवेदान्तको उज्जीवन प्रदान करनेमें उपष्टम्भककी भूमिका निभाई है. गोस्वामी श्याममनोहरजीकी प्रतिभा शुद्धाद्वैतको निमित्त बनाकर प्रकट होती हैं, परन्तु उसमें श्रुत्यर्थका प्राकट्य इतने सहजरूपसे होता है कि किसीको उसमें आलोचनात्मक प्रतिभाका शैथिल्य दिखाई पड़ सकता है. लेकिन उनकी प्रतिभाको अंदरसे देखनेपर पता चलता है कि श्रुत्यर्थका स्वारस्य यदि उत्प्रेक्षाओंसे ओझल हो गया हो तो आलोचनात्क प्रतिभाका विनियोग उत्प्रेक्षाओंके अनावरणमें होना चाहिए नकि श्रुत्यर्थके सहज प्रकटीकरणमें. गोस्वामी श्याममनोहरजीके लेखन और प्रतिपादन की यही अत्युच्च विशिष्टता है. इनकी विचारशैलीकी एक और दुर्लभ विशेषता यह है कि वे विचारोंके मूलगामी स्वरूपको पकड़ कर यह देख पाने और साथ ही साथ दिखा पानेमें समर्थ होते हैं कि कोई मूलगामी विचार किस प्रकार अन्तर-धार्मिक और अन्तर-सांस्कृतिक रूपसे संभवित होता है. यदि वेदान्त परम्पराके दार्शनिक सम्प्रदायोंके बीच वाल्लभवेदान्तको रख कर देखा जाय तो विचार करनेकी यही पद्धति वाल्लभवेदान्तकी दार्शनिक विधि प्रतीत होती है. इस दृष्टिसे वाल्लभवेदान्त गोस्वामी श्याममनोहरजीके लिये केवलाद्वैत विशिष्टाद्वैत के समकक्ष और समानान्तर वेदान्तका एक सम्प्रदाय नहीं बल्के अद्वैत

या फिर ब्रह्मवादकी मूलाकृतिकी उत्प्रेक्षारहित गवेषणा है. वाल्लभवेदान्तकी शुद्धाद्वैत संज्ञासे यही व्यंजित होता है. यदि उसे वैष्णववेदान्तके सम्प्रदायोंके समकक्ष आसनपर बैठाना आवश्यक हो तो उसे पुष्टिमार्गी वेदान्तसे अभिहित किया जाना अधिक उचित होगा.

प्रस्तुत ग्रन्थ 'ब्रह्मवाद'में गोस्वामी श्याममनोहरजीने शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादकी मूलाकृतिको (आर्किटाइप्) हृदयगत करते हुए उसका संभव वैज्ञानिक चिंतन आइन्स्टीनके सापेक्षतावादी चिन्तन और वैदिकेतर धार्मिक दार्शनिक परम्पराओं यथा माध्यमिक शून्यवाद जरथुष्ट्र और मिस्रदेशीय चिन्तनपरम्परामें दिखाया है. एक पारम्परिक शास्त्रवेत्ताकी स्वयुथ्य दृष्टिका ऐसा विस्तार और वह भी अन्य विचार-परम्पराओंके मूल स्रोतोंको हृदयंगमित कर सचमुच एक विरल पराक्रमसे कमतर नहीं कहा जा सकता. आश्चर्य तो तब होता है जब यह जाना जाये कि यह सब कुछ प्रथमतया विषय-विशेषज्ञोंको सम्बोधित करनेके लिये नहीं लिखा गया है. इस पुस्तकके अधिकांश अध्याय पुष्टिमार्गी साधनाको अपनी जीवनचर्या माननेवाले साधारण जनोंके बीच दिया गया प्रवचन है जिसे बादमें लिपिबद्ध किया गया है. सहज ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दी और व्रजभाषा में विज्ञान और जरथुष्ट्रीय तथा मिस्रदेशीय धार्मिक पदावलियोंको मिलाते हुए पुष्टिमार्गीय साधारण जनोंको यह समझा पाना कि यह सब कुछ शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादसे अनुप्राणित है, कितना चुनौतिपूर्ण कार्य है! आज भारतकी आम जनताके बीच हिन्दीमें हिंग्लिश्में और यहांतक कि क्षेत्रीय भाषाओंमें भी इस प्रकारके चिन्तनको परोसना बहुत आवश्यक हो गया है. वैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक जीवनदृष्टि के चतुर्दिक प्रचार-प्रसारसे साधारण जनता अपनी ही वैचारिक विरासतसे कटती जा रही है. इतना ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टिकी सार्वभौमिकता उनके तन-मनपर इतना हावी हो रहा है कि उनमें अपनी ही वैचारिक विरासतके प्रति हीनभावना घर करती जा रही है. ऐसी स्थितिमें गोस्वामी श्याममनोहरजीके ऐसे

प्रवचन सांस्कृतिक स्वाभिमानको जगानेवाला कहा जा सकता है. ऐसा भी नहीं कि इस प्रकारका चिन्तन करनेवाले अन्यलोग नहीं है. साधु-संतो कतिपय विद्वानो और धर्मगुरुओंके बीच आज एक फॅशनूसा चल पड़ा है कि वे सभी अपने-अपने धार्मिक-दार्शनिक चिन्तनको वैज्ञानिक कहते हुए गर्वका अनुभव करते हैं. परन्तु गोस्वामी श्याममनोहरजीके चिन्तनको उस कोटिमें नहीं रखा जा सकता. वे शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादको वैज्ञानिक नहीं कहते बल्कि आधुनिक विज्ञानको ही शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादसे अनुप्राणित बताते हैं. इसी तरह जरथुष्ट्रीय और मिस्रदेशीय धार्मिक चिन्तनकी समानता वे वैदिक चिन्तनमें नहीं देखते बल्कि जरथुष्ट्र और मिस्रदेशीय धार्मिक चिन्तनमें वैदिक ब्रह्मवादको सम्प्लवित होता दिखा पाते हैं. यही कारण है गोस्वामी श्याममनोहरजीके बहुतेरे ऐसे प्रकीर्ण लेखन एवं प्रवचन हैं जिसमें शुद्धाद्वैती तत्त्वदृष्टिको आधार बना कर वे वैश्वीय समस्याओंको सम्बोधित करते हैं और उनके समाधानकी शुद्धाद्वैती दृष्टिको बलीयसीरूपमें प्रस्तुत करते हैं.

इस प्रकारके मूलगामी चिन्तनके लिये विचार परम्पराओंकी आधारिक संरचनाओंको पकड़ना जरूरी होता है क्योंकि विचारोंके विशिष्टरूपोंके तहमें गये बिना यह सम्भव नहीं होता. उदाहरणके लिये वैदिक चिन्तन और आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तनमें ब्रह्माण्डकी अवधारणा और सृष्टिके आविर्भावके प्रश्नको कितने भिन्नरूपोंमें देखा गया है, लेकिन इन सभीको जब मूल प्रश्नकी आधारिक संरचनामें देखा जाय तो इनमें पद्धतिमूलक अन्तरके बावजूद प्रारूपीय समानता देखी जा सकती है. गोस्वामी श्याममनोहरजी इसी पद्धतिसे सृष्टिके बारेमें ईश्वरवादी अनीश्वरवादी धारणाओंको आदिमान्तिमसर्गादिवाद सर्गनैरन्तर्यवाद और असर्गवादमें अन्तर्भाव कर देते हैं. इसी तरह मूल प्रश्नके प्रारूपीकरण करनेसे इनकी तुलना विज्ञानसंमत अवधारणाओं — यथा बिगबेंग् थियरी, ऑस्सिलेटिंग् युनिवर्स् थियरी, स्टडी स्टेट् थियरी, एक्सपांडिंग् युनिवर्स थियरी और स्ट्रिंग् थियरी से करना सम्भव हो जाता है. इसी तरह

आइन्स्टीन्का सापेक्षतावादी चिन्तन किसी भी धार्मिक चिन्तन अथवा अद्वैतवादी चिन्तनसे प्रथमदृष्टतया कितना विजातीय प्रतीत होता है. परन्तु यह गोस्वामी श्याममनोहरजीकी तलस्पर्शी दृष्टि ही कही जायेगी कि वे शुद्धाद्वैत और सापेक्षतावाद दोनोंको ब्रह्माण्डीय एकात्मताकी मूल भित्तिपर खड़ा कर देते हैं. इस तरह यह दिखा पाना सम्भव हो जाता है कि आइन्स्टीन्का रिलेटिविस्टीक् फिज़िक्स् किस तरह अपने मूलगामी स्वरूप अद्वैती मॅटाफिज़िक्स्में मूलित है. गोस्वामी श्याममनोहरजी जब ब्रह्मवादी विचारकी समरूपता जरथुष्ट्रीय और मिस्रदेशीय धार्मिक माइथॉलॉजीमें देखते है तो वहां भी सृष्टिके संभवनके मूल प्रश्न जिन धार्मिक प्रतीकोंके माध्यमसे सुलझाया गया है उसकी मूलाकृति एक जैसी ही है.

इस ग्रन्थमें गोस्वामी श्याममनोहरजीने शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादकी आधारिक संरचनाको इतने व्यापकरूपमें प्रस्तुत किया है कि उसे बुद्धिकी कोटियोंमें बांधा नहीं जा सकता. बुद्धिकी कोटियोंमें वह बंध नहीं सकता, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह इन कोटियोंका बहिष्कारक है. ब्रह्मवादकी व्यापकता तो इसमें है कि बुद्धिकी सम्भव सभी कोटियां उसीकी एक-एक कल्प हैं. यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तूने यह दिखाया था कि बुद्धि इस ब्रह्मांण्डको एकात्मता नियम अव्याघात नियम और मध्यम परिहार नियम के आधारभूत ढ़ांचेमें ही समझ सकती है. परन्तु वैदिक दृष्टि बुद्धिकी इस सीमांकित अवधारणाका अतिक्रमण करती है और विरुद्धधर्माश्रयी ऐसे अद्वैततत्त्वमें विश्रांत होती है जिसमें उन सभीका समाहार हो जाता है जिन्हे बुद्धि विरोधाभासी समझती है. **''सो अकामयत 'बहु स्यां प्रजायेय' इति...इदं सर्वम् असृजत यद् इदं किञ्च : सच्च त्यच्च अभवत्, निरुक्तञ्च अनिरुक्तञ्च निलयनञ्च अनिलयनञ्च विज्ञानञ्च अविज्ञानञ्च, सत्यञ्च अनृतञ्च च सत्यम् अभवत्''** शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादकी ऐसी पारावरीय दृष्टिको आत्मसात् कर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि और जरथुष्ट्रीय तथा मिस्रदेशीय धार्मिक दृष्टिको सम्बोधित

करना गोस्वामी श्याममनोहरजीके सामर्थ्यकी बात है. मेरे जैसा अल्पज्ञ व्यक्ति ब्रह्मवादके इस विराट स्वरूप और सम्प्लवकी झलक पा कर केवल चमत्कृत और कृतकृत्य ही हो सकता है. इस ग्रन्थका पुरोवाक् लिखनेके बहाने मुझे कृतकृत्य होनेका अवसर प्राप्त हुआ इसके लिये पूज्य बाबाजीको शत-शत प्रणाम.

०८।०८।२०१६,सागर (म.प्र.) **प्रो.अम्बिकादत्त शर्मा**

: भूमिका :

॥वैदिक और वैज्ञानिक चिन्तनमें ब्रह्मांडकी अवधारणा॥

मानवदृष्टि द्वारा गोचर या अगोचर ऐसी बुद्धिपरिकल्पित शुद्ध समग्रताको 'युनिवर्स्' या 'ब्रह्मांड' ऐसा नामाभिधान दार्शनिक या वैज्ञानिक करते हैं.

यद्यपि युरोपके प्राचीन चिन्तकोंके मनमें 'कॉस्मिक् एग्', ब्रह्मांड*के पर्यायवाचक, जैसी धारणा कदाचित् थी नहीं. विज्ञानकी कॉस्मोलोजीकी नई वैकल्पिक तीन-चार धारणाओंमें से एक धारणा महाविस्फोट (The big bang theory) की प्रक्रिया अभिप्रेत है. इस प्रक्रियाके अनुसार सृष्टिजनक ऐसा महाविस्फोट उस कॉस्मिक-ऐग्में हुवा था ऐसा माना जाता है. हमारी भाषाके 'ब्रह्मांड' शब्दकी तुलनामें आनेवाला यह शब्दपर्याय है. इसमें प्रयुक्त 'कॉस्मिक्' विशेषण 'कॉस्मोस्' शब्दसे व्युत्पन्न हुवा है और उसका अर्थ कोशकार "The universe regarded as an orderly, harmonius whole" (रीडर्स् डाइजेस्ट् ग्रेट इलस्ट्रेटेड् डिक्शनरी) करते हैं. क्योंकि पुरातन यूनानी चिन्तक 'कॉस्मोस्' पदका प्रयोग ऑर्डर और विश्व के अर्थोंमें करते थे.

हमारे वैदिक साहित्यमें "**एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायाँश्च पूरुषः. पादो अस्य इह भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि. त्रिपाद् ऊर्ध्वम् उदैत् पुरुषः. पादो अस्य इह अभवत् पुनः. ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि. तस्माद् विराड् अजायत**". (ऋक्संहि.१०।९०।१७) अर्थात् दृष्टिगोचर होता यह सारा विस्तार उस चतुष्पाद विराट् पुरुषकी विराटता या महिमा है. वह स्वयं तो इससे कहीं अधिक है. क्योंकि

*द्रष्ट. : "**तदा संहत्य च अन्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः सदसत्त्वम् उपादाय च उभयं ससृजुः... वर्षपूगसहस्रान्ते तद् अण्डं... कालकर्मस्वभावस्थो जीवो अजीवम् अजीवयत्. सएव पुरुषः तस्माद् अण्डं निर्भिद्य निर्गतः**" (भाग.पुरा.२।५।३३-३५).

उसके चारमें से एक पादके अन्तर्गत यह सारे भूत-भौतिक पदार्थ रहते हैं. तीन पाद तो इन्द्रियागोचर द्युलोकमें होते हैं. अतः अपने अवशिष्ट तीन पादोंके साथ वह स्वयं दृश्य प्रपंचसे अतीत ही रहता है. उसके केवल एक पादसे यह समग्र विश्व व्युच्चरित हुवा है, चाहे अन्नोपजीवी हो या निरन्न विद्यमान रह पानेवाले द्रव्य. उस ऐसे पुरुषमें से विराट् प्रादुर्भूत हुवा.

इस श्रुतिवचनमें प्रतिपादित विराट्को ब्रह्मांडके आधिदैविक पर्यायरूपेण माना जा सकता है.

श्रीयास्कमुनि-विरचित निघण्टुनिरुक्तभाष्यमें यद्यपि 'ब्रह्मांड' शब्द संकलित हो नहीं पाया है, अतः वेदोंकी संहिता ब्राह्मण आरण्यक या प्रमुख उपनिषदो में भी कहीं 'ब्रह्मांड' पदका प्रयोग हुवा है या नहीं हुवा, यह तो गवेषणीय विषय लगता है. फिरभी इसके पर्यायके रूपमें प्रयोगार्ह एक 'विराज्' शब्द तो वहां भी उपलब्ध होता ही है. निरुक्तमें, यद्यपि, छन्दके अन्यतम प्रकारके अभिधानतया प्रयुक्त हुवा है, फिरभी पदव्युत्पत्तिका विचार करनेपर 'ब्रह्मांड'के पर्यायतया स्वीकारनेमें आपत्तिजनक कुछ नहीं लगता. क्योंकि वहां "**विराजनात् सम्पूर्णाक्षरा**" (निरु.७।३।१३।९)की व्याख्या करते हुवे श्रीदुर्गाचार्य कहते हैं "**साकल्याद् विराजतइवेति विराजनाद् 'विराट्'**" अर्थात् साकल्य (wholeness) को पदप्रवृत्तिनिमित्तके रूपमें स्वीकारा गया है.

इसीका वर्णन बृहदारण्यकोपनिषद्के "**नैव इह किञ्चन अग्रे आसीद्. मृत्युनैव इदम् आवृतम् आसीद्, अशनायया. अशनाया हि मृत्युः. तद् मनो अकुरुत आत्मन्वी स्याम् इति**" (बृह.उप.१।१।१) अर्थात् पहले यहां कुछ भी नहीं था. सभी कुछ विगत कल्पकी मृत्यु/अन्तर्भुक्तावस्थासे ग्रस्त था. क्योंकि अशनाया* पूर्वकल्पमें व्यक्तद्रव्यरूपा सृष्टिकी अपने लयाधारभूत तत्त्वमें प्रलीनता या अन्तर्भुक्तता है. उस लयाधारमें पुनः

प्रकट होनेवाली सृष्टिके प्रादुर्भावानुकूल शक्तिरूपेण यहां अवस्थिति समझानी चाही है. उस शक्तिका पुनः द्रव्यभावापन्न होना ही यहां 'आत्मन्वी' पदके प्रयोगद्वारा ध्वनित किया गया है. और इसी हेतुवश प्रकट होनेसे पूर्व सृष्टिका एकान्तिक अभाव मान्य नहीं हो पाता. पूर्वसृष्टिके स्वरूपेण या आत्मना किसी अन्य आधारभूत तत्त्वमें अन्तर्भुक्त होनेके कारण उसका स्वयंका कोई विशेष स्वरूप या आत्मरूप नहीं बच गया था. अपनी निजात्मरूपरहित अन्तर्भुक्तावस्थामेंसे पृथक् स्वरूपमें प्रकट होनेको जब सूक्ष्मरूपा सृष्टि स्पन्दित होने लगी तब उसमें जगी आत्मन्वी होनेकी अभिवृत्ति अपने लयाधारसे पृथक् रूपधारण हेतु अभिवृत्तिके रूपमें सोची जा सकती है. अतएव इस वचनमें इदमास्पद विश्व प्रकट होनेसे पूर्व ऐसे किसी प्रकारकी अशनाया अर्थात् किसी ऐसे तत्त्वमें अन्तर्भुक्ति या भक्षित होनेकी अवस्थामें था. उस अन्तर्भुक्त तत्त्वके भीतरसे बाहर आ कर दोबारा आत्मन्वी होनेकी अर्थात् अन्तर्लीन अवस्थासे प्रकट होनेकी वृत्ति या स्पन्दन जैसा कुछ घटित हुवा दिखलाया जा रहा है. अर्थात् एकीभूत अवस्थामेंसे अनेकीभावापन्न होनेके स्पन्दनकी ओर संकेत किया जा रहा है. यों इस सृष्टिका क्रमिक चक्रमें पुनरारंभ हुवा.

ब्रह्मांडके प्रकट होनेसे पहले उसके कहीं अन्तर्लीन होनेकी अवस्थाकोमनुस्मृतिकार 'मृत्यु' या 'भक्षित' होनेके कठोर शब्दमें निरूपित करनेके बजाय **"न असद् आसीद् नो सद् आसीत्...तमः आसीत् तमसा गूढम्"** (ऋक्संहि.१०।११।१२९।१-३) ऋचाका अवलंबनकर सुषुप्ति या तमस् अवस्थाके रूपमें निरूपित करना चाहते हैं : **"आसीद् इदं तमोभूतम् अप्रज्ञातम् अलक्षणम् अप्रतर्क्यम् अविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः. ततः स्वयम्भुः भगवान् अव्यक्तो... तमोनुदः... सो अभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुः... तद् अण्डम् अभवत् सहस्रांशुसमप्रभम्. तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः... द्विधा भित्त्वा आत्मनो देहम्... विराजम् असृजत् प्रभुः"** (मनुस्मृ.१।५-३२) अर्थात् यह पहले तमोभूत अप्रज्ञात किसी भी तरहके विशेष गुणोंके आधारपर परिभाषित न हो पानेवाला, अतएव अप्रतर्क्य, अतएव अविज्ञेय, अर्थात् प्रसुप्त होने जैसी किसी अवस्थामें था. बादमें उस तम या सुषुप्ति का अपहरण करनेवाले स्वयम्भू अव्यक्त भगवान् प्रकट हुवे. ऐसे उस भगवान्के शरीरमेंसे सहस्रांशु सूर्योपम अण्ड प्रकट हुवा. उसके भीतर सर्वलोकपितामह ब्रह्मा प्रकटे. ब्रह्माने अपने अपने शरीरको द्विधा विभक्त कर विराट्को सिरजा.

*द्रष्ट. : तुलनीय : "ANTIMATTER-each particle of matter has a corresponding anti-particle. If they meet, they annihilate each other, leaving pure energy" THE GRAND DISIGN by Stephen Hawking ppp.183).

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको अभिमत ब्लेकहोल जैसी किसी अवस्थाका यहां निरूपण प्रतीत होता है. यह अधोनिर्दिष्ट प्रतिपादनके साथ तुलना करनेपर समझा जा सकता है :

> "The star collapses under the pull of its gravity until nothing, not even light, can escape. It becomes a black hole... astronomers believe, of material being compressed and heated before it is sucked in".
>
> (रीडर्स् डाइजेस्ट् ग्रेट इलस्ट्रेटेड् डिक्शनरी पृ.१८८).

इस तरह मनुस्मृतिमें सृष्टिकी उसके लयाधारमें अन्तर्भुक्तावस्थाको सुषुप्ति और तमस् के रूपमें किञ्चित् क्रमान्तरपूर्वक वर्णित किया गया है. महाभारतमें तो 'ब्रह्मांड' पदका प्रयोग कण्ठतः कई स्थलोमें उपलब्ध होता ही है. इसी तरह ब्रह्मांडपुराणमें भी **"अण्डं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिः उत्तमा"** (ब्रह्मा.पुरा.१।१।१) ऐसा कह कर उस ब्रह्मांडकी सुषुप्तावस्थाको ब्राह्मिकी अवस्थाके रूपमें प्रस्थापित किया गया है—

"[1]अव्यक्तं कारणं यत् तत् नित्यं सदसदात्मकं प्रधानं प्रकृतिं चैव यम् आहुः तत्त्वचिन्तकाः... [2]जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनं विग्रहं सर्वभूतानाम् अव्यक्तम्... अनाद्यन्तम् अजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् असाम्प्रतिकम् अज्ञेयं ब्रह्म यत् सदसत्परं, तस्य आत्मना सर्वम् इदं व्याप्तम् आसीत् तमोमयम्... बृहत्त्वाद् बृंहणत्वात् च भावानाम् अखिलाश्रयाद् यस्माद् बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते... बुध्यते पुरुषः च अत्र सर्वान् भावान् पृथक्-पृथक् तस्मिंस्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा... [3]सवै शरीरी प्रथमः पुरा 'पुरुषः' उच्यते. आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्मा अग्रे समवर्तिनां हिरण्यगर्भः सो अण्डे अस्मिन् प्रादुर्भूतः चतुर्मुखः, सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः".

(ब्रह्मा.पुरा.१।२।८-२६)

ब्रह्मांडपुराणकी इस प्रतिपादनशैलीमें सुषुप्ति या तमोऽवस्था में ब्रह्माण्डके पुनर्घनीभावकी प्रक्रिया ध्वनित हो रही है. उसके साथ उसके सर्ग और प्रतिसर्ग के भी उल्लेखके कारण, आधुनिक [1]द बिगबेंग थियरीकी जगह [2]दी ऑस्सिलेटिंग युनिवर्स थियरी के साथ यह प्रक्रिया प्रत्यासन्नतर लगती है. धैर्यपूर्वक, यदि कुछ विचारा जाये तो, 'बिगबेंग'प्रक्रियाके अन्तर्गत 'ऑस्सिलेशन' होना आवश्यक नहीं परन्तु ऑस्सिलेशनकी प्रक्रियाके अन्तर्गत पुनः-पुनः सर्ग किसी प्रकारके बिगबेंगके साथ क्यों नहीं हो सकता? इसके अलावा यह ब्रह्माण्ड अखिल भावोंका आश्रयभूत है, ऐसा प्रतिपादन भगवद्गीताके ग्यारहमें अध्याय, नामशः, 'विश्वरूपदर्शनयोग' के वर्णनके साथ अधिक सुसंगत लगता है. अतएव ब्रह्माण्डमूर्ति नारायण और विराट् पुरुष के वर्णन एकदूजेके साथ पर्याप्त संनिकट प्रतिपादन लगते हैं.

बिगबेंग् जैसी विविध प्रक्रिया या थियरी को ध्यानमें रखनेपर

आधुनिक विज्ञानचिन्तक, उदा. 'द ग्रेंड्र डिज़ाइन' के लेखक स्टीफेन हॉकिंग् कहते हैं:

> "Strict realists often argue that the proof, that scientific theories represent reality, lies in their success. But different theories can successfully describe the same phenominon through disparate conceptual framework."

(पृ.सं.४४ वहीं)

अतः लगता है कि अब विज्ञानके आधुनिक चिन्तनके अनुसार कॉस्मोसके भीतर ही कहीं कुछ केओस् जैसा अन्तर्निहित है और उसी तरह ऐसे केओटिक युनिवर्स्के भीतर भी कहीं एक कॉस्मोस् भी अन्तर्निहित है. उसे प्रस्तुत करनेवाली कोई न कोई ऑर्डरलीनेस उन-उन थियरिओंके अनुसार मिल जाती हैं और अनुभवपथमें भी आती ही हैं.

हमारे देशके दो वेदान्त-चिन्तनोंमेंसे एक चिन्तन अपारमार्थिक-मायिक-द्वैतवादको अन्तगर्भित रख कर पारमार्थिक ब्रह्माद्वैतवादके रूपमें भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने प्रस्तावित किया. इस चिन्तनरीतिके अनुसार विश्वके बारेमें मानवमतिको उलझानेवाले प्रश्नोंका समाधान सदसद्विलक्षण अघटितघटनापटी-यसी माया या अविद्या के रूपमें खोजा गया है. जबकि पारमार्थिक लीलात्मक द्वैतवादको अन्तगर्भित रख कर पारमार्थिक ब्रह्मतादात्म्यवादके पुरस्कर्ता महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ ऐसे परब्रह्म परमात्मा भगवान्की लीलाके रूपमें उसे अनुप्रस्थापित करना चाहते हैं. अतः इन दोनों मतोंके अनुसार सृष्टिप्रक्रियाकी व्याख्यामें इदमित्थंरूपेण कोइ एक निश्चित प्रतिपादनशैलीमें बंधनेकी अनिवार्यता रह नहीं जाती है. अतएव मायावादाभिमत सृष्टिके बहुविध प्रकारोंके बारेमें सिद्धान्तलेशसंग्रहकार

कहते हैं "**प्राचीनैः व्यवहारसिद्धविषयेषु आत्म्यैक्यसिद्धौ परां संनह्यद्भिः अनादरात् सरणयो नानाविधा दर्शिताः**" (सि.ले.सं.२). उसी तरह महाप्रभु श्रीवल्लभ कहते हैं :

> "**एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोति अजः, कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनः अन्यथा कदाचित् सर्वम् आत्मैव भवति इह जनार्दनः. महेन्द्रजालवत् सर्वं कदाचिद् मायया असृजत् तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः, वियदादि जगत् सृष्ट्वा तदाविश्य द्विरूपतो जीवान्तर्यामिरूपेण क्रीडति स्म हरिः क्वचिद्. अचिन्त्यानन्तशक्तेः तद् यदेतद् उपपद्यते अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेः उक्ताः हि अनेकधा**"
>
> (त.दी.नि.१।३६-४०).

दार्शनिकोंकी ऐसी रहस्यवादी वाणीके लिये आधुनिक विज्ञानके शैशवकालमें, ऐसी वाणीमें श्रद्धा न रखनेवालोंने, बड़ा बावेला मचाया था. उपेक्षा अस्वीकार से आरंभ कर उपहास पर्यन्त प्रतिक्रिया कुछ दशाब्दिओंके पहले प्रकट की जाती थी. अभी भी आधुनिकविज्ञानको वैज्ञानिक मनोवृत्तिके बजाय श्रद्धातिरेकसे सुनने-माननेवाले लोग बहुधा उपहास करते रहते हैं. विज्ञान, परन्तु, अब स्वयं ही ऐसी वाणीमें मुखरित होने लगा है :

> 1."After seeing physicists frustrated trying to solve this problem directly... This was Feynman's trade-mark : not powerful mathematics, but powerful imagination, combined with physical understanding".
>
> 2."Model-dependent realism Short-circuit all this argument and discussion between the realist and anti-realist schools of thought. According to model-dependent realism, it is pointless to ask whether a model is real, only whether it agrees with observation".
>
> ([1].लियोनार्द म्लोदिनोवलिखित फैनमेन्स् रैनबो पृ.६१, [2]स्टीफेन् हॉकिंग् लिखित द ग्रेंड् डिज़ाइन पृ.४४-४५).

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी अब गणितशास्त्रीय इदमित्थंभावेन नहीं प्रत्युत ऊहापोहात्मिका कल्पनाओंके आधारपर ही तथा अपने अन्वेषणका एक वैचारिक मोडेल बना ब्रह्मांडको निरखने-परखनेकी बातें करने लगा है. ऐसी ही वाणीमें 'युनिवर्स' कहो या 'कॉस्मोस' कहो उसे निःसंकोच स्वीकारने भी लगा है. आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानकी ब्रह्मांडमीमांसा प्राचीन धर्म और दर्शन से इस दिशामें अग्रसरताको निहारना हो तो उल्लिखित 'द ग्रेंड् डिज़ाइन्' के लेखक स्टीफेन् हॉकिंग् जो सुस्पष्ट शब्दोंमें कह रहे हैं वह देख लेना चाहिये :

> "...like particle, the universe doesn't have just a single history, each with its own probability; and our observations of its current state affect its past and determine the different histories of the universe, just as the past observations of the particles..."
>
> (वहीं पृ.८३).

अतः अब आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी ब्रह्मांडके बारेमें दार्शनिक अनिश्चित प्रतिपादनशैलीके याथार्थ्यके प्रति अपनी उपेक्षा अस्वीकृति या उपहास की मनोवृत्तिको संयत कर पाया है. फलरूपेण ब्रह्मांडमीमांसामें निरत मानवमतिके इन चिरवृद्ध धर्म-दर्शनविभाग और नूतन यौवनोत्साहसे परिपूर्ण आधुनिकविज्ञान के विभागोंमें अब परस्पर संवाद उतना दुष्कर

नहीं रह जाना चाहिये. पहले कभी कैशौर्योन्मादवश जैसा मान लिया गया था!

आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान युनिवर्स् या कॉस्मोस् को "The universe regarded as an orderly, harmonius whole" के रूपमें ही स्वीकारता हो ऐसा भी कह नहीं सकते. क्योंकि स्टीफेन् हॉकिंग्के अनुसार तो द्रव्यकी चतुर्विध शक्तिओंमें निर्बलतम गुरुत्वाकर्षणशक्ति, द्रव्यकी प्रबलशक्तिओंमें एकतर विद्युच्चुम्बकीय शक्ति, परमाणुनाभिकगत दुर्बलशक्ति जो ब्रह्मांडकी आरम्भिक अवस्थामें द्रव्यसंघातके निर्माणमें प्रमुखहेतुतया अभिमत है; तथा परमाणुनाभिकगत प्रबलतमा शक्ति यह प्रोटोन और न्यूट्रोन को अन्योन्यधारण करनेमें और उन्हें परमाणुके नाभिप्रदेशमें धारण करनेमें हेतुभूता मानी जाती है. इन चारों शक्तिओंके एकीकरणकी (GUT) प्रक्रियामें भी एकाधिक प्रकार मान लेने उद्यत हैं (तत्रैव पृ.११०).

अतः ब्रह्मांड भी एक है या अनेक यह भी मीमांस्य विषय बन गया है. हमारा वैदिक साहित्य ब्रह्मांडनिरूपणमें ब्रह्मके एकत्व या एकमेवाद्वितीयत्व का व्रती होनेके कारण आरम्भसे ही ब्रह्मांडैक्यवादके प्रति बहोत लगाव रख नहीं पाया.

इस मुद्देको छूनेसे पहले वेदों और उसके प्रतियोगी चिन्तनों के हिसाबसे जो सृष्टिप्रक्रिया वर्णित हुयी है, उनकी ओर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है.

सृष्टिके बारेमें, ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी धर्मोंद्वारा, प्रायः तीन प्रकारकी धारणायें प्रस्तुत हुयी हैं :

[१]आदिमान्तिमसर्गादिवाद
[२]सर्गनैरन्तर्यवाद

[३]अ-सर्गवाद

[१]इस धारणाके अनुसार यह विश्व परमेश्वर द्वारा निर्मित आदिम और अन्तिम सर्ग है. अर्थात् न तो इससे पहले कभी कोई सर्ग था और न इसके उपसंहरणके बाद कोई सर्ग होनेवाला है. अब्राह्मिक, नामशः, यहूदी ईसाइ और इस्लाम धर्मोंकी परमेश्वरनिर्मित विश्वके सर्गके बारेमें ऐसी कुछ लोकप्रचलित धारणा है. [२]जो चिन्तक किसी परमेश्वरको जगत्सृष्टाके रूपमें मान्य नहीं रखना चाहते हैं, जैसे कि बौद्ध जैन कौमारिल आदि चिन्तक. उनके मतोंके अनुसार विश्वका सृजन न तो किसी एक निश्चित कालमें हुवा है और न किसी एक किसी निर्माता व्यक्तिके द्वारा यह विश्व निर्मित है. विश्व तो एक ऐसे निजोपादानरूप तत्त्वोंसे निर्मित है जो स्वतएव उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं. [३]किसी भी उत्पत्तिशील पदार्थको स्वतः या परतः देश-कालविशेषमें उत्पन्न होनेकी आवश्यकता रह नहीं जाती, और जो पदार्थ स्वयं उत्पत्तिशील न हो उसे कोई उत्पन्न कर नहीं सकता है. अतः इस विश्वका वस्तुतः सृजन हुवा नहीं है फिरभी अपनी क्षुद्रमतिके वश उत्पत्ति-विनाशकी भ्रमणा हमें अवश्य सताती है. ऐसा मतवाद मूलमें शून्यवादी बौद्धों और बोद्धोंके बाद श्रीगोडपादाचार्य और भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य जैसे समर्थ समर्थकोंद्वारा भारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है.

यों ब्रह्मांडसर्गके बारेमें ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी धर्मों द्वारा प्रस्तावित तीन धारणाओंकी तरह आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी जैसी तीन-चार धारणा प्रस्तुत करता है उनका अवलोकन कर लेना चाहिये.

[१]द बिगबेंग् थियरी
[२]द ऑस्सिलेटिंग् / पल्सेटिंग् युनिवर्स् थियरी
[३]द स्टडी स्टेट् थियरी

अथवा तो
कन्टीन्यूअस् एक्स्पाडिंग् युनिवर्स् थियरी
[४]द स्ट्रिंग् थियरी.

[१]इस थियरीके अनुसार आजसे करीब १३.७ खरब वर्षपूर्व अधुना दृश्य ब्रह्मांड केवल कुछ मिलिमिटर विस्तीर्ण पर अतीव सघन था. अपना भार न सम्हाल पानेके तथा अत्यधिक उष्णताके कारण वह फट कर इतना विस्तीर्ण हो गया. अतः अब इसका तापमान उतना उष्ण नहीं रह गया. फिरभी इसकी पूर्वकालिक अवस्थाको पृष्ठभागगत ब्रह्मांडीय माइक्रोवेव ऊर्जाके विकरणके रूपमें निहारा जा सकता है. यह कॉस्मिक एग् स्वयंका भार झील न पानेके कारण केन्द्रसे ही फट पड़ा और उस विस्फोटके कारण उसमेंसे जो द्रव्य प्रकट हुवे उन्हींसे यह ब्रह्मांड निर्मित है. अतः अब नया कुछ भी इसमें उत्पन्न नहीं हो रहा है. [२]इस थियरीके अनुसार यह ब्रह्मांड संकोच-विकासशील होनेके कारण निरन्तर अपने केन्द्रकी ओर गुरुत्वाकर्षणशक्तिके वश घनीभूत होता रहता है और फिर फूट भी पड़ता है. और तब पदार्थ केन्द्रसे विपरीत चारों दिशाओंमें छितराने लगते हैं. बादमें शनैःशनैः जैसे वेग घटता जाता है, वैसे-वैसे केन्द्रापकृष्ट पदार्थ पुनः जब केन्द्राकृष्ट होने लगते हैं तब पुनः केन्द्रकी ओर सिकुड़ना शुरु करते हैं. अतः ब्रह्मांडघटक द्रव्य न तो कभी उत्पन्न होते हैं और न कभी विनष्ट ही. फिरभी पुनः-पुनः संयोजित और वियोजित केवल होते रहते हैं. यों नित्य स्पन्दनशील यह ब्रह्मांड है. [३]इस थियरीके अनुसार समष्टिरूपेण यह ब्रह्मांड न तो कभी उत्पन्न हुवा और न कभी नष्ट होगा किन्तु व्यष्टिरूपेण इसमें द्रव्य निरन्तर उत्पन्न होता रहता है. और वह फैलता जाता होनेसे जो फैलनेके कारण शून्यावकाश जो पैदा होता है वह नूतन उत्पन्न द्रव्यसे भरता जाता है. यह निरन्तर चलती प्रक्रिया होनेके कारण किसी तरहके महाविस्फोटकी आवश्यकता नहीं है. क्योंकि इस ब्रह्मांडमें केन्द्रस्थानीय कुछ भी नहीं है. [४]इस अन्तिम थियरीके

अनुसार यह ब्रह्मांड अपने आतान-वितानात्मक तन्तुओंमें होते विविध स्पन्दनोंकी विविधरूपता प्रकट करता है. इन ब्रह्मांडघटक तन्तुओंमें लंबाई तो होती है परन्तु ऊंचाई या चौड़ाई कुछ भी नहीं होती. अतः इन ब्रह्मांडतन्तुओंमें प्रकट होते विविध स्पन्दनोंकी ही ब्रह्मांडघटक पदार्थोंके गुणधर्मोंके प्रभेदके हेतु बनते हैं (द्रष्ट. : लिओनार्द म्लोदिनोवकी 'फेइनमैंऐन्स् रैनबॉ' पृ.७०).

इस तरह एक ब्रह्मांडके बारेमें ऐसी अनेकविध धारणाओंमें एकवाक्यता सिद्ध न हो पाती हो; अथवा सभी धारणाओंको विभिन्न दृष्टिकोणोंसे निहारनेपर सभी सच्ची लगती हों, तत्तद्-दृष्टि-सापेक्षतया. परन्तु इन विविध मान्यताओंके रहते अपने वेदोंकी इस बारेमें क्या धारणा है उसकी मीमांसा करनेसे पहले दो बातें लक्ष्यमें रखने लायक लगती हैं. प्रथम तो यह कि हमारा वैदिक साहित्य दृश्यमान एकत्व या अनेकत्व के बारेमें यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक एरीस्टोटलके लॉज़् ऑफ् थोट्स् [१]एकात्मतानियम [२]अव्याघातनियम [३]मध्यकोटिपरिहारनियम को मान्य नहीं रखता है—

> [१]**"एकएव अग्निः बहुधा समिद्धः, एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः, एकैव उषाः सर्वम् इदं विभाति, एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्".**
> [२]**"अजायमानो बहुधा विजायते".**
> [३]**"त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि... सर्वाणि रूपाणि... सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति. तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा, आत्मो एकः सन् एतत् त्रयम्".**
> [४]**सदेव, सौम्य!, इदम् अग्रे आसीद् एकमेवाद्वितीयं... तद् ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेय".**
> [५]**"ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यम्".**
> ([१]ऋक्संहि.८।५८।१०।२, [२]यजुस्संहि.३१।१६, [३]बृह.उप.१।६।१-

३, [४]छान्दो.उप.६।२।१-३, [५]छान्दो.उप.६।६।७).

अतः जो एक हो वह अनेक नहीं हो सकता; अथवा तो जो अजायमान हो वह विजायमान हो नहीं सकता; अथवा तो भेद और अभेद के बीच, न भेद या न अभेद, ऐसा कुछ भी हो नहीं सकता, ऐसे तर्कनियमोंमें ब्रह्मप्रतिपादक वेदोपनिषद् बंधना नहीं चाहते हैं. क्योंकि दृश्यमान सकल यदि सत्यके साथ एतदात्मक हो तो उसे न भेद माना जा सकता है और न अभेद ही. यद्यपि उत्तरकालीन वेदान्तके विविध विविध सम्प्रदायोंके बीच द्वैत परमार्थ है या अद्वैत परमार्थ का मुद्दा प्रमुख एवं प्रखर विवादभूमि बन गया. पर वेदोपनिषद्के लिये तो—

> [१]**"पुरुषएव इदं सर्वं, यद् भूतं यच्च भव्यम्, उत अमृतत्वस्य ईशानो यद् अन्नेन अतिरोहति. एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायाँश्च पूरुषः"**
>
> [२]**"सो अकामयत 'बहु स्यां प्रजायेय' इति... इदं सर्वम् असृजत यद् इदं किञ्च : सच्च त्यच्च अभवत्, निरुक्तञ्च अनिरुक्तञ्च, निलयनञ्च अनिलयनञ्च, विज्ञानञ्च अविज्ञानञ्च, सत्यञ्च अनृतञ्च सत्यम् अभवत्".**
>
> [३]**"सर्वं खलु इदं ब्रह्म".**
>
> ([१]ऋक्संहि.१०।९०।१७, [२]२।६, [३]छान्दो.उप.३।१४।१).

प्रकट-अप्रकट, वाच्य-अवाच्य, साधार-निराधार, विज्ञान-अविज्ञान और सत्य-अनृत सभी कुछ एकमेव अद्वितीय परमतत्त्वके द्वारा लिये गये विविध रूप होनेसे, द्वैत परमार्थ है या अद्वैत परमार्थ है? इसका झगड़ा वेदोपनिषदोंके लिये गम्भीर परामर्श करने लायक बात दीखती नहीं है.

इस स्पष्टीकरणके बाद अब यह सुखेन विचारा जा सकता है कि आधुनिक विज्ञानचिन्तकोंका जैसा कहना है कि किसी भी एक थियरीकी चौखटमें ब्रह्मांडके इतिहासको बांधा नहीं जा सकता, उस बारेमें अपना दृष्टिकोण क्या होना चाहिये? तदर्थ प्रवृत्त होनेपर सर्वप्रथम श्वेताश्वतरोपनिषद्द्वारा की गयी एक महत्त्वपूर्ण तथ्यकी घोषणा सुन लेनी चाहिये :

> **"कालः स्वभावः नियतिः यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषः इति चिन्त्याः. संयोगः एषां नतु आत्मभावाद् आत्मापि अनीशः सुखदुःखहेतोः. ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढां, यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एकः".**
>
> (श्वेता.उप.१।२).

इनमें परिगणित संभाव्य ब्रह्मांडके कारणीभूत तत्त्वोंमें जिसे जो स्वीकार कर ब्रह्मांडकी व्याख्या करनी हो वह वैसी कर सकता है क्योंकि वे सभी रूप ब्रह्मके हो सकते हैं. अतएव महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं :

> **"श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वाद् अन्योन्यविरोधाद् न किञ्चित् प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यति इति आशंक्य आह 'सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्' वस्तुतः श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्यता निरूपिता, सर्वभवनसामर्थ्येन विरुद्धधर्माश्रयत्वात्... एकैको वादो ब्रह्मणः एकैकधर्मप्रतिपादकवाक्यशेषइति भगवान् तान् सर्वानेव अनुसरति".**
>
> (त.दी.नि.१।७०).

अर्थात् श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रागमोंमें नाना प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति

आदि प्रतिपादित मिलते हैं. अन्योन्यविरुद्ध जाते इन निरूपणोंमें कोई प्रामाणिक हो नहीं सकता ऐसा लगता है. समाधान, परन्तु, यह है कि ब्रह्म किसीभी वादकी चौखट फिट न बैठनेवाला और सभी वादोंके अनुरूप स्वरूप धारण करने समर्थ विरुद्धधर्माश्रय तत्त्व होनेसे किसी भी वादको सहसा अप्रामाणिक मान लेनेकी आवश्यकता नहीं है. प्रत्येक वाद ब्रह्मके ही किसी पक्षविशेषका आंशिक प्रतिपादक माना जा सकता है. इस आधारभूत स्पष्टीकरणको देख लेनेपर ब्रह्मांड एक है या अनेक यह विचार करने जायें तो उसके विस्तारके बारेमें भी दिशानिर्देश आवश्यक लगता है.

हमारा सौरमण्डल जिस आकाशगंगा या निहारिका की बाह्यपरिधिमें अवस्थित है, उसमें यह दृश्यमान सूर्य सर्वथा एक नगण्य तारा है. ऐसी तो अनेकानेक गेलेक्सीओंको एक-एक ब्रह्मांड मानें तो इस बारेमें किसी तरहके विचारको अवकाश नहीं रह जाता. जैसाकि लाइफ नेचुर लायब्रेरी द्वारा प्रकाशित 'द युनिवर्स' के लेखक डेविड बर्गामिनि कहते हैं कि एक अरब से ज्यादा संख्यामें गेलेक्सी तो सिर्फ मानवनिर्मित टेलीस्कोपसे दिखलायी देती हैं. अतः दिखलायी न देनेवाली तो न जाने कितनी गेलेक्सी होंगी! परन्तु जैसा अपने सौरमण्डलके सदस्य पृथ्वी आदि ग्रहोंका एक एक परिवार है, वैसा इन एक अरब अथवा तो एक हजार अरब गेलक्सीओंका भी कोई परिवार न हो ऐसे पता कैसे लगाना! इस बारेमें निर्णायक मत अभी आधुनिकविज्ञान भी दे कहां पाया है? किसी भी सूरतमें असंख्य गेलेक्सीओंका पुनः कोई एक महा परिवार हो या न हो इसके निर्णयके बिना इनके केन्द्रका भी पता चल पाना कठिन समस्या है. इस विषयमें जो भी कुछ वास्तविकता हो ऐसा केन्द्र यदि हो तो उन गेलेक्सीओंको पुनः एक महाब्रह्मांडके रूपमें एकवद्‌भावापन्न मानना पड़ेगा! भागवतपुराण इस विषयमें ऐसा अभिप्राय प्रकट करता है :

"**विकारैः सहितो युक्तैः विशेषादिभिः आवृतः आण्डकोशो बहिः अयं पञ्चाशतकोटिविस्तृतः दशोत्तराधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते अन्तर्गतः च अन्ये कोटिशो हि अण्डराशय तद् आहुः अक्षरं ब्रह्म ब्रह्म सर्वकारणकारणं विष्णोः धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः**".

(भाग.पुरा.३।११।३७-४१).

इस वचनके आधारपर एक ब्रह्मांड होनेकी कमसे कम भागवतपुराणको तो अभिप्रेत नहीं लगती. अतः इन अनेक ब्रह्मांडोंका एक ही किसी व्याख्याके आधार ऋजुतम स्वरूप स्वीकार लेना बहुविध अनेकताका अनादर लगता है. अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभ भागवतप्रतिपाद्य परमतत्त्वको '**कोटिब्रह्मांडविग्रहः**' (पुरु.सह.ना.४।५०) कहते हैं.

निष्कर्षरूपेण ब्रह्मांडोत्पत्तिके बारेमें जो तीन : [१]आदिमान्तिमसर्गादिवाद [२]सर्गनैरन्तर्यवाद [३]अ-सर्गवाद की प्रक्रिया या थियरी ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी धर्म-दर्शनों द्वारा प्रस्तावित की गयी हैं वे किसी एक ब्रह्मांडके हेतु सच्ची हों तब भी अथवा तो एक ही ब्रह्मांडको कोई विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार निरखना या परखना चाहता हो तो तब भी क्यों संभव नहीं? अनीश्वरवादी धर्मोंने जीवोंके कर्मवशात् अथवा स्वयं ब्रह्मांडघटक द्रव्योंके उत्पाद-ध्रौव्य-व्यय-शील होनेके कारण अथवा तो प्रतीत्यसमुत्पादवादमूलक संघातवादका सहारा ले कर सर्गनैरन्तर्यवाद ब्रह्मांडोत्पत्तिके बारेमें सृष्टिनिर्माताकी अनिवार्यता न रह जाय ऐसे प्रयोजनवश प्रस्तुत किया है. पर जैसा कि हम देख चुके कि "**तदा संहत्य च अन्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः सदसत्त्वम् उपादाय च उभयं ससृजुः... वर्षपूगसहस्रान्ते तद् अण्डं... कालकर्मस्वभावस्थो जीवो अजीवम् अजीवयत्. सएव पुरुषः तस्माद् अण्डं निर्भिद्य निर्गतः**" (भाग.पुरा.२।५।३३-३५) इस वचनमें स्वयं भागवतपुराण सृष्टिके उपादानभूत द्रव्योंके अन्योन्यसंघातकी प्रक्रिया भी स्वीकारता तो है ही, ब्रह्मकी उपादानता और भगवान्‌की

जगत्कर्तृता के साथ-साथ ही. अतः ब्रह्मवादके अन्तर्गत प्रतीत्यसमुत्पादको भी सर्वथा अप्रसक्त तो माना नहीं जा सकता.

उसी तरह अ-सर्गवादकी प्रक्रिया भी स्वयंसे भिन्न कार्यको उत्पन्न नहीं किया गया एतावता भिन्न कार्यरूप ब्रह्मांडके सृजनको मिथ्या भ्रम यदि माननेमें आता हो तो वह भी, श्रौत ब्रह्मवादके आधारपर मान्य किया जा सकता है! अतएव भागवतपुराणका एक वचन इस प्रसंगमें आवश्यकतया अनुसन्धेय है :

''आसीज् ज्ञानम् अथोहि अर्थः एकमेव अविकल्पितं... तद् मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितं वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत्. तयोः एकतरोहि अर्थः प्रकृतिः सा उभयात्मिका ज्ञानन्तु अन्यतमो भावः पुरुषः सो अभिधीयते. तमो रजो सत्त्वम् इति प्रकृतेः अभवन् गुणाः''.

(भाग.पुरा.११।२४।२-५).

इस वचनमें यह देखा जा सकता है कि भागवतपुराणके अनुसार ज्ञान और ज्ञेय सृष्टिके प्राकट्यसे दो पदार्थ न हो कर एक अविकल्पित अद्वितीय पदार्थ थे. ऐसी स्थितिमें कोई एकमेवाद्वितीय तत्त्व ही ज्ञान-ज्ञेयोंके द्विविध विकल्पात्मना विभक्त हुवा और बादमें ज्ञेयतत्त्व त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके रूपमें प्रकट हुवा और ज्ञानतत्त्व पुरुषात्मना प्रकट हुवा. आधुनिकविज्ञानाश्रित चिन्तनमें बर्ट्रेंड् रसेल् ऐसा ही कुछ न्यूट्रल मोनीज़म् प्रस्तावित करना चाहते थे. एतावता दृश्य या ज्ञेय जगत्को अपारमार्थिक मान कर ज्ञानाद्वितीयतावादको भागवताभिप्रेत माना नहीं जा सकता क्योंकि इस सृष्टिप्राक्कालिक ज्ञान-ज्ञेयकी अविकल्परूपताका स्वरूप भागवतके द्वितीय स्कन्धमें :

''तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि यन्मायया दुर्जयया

मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुं, विलज्जमानया यस्य स्थातुम् ईक्षापथे अमुया... द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो ब्रह्मन् नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः... तस्यापि द्रष्टुः ईशस्य कूटस्थस्य अखिलात्मनः सृज्यं सृजामि सृष्टो अहम् ईक्षयैव अभिचोदितः. सत्त्वं रजः तमः इति निर्गुणस्य गुणाः त्रय स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः''.

(भाग.पुरा.२।५।११-१८).

इस वचनकी एकादशस्कन्धीय वचनके साथ एकवाक्यता साधनेपर जिस मायाके कारण उस एकमेवाद्वितीय तत्त्वका ज्ञेय-ज्ञानके द्वैतघटित विकल्पके रूपमें विभाजन हुवा उसे स्वरूपतो निरस्त मान कर भी उन्हीं द्रव्य-कर्म-काल-स्वभाव-जीवका तत्त्वतः वासुदेवरूप होना प्रतिपादित किया गया है. अतः सृष्टिघटक इन दृश्यभूत तत्त्वोंके रूपोंमें कूटस्थ परमद्रष्टाका आत्मसंकल्पवशात् प्रकट होना प्रतिपादित किया गया है. न केवल इतना किन्तु इस प्रतिपादनके बाद आते विराजके निरूपणमें इसी तरह तृतीयस्कन्धके भी ८वें अध्यायमें भी **''आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण''** (भाग.पुरा.३।८।२५) वचनमें सृष्टिके प्राकट्यसे पूर्व विश्वरूप ब्रह्माजीको दरसाया गया. एतावता ज्ञानाद्वितीयतावादके अनुसार अपारमार्थिक होनेकी प्रमुख शर्त जो *''नासीद् नास्ति न भविष्यति''* है अर्थात् स्वप्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगिता रूपा मानी गयी है उसके विपरीत सृष्टिसे पूर्व भी अविकल्पतया सृज्यमान नाम-रूप-कर्मोंकी अव्यक्त सत्ता मान्य की होनेसे आत्मभिन्न सर्ग न हो कर स्वात्मक सर्गके निर्माणमें उसे अतदात्मक मानना मायाकार्य लगता है नकि स्वरूपतः द्रष्टा और दृश्य के दोनों या दोनोंमें से एकतरकी अपारमार्थिकता स्वीकारी जा सकती है.

यह अ-सर्गवादके वेदान्तप्रस्थानमें समर्थ उद्घोषक भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यके, यद्यपि आधुनिक विद्वान् मान्य करते हों या न करते

हों परम्परया मान्य ऐसे, 'प्रबोधसुधाकर' नामक ग्रन्थमें उपलब्ध होते—

> **"ब्रह्माण्डानि बहूनि पंकजभवान् प्रत्यण्डम् अत्यद्भुतान् गोपान् वत्सयुतान् अदर्शयद् अजं विष्णून् अशेषान् च यः शम्भुः यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रयात् कृष्णो वै पृथग् अस्ति कोऽपि अविकृतः सच्चिन्मयो निलिमा".**
> (प्रबो.सुधा.आनु.प्रक.२४२).

इस वचनद्वारा भी यही तथ्य समर्थित होता है. अतः असर्गवाद भी ब्रह्मवादके अन्तर्गत एकान्तिकतया अस्वीकार्य नहीं होता परन्तु ब्रह्मको पारमार्थिक और माया-अविद्याको अपारमार्थिक माननेपर औपनिषदिक अभिप्रायके सन्दर्भमें अंशतो अमान्य करना पड़ता है. फिरभी, जैसाकि स्टीफेन् हॉकिंग् कहते हैं कि ऑब्जर्वर् और ऑब्जर्व्ड् दोनों ही ब्रह्मांडके अंश हैं दोनोंका वास्तविक अस्तित्व है और जो दोनोंके बीच प्रभेद दिखलायी देता है उसका कोई सार्थक महत्त्व नहीं है (द्रष्ट. : वहीं पृ.४३) तदनुसार द्रष्टा-दृश्य या ज्ञान-ज्ञेय के बीच ऐकान्तिक द्वैतकी भ्रान्तिसिद्ध धारणाके सन्दर्भमें असर्गवाद अमान्य किया जाना आवश्यक नहीं है. क्योंकि उपनिषद् तो बहुत पहले ही कह चुके हैं कि **"कथम् असतः सद् जायेत? इति सत्त्वेव इदम् अग्रे आसीद् एकमेव अद्वितीयं तद् ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेय इति"** (छान्दो.उप.६।२।२-३) यहां सुस्पष्ट शब्दोंमें न केवल वर्तमानमें प्रत्युत सृष्टिसे पूर्व भी सत्ता कण्ठतः घोषित की गयी है.

आदिमान्तिमसर्गवाद भी किसी एक ब्रह्मांडके सन्दर्भमें शक्य मान लेनेमें आपत्तिजनक कोई बात लगती नहीं है.

इसी तरह आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानके द्वारा उत्प्रेक्षित जो चार थियरी प्रस्तुत की गयी हैं, नामशः : [१]द बिगबेंग् थियरी [२]द ऑस्सिलेटिंग् यूनिवर्स् थियरी [३]द स्टडी स्टेट् थियरी अथवा तो कन्टीन्यूअस् एक्स्पांडिंग् युनिवर्स् थियरी [४]द स्ट्रिंग् थियरी. इनमें अधिकांश चिन्तक [२]सर्गनैरन्तर्यवाद और उसकी सहधर्मी [३]द स्टडी स्टेट् थियरी अथवा तो कन्टीन्यूअस् एक्स्पांडिंग् युनिवर्स् थियरी को अब अमान्य कर चुके हैं.

कथमपि इन थियरीओंके कारण श्रौत-औपनिषदिक ब्रह्मवादके सिद्धान्तका निराकरण हो जाता हो ऐसा मान लेनेकी कोई अपरिहार्य धारणा प्रस्तुत हो नहीं पायी है. क्योंकि किसी एक एक ब्रह्मांडका सृजन इनमेंसे किसी एक थियरीके अनुसार हुवा हो उसमें अनन्तकोटि ब्रह्मांडके उपादानभूत ब्रह्मके निरस्त होनेका प्रश्न कहां उठता है?

भागवतपुराणके पूर्वमें उद्धृत वचनमें कहा ही गया है कि **"द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो, ब्रह्मन्!, नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वतः"** (भाग.पुरा.२।५।१४) अब ये पांचों तत्त्व परस्पर भिन्न होनेपर भी वासुदेवसे भिन्न न हों तो उस वासुदेवको साक्षाद् ब्रह्मांडका उपादान मानो या इन पांचोंके संघात या अन्यतम को उपादान मानों ब्रह्मांडकी उत्पत्तिमें कारणभूत पदार्थको किसी विशेष गुणधर्मके रूपमें देखने कहने या प्रस्तुत करनेकी शैलीमें ही अन्तर पड़ रहा है कार्यरूप ब्रह्मांड और उसके अंगीकृत कारणतत्त्व के स्वरूप में नहीं.

किसी भी तरह विचार करनेपर आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानद्वारा प्रस्तावित काल (Time), कर्म (Motion), स्वभाव (Energy), प्रकृति=द्रव्य (Matter), और पुरुष(The inherent awareness of the direction of evolution of matter or inherent design) इन पांचों पदार्थोंमें से आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको अमान्य हो तो वह पुरुषरूप चेतना पदार्थ ही है. भागवतपुराण इस विषयमें एक अतीव मननीय विधान करता है **"प्रकृतिः पुरुषः च उभौ यद्यपि आत्मविलक्षणौ अन्योन्यापाश्रयात्,**

कृष्ण!, दृश्यते न भिदा तयोः, प्रकृतौ लक्ष्यते हि आत्मा प्रकृतिः च तथा आत्मनि'' (भाग.पुरा.११।२२।२६). अतः दोनों तत्त्व पृथक् हों तब भी एकवद् भासित होते हैं. यह हकीकत तो भागवतपुराणको सर्वथा मान्य ही है. परन्तु अचेतन द्रव्योके विकासकी शृंखलामें किसी भी प्रकारकी, एकान्तिकतया नियत अथवा अनैकान्तिकतया अनेक सम्भाव्यताओंमें एक सम्भाव्यताके रूपमें ही योजनाबद्धता हो ही नहीं सकती ऐसा तो आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञान भी कह नहीं पायेगा. अतः अन्तमें झगड़ा तब केवल नामोंका और उन-उन धारणाओंके उत्सतया शास्त्रश्रद्धाको आधार मानना या ब्रह्मांड और उसके घटक द्रव्योंके वैज्ञानिक परीक्षण-निरीक्षण के हेतु किये जाते एक ऊहके रूपमें मान्य रखना इतना ही तो रह जाता है! अतः इस विषयमें थोड़ी प्रतीक्षा तो भागवतदृष्टिको भी करनी ही पड़ेगी कि कब आधुनिक ब्रह्मांडविज्ञानको उसे अभिमत पुरुषकी अनिवार्यता अनुभूत होगी! किसी भी परिस्थितिमें पांच न मान कर चार तत्त्व भी स्वीकार लें पर उन तत्त्वोंका परस्परसापेक्ष होना उनकी किसी न किसी प्रकारकी एकताकी ओर इशारा करता है.

सकल ब्रह्मांडोंके विषयमें जो हठात् ऐसा स्वीकार किया जाता न हो तो अब्राह्मिकी विश्वसृजनप्रक्रिया, नामशः, आदिमान्तिमसर्गवाद भी किसी एक ब्रह्मांडके विशेष उदाहरणमें सच्ची प्रक्रियाके रूपमें मान्य की जा सकती है. मूलमें श्रौतदृष्टिसे निहारनेपर [१]कॉस्मिक एगूमें महाविस्फोट प्रक्रिया [२]निरन्तर उत्पत्ति-विनाशशाली स्पन्दनकी प्रक्रिया [३]सृष्टिघटक तन्तुओमें उत्पत्ति-विनाशके रूपमें अवभासित होते स्पन्दनकी प्रक्रिया परस्पर पर्याप्त प्रत्यासन्न धारणायें हैं. सर्वथा असर्गवाद और सर्गनैरन्तर्यवाद कुछ दूरतर अवस्थित अवधारणायें हैं. फिरभी सर्गनैरन्तर्यवादके सन्दर्भमें यह एक वचन भागवतपुराणका उल्लेखनीय लगता है **''नित्यदा सर्वभूतां ब्रह्मादीनां... उत्पत्तिप्रलयौ एके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते. कालस्रोतोजवेन आशु ह्रियमाणस्य नित्यदा, परिणामिनाम् अवस्थाः ताः जन्मप्रलयहेतवः''**

(भाग.पुरा.१२।४।३५-३६) अतः सर्गनैरन्तर्यवाद सृष्टिविधाताके अस्तित्वको नकारनेको प्रस्तुत हुवा सिद्धान्त होनेपर भी श्रौत ब्रह्मवादके ऑपन् एअर् थियेटर्में अपनी सीट् रिज़र्व् करा कर लीला निरखना चाहता हो तो उसे बहिष्कृत करनेकी कोई आवश्यकता होनी तो नहीं चाहिये!

आप्यायन्तु मम अंगानि वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम्
अथो बलम् इन्द्रियाणि सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदम्
मा अहं ब्रह्म निराकुर्यां मा-मा ब्रह्म निराकरोद्!
अनिराकरणं मे अस्तु![२] तद् आत्मनि निरते
ये उपनिषत्सु धर्माः ते मयि सन्तु! ते मयि सन्तु!!

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ट
१. सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति..	**१-१३**
२. ब्रह्मवाद..	**१४-१२८**
आयोजकको प्रारम्भिक वक्तव्य..	१४
मंगलाचरण..	१६
नाम-रूप-कर्मकी ब्राह्मिक एकताको औपनिषदिक संदर्भ..	१७
नामरूपकर्मात्मना त्रिविधता..	१८
[१-४] **कर्मकी व्यवस्था : नाम-रूपको पारस्परिक प्रभाव/क्रिया..**	**२१**
[१] जैनधर्मकी दृष्टिसु..	२१
[२] बौद्धधर्मकी दृष्टिसु..	२१
[३] विज्ञानकी दृष्टिसु..	२२
[४] वाल्लभ दृष्टिसु..	२२
[१-३] **क्रीड़ाको स्वरूप..**	**२३**
[१] प्रभावनियतक्रीड़ा..	२३
[२] लीलात्मिका क्रीड़ा..	२३
[३] स्वाभाविक क्रीड़ा और वाकी विसंवादिता..	२३
कर्मव्यवस्थाकी क्रीड़ारूपता..	२५
ब्रह्म = उपनिषदेकगम्य..	२७
क्या शब्दप्रमाणसु वेदसिद्ध ब्रह्म 'असद्' नहीं हे?..	२९
क्या ब्रह्म अनुमानगम्य हे?..	३१
क्या जिज्ञास्यब्रह्मकी सिद्धि परार्थानुमान हे याअर्थवाद हे या स्वार्थमें प्रामाण्य हे?..	३२
जिज्ञास्यब्रह्मको स्वार्थमें प्रामाण्य..	३५
[१-२] **जिज्ञास्य ब्रह्मको अवाच्य-अमेय स्वरूप..**	**४१**
[१] बौद्धदृष्टिसु..	४१
[२] शांकरदृष्टिसु..	४२
जिज्ञास्य ब्रह्मको वाच्य-मेय स्वरूप रामानुज दृष्टिसु..	४२
वाल्लभ दृष्टिसु..	४३
जिज्ञास्य ब्रह्मको अपोह्यवाद-अभिधेयवाद : विरुद्धधर्माश्रयता..	४५
अभिधेयब्रह्मकी वेद-अवेस्तामें समानान्तरता..	**४७**
क्या ब्रह्म अवाच्य या अमेय हे?..	४८
ब्रह्म अवाच्य - अमेय भी हे..	५१
अवाच्य ब्रह्मको वागात्मक व्याकरण मानें वाणीसु सृष्टि..	५२
ब्रह्म ऑनोमोटोपोइया नहीं हे..	५४
अवाच्य ब्रह्म अज्ञानमूलक नहीं हे..	५६
अवैदिक अपोह्यवादकी वैदिक ब्रह्मवादरूपता..	५८
अमेयब्रह्मके बारेमें बुद्धमत..	६०
सृष्टिप्रक्रिया वेदकी और बुद्धकी दृष्टिसु..	६८
ब्रह्मानुभवके बिना आत्मानुभव संभव नहीं..	७२
अभिधेय ब्रह्मवाद : ज़रथुष्ट्रको उपक्रम..	**७९**
[१-५] अवेस्ता और वेद की समानता..	८३
[१] ब्रह्म और अहुरमज़्दाकी दृष्टिसु..	८३
[२] सृष्टिकी उत्पत्तिकी दृष्टिसु..	८८
सृष्टिप्रक्रियामें राहुल सांकृत्यायनकी वैदिक तादात्म्यवादी दृष्टिसुविरोधी प्रत्ययवादी दृष्टि..	९०
सृष्टिमें नाम-रूपको तादात्म्य वेददृष्टिसु..	९१
[३] सृष्टिमें नाम-रूपकी तादात्म्यदृष्टि..	९३
[४] विद्या-अविद्या-श्रीकी दृष्टिसु..	९५
[५] हउर्वतात् (सर्वता) और अमृतता की दृष्टिसु..	९८
विरोधाभासी अपोह्य और अभिधेय रूपको समन्वय लीलादृष्टिसु..	१००
श्रौत ब्रह्मवाद : वरणके अनुरूप ब्रह्मको विवरण..	१०१

श्रौतब्रह्मवाद और मिस्रमतकी समानता.. **१०७-१२८**
[१]कछुआ और बत्तख की दृष्टिसु.. १०७
[२]हेलियोपोलिस् और आत्मरमण की दृष्टिसु.. ११२
[३]सृष्टिप्रक्रियाकी दृष्टिसु.. ११४
[४]ब्राह्मिक अहंकारकी दृष्टिसु : ''भवान् एकः शिष्यते शेष संज्ञः''.. ११६
[५]सृष्टिकी यज्ञात्मकता और अभिन्ननिमित्तोपादानता की दृष्टिसु.. ११८
[५-क]श्रुतिको स्वार्थमें प्रामाण्य.. ११८
[५-ख]अब्रह्मवादी चिन्तनसु गुण-दोषदृष्टि.. १२१
श्रौतनिष्कर्ष : यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्.. १२८

३.ब्रह्मवादी और सापेक्षतावादी चिन्तनके समान आधारतलका विमर्श.. **१२९-१७७**
उपक्रम.. १३०
प्रमाणतः स्वरूपनिर्धारण.. १४१
प्रमेयतः स्वरूपनिर्धारण.. १४८
साधनतः स्वरूपनिर्धारण.. १६१
फलतः स्वरूपनिर्धारण.. १६६

परिशिष्ट
तादात्म्यथवाशून्यम्.. **१७८-१८२**
मंगलाचरणम्.. १७८
विषयोपक्रमः.. १७८
एतस्य भागवतवचनेन उपपत्तिः.. १७८
तत्र वसुबन्धूक्तशून्यतास्वरूपम्.. १७९
तदत्र ब्रह्मवादेन समाधानम्.. १८०
उपनिषदाद्युक्तब्रह्मशून्यतयोः स्वरूपतुलना.. १८१

उपसंहार.. १८२
उद्धृतवचनावली संदर्भ.. १८३

उद्धरणतालिका.. **१८५-१९३**

श्रीहरिः

।। सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति ।।

[१.आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानाद् आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति.

२.सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता.

३.एषो अस्य परमः आनन्दः एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति.

४.यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखम् अस्ति, भूमैव सुखम्. भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः.

आनन्दमयो अभ्यासात्.]

अमरकोशमें ''**मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदः आमोदः संमदः आनन्दथुः आनन्दः शर्म शातं सुखं**'' (अम.१।४।२४-५) इन पदोंको पर्यायवाचक माना गया है, इनके अन्तर्गत 'सुख' और 'आनन्द' भी परिगणित हुवे हैं. फिरभी इन पदोंकी व्याकरणशास्त्रीय व्युत्पत्ति और व्यवहारकालिक प्रयोग के प्रभेदका अनुसन्धान करनेपर, उभरनेवाली विभिन्न अर्थछायाओंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है. 'सुख'पद सामान्यतया ''सुखयति इति सुखम्'' रूपेण व्युत्पन्न माना जाता है; परन्तु, ''**कर्तृकरणाद् धात्वर्थे**'' (पा.गणपाठ) के नियमके आधारपर इन्द्रियार्थक 'ख'के साथ 'सु'उपसर्ग जोड़ कर बनाया गया यह पद है. इसे चुरादिगणपठित 'णिच्' प्रत्यय लगानेपर 'सुखयति' क्रियापद बनता है. अतः आनन्दका पर्याय होनेपर भी सुखका मूलरूपेण विभिन्न कर्म-ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा सम्पन्न होते व्यापार होना ध्वनित होता है. इसके

विपरीत 'आनन्द'पद समृद्ध्यर्थक 'नद'धातुके साथ पुनः 'आ' उपसर्ग जोड़नेसे बनाया गया पद है. अर्थात् ऐसी जो वृद्धि निरतिशय हो वह आनन्द कहलाती है. उपनिषद् अतएव ''**यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखम् अस्ति**'' (छान्दो.उप.७।२३।१) प्रतिपादन करते समय ऐन्द्रियक अल्पसुखको वस्तुतः सुख न मान कर भूमा सुखकी क्षुद्रमात्रा होना स्वीकारते हैं. इसकी तुलनामें आनन्द निरतिशयता या अपरिच्छिन्नता के अर्थमें ही प्रयोज्य बनता है. अतएव ''**एषो अस्य परमः आनन्दः एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति**'' (बृह.उप.४।३।३२) वचनमें ब्रह्मके अंशभूत अन्य भूतात्मा उस परम आनन्दकी सुखरूपा मात्राओंका उपजीवन करते हैं, ऐसा विधान भी संगत हो जाता है.

इस निरतिशय सुखको आत्यन्तिक दुःखाभावके साथ होते सुखके रूपमें खोजनेपर रसशास्त्रकी दृष्टिसे करुण रौद्र भयानक बीभत्स रसोंके कारण होते शोक क्रोध भीति और जुगुप्सा के दुःखप्रद भावोंमें भी मिलते ब्रह्मानन्दसहोदर रसानन्दकी व्याख्या अशक्य हो जाती है. अतः दुःखके केवल आत्यन्तिक अपोहन या आत्यन्तिक सुखके साथ-साथ दुःखके अपोहन में आनन्दकी मीमांसा शक्य नहीं. अतएव दुःखसे अमिश्रित सुखके रूपमें भी आनन्दकी व्याख्या उपपन्न नहीं होती. रसशास्त्रीय बातोंको भुला भी दे तब भी, उदाहरणतया, *''विद्या कुतः सुखार्थिनां, विद्यार्थिनां कुतः सुखं? सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्''* जैसे सुभाषितोंमें कष्टसाध्य विद्योपार्जनमें या अन्यान्य भी कष्टसाध्य उद्यमोंमें मिलते आनन्दकी व्याख्या भी शक्य नहीं. अतएव तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मज्ञानोपदेशके प्रसंगमें एक अन्य व्याख्यानीतिका अनुसरण करते आनन्दको ऐन्द्रियक धरातलपर उतारनेके बावजूद अनैन्द्रियक सुखके रूपमें ही उसे समझाना चाहता है ''**सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति! युवा स्यात् साधु युवा अध्यायकः आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः तस्य इयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुषो आनन्दः ते ये शतं मानुषाः आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणाम् आनन्दः श्रोत्रियस्य**

च अकामहतस्य... ते ये शतं बृहस्पतेः आनन्दः स एको ब्रह्मणः आनन्दः'' (तैत्ति.उप.२।८) अर्थात् भौतिक सामाजिक शारीरिक और मानसिक रूपमें स्वस्थ महत्त्वांकाक्षी उद्यमशील युवान विद्यार्थी कष्टसाध्य विद्योपार्जनका आनन्द जैसे लेता है, वैसा ही आनन्द जो अपनी अनेकविध कामनाओंके आवेगसे त्रस्त न हो ऐसे श्रोत्रिय अर्थात् श्रुत्युक्त साधनामें निरत साधकको भी अनुभूत होता है. यों मानुष आनन्दको उत्तरोत्तर परस्पर दस बार शतशतगुणित करनेकी प्रक्रियामें लगभग बीस अरब गुनी आनन्दरूप ब्रह्मकी अगणितानन्दता प्रतिपादित की गयी है.

अस्तु, इस अगणित आनन्दकी अवधारणामें 'अकामहत' होनेकी शर्त और जोड़नेपर पुनः एक प्रश्न उठता है. क्योंकि किसी भी कार्यके उपक्रममें हमारी कामनाओंका पूर्ण न होना हमारेलिये निश्चय ही दुःखका हेतु तो बनता ही है. अतः निष्काम हो कर यदि कहीं हम प्रवृत्त हो पाते हों तो हमें अनेकस्तरीय आनन्दकी अनुभूति मिल सकती है. और यों देखने जानेपर **''यन्न दुःखेन सम्भिन्नं नच ग्रस्तम् अनन्तरम् अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं 'स्व'पदास्पदम्'-**'(   ) वचनमें जैसा प्रतिपादित हुवा तदनुसार पुनः अनभिलषित दुःखसे अमिश्रित निज आत्मीय अभिलाषाओंकी पूर्तिमें अनुभूत होते सुखका ही दूसरा नाम आनन्द सिद्ध होता है. सो इधर-उधर भटक कर पुनः प्रस्थानबिन्दुपर ही यात्राके लौट आने जैसा यह वृत्तान्त बन जाता है. अतः इस आनन्दकी मीमांसामें हमें हमें सुख और/अथवा सकामता/निष्कामता की वैचारिक दिशाकी ओर अगतिकतया मुड़ना पड़ेगा.

तदर्थ महर्षि याज्ञवल्क्य और उनकी भार्या मैत्रेयी के परस्पर संवादका विमर्श आवश्यक है.

वहां यह आता है कि महर्षिने संन्यासग्रहणसे पूर्व अपनी मैत्रेयी

पत्नी और द्वितीय भार्या कात्यायनी के बीच सम्पत्तिके विभाजनका अभिप्राय प्रकट किया. इसपर मैत्रयीने जिज्ञासा प्रकट की कि महर्षि जितनी सम्पत्तिके बंटवारेमें देना चाहते हैं, उसे पा लेनेपर भी तैत्तिरीयोपनिषद्में पहले जैसे **''तस्य इयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्''** दिखलाया वैसे ही **''सर्वा इयं पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेन अमृता स्याम्?''** यों सम्पत्तिके बंटवारेमें खुदका अपरितोष प्रकट किया. इसपर महर्षिने जो खुलासा दिया वह यह कि **'' 'न' इति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्याद्. अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति इति वित्तेन''**अर्थात् भौतिक सुख पानेके साधनोंसे अमृतत्वका कुछ लेना-देना नहीं है. इसपर मैत्रेयीने आपत्ति प्रकट की **''येन अहं न अमृता स्याम् किम् अहं तेन कुर्याम्?''** (बृह.उप.२।४।१-३) अर्थात् सारी पृथिवीको धनसे ढंक देनेपर भी अमृतता प्राप्त न हो पाती हो तो ऐसे जीवनको जीनेसे क्या लाभ? इस समस्याके समाधानतया महर्षि याज्ञवल्क्यने जो उपदेश दिया उसमें प्रिय और काम्य के बीच रहा तारतम्य स्फुटतया समझाया है. वहां जो कुछ कहा उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एक उद्गार यह प्रकट हुवा है :

> **''नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति**
> **आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति... मैत्रेयि! आत्मनो**
> **वा दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितम्...**
> **सर्वं तं परादाद् यो अन्यत्र आत्मनः सर्वं वेद...**
> **इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा''.**
>
> (बृह.उप.२।४।५-६).

इस संवादपर ध्यान देनेपर ऐसा लगता है कि मूलतः प्रत्येक व्यक्तिका प्रेम तो स्वयं निजात्माके साथ होता है. अतः मूलतः आत्मकामना ही अपनेसे अतिरिक्त वस्तु या व्यक्ति के बारेमें प्रेमात्मना प्रकट होती है. अतः आत्मद्रष्टा आत्ममति आत्मविज्ञानी के लिये

स्वयं अपनेसे अतिरिक्त कुछ भी श्रवणीय मननीय निदिध्यासनीय रह नहीं जाता. क्योंकि सारे बाह्य परिवेशसे लगाव हमारा आत्मरतिमूलक होता है.

अत: प्रश्न उठता है कि इस तरहका आत्मकैवल्य क्या वस्तुत: अमृतसुख या अमृतानन्द प्रदान कर सकता है?

प्रश्न यहां वैयक्तिक मृत्युत्रास या आत्मविघातक द्वैतघटित बाह्य परिवेश के बारेमें न हो कर परिच्छिन्न व्यक्तिचेतनाकी परिसीमासे अपरिच्छिन्न आत्मबोधकी अन्वितिका है. मृत्युभीतिसे बचनेको शरीरातीत आत्माके अस्तित्वसे आश्वस्त होनेकी वास्तविक या अवास्तविक दुराशाका नहीं है. अत: यहां ऐन्द्रियक सुखसे अतीत भूमासुख या आनन्द को कैसे प्राप्त किया जाये? यह जिज्ञास्य बन रहा है.

क्योंकि इसी बृहदारण्यकोपनिषद्के प्रारम्भमें एक रोचक ब्राह्मिक वृत्तान्त वर्णित हुवा है :

> **"आत्मा वा इदम् अग्रे आसीत् पुरुषविध:. सो अनुवीक्ष्य न अन्यद् आत्मनो अपश्यत्. सो 'अहम् अस्मि' इति अग्रे व्याहरत् ततो 'अहं'नामा अभवत्... सो अबिभेत् तस्माद् एकाकी बिभेति. स ह अयम् ईक्षांचक्रे यद् 'मदन्यत् नास्ति कस्माद् नु बिभेमि! ततएव अस्य भयं वीयाय. कस्माद् बिभेति? द्वितीयाद् वै भयं भवति. स वै नैव रेमे. तस्माद् एकाकी न रमते. स द्वितीयम् ऐच्छत्. स ह एतावान् आस... तद्ध इदं तर्हि अव्याकृतम् आसीत्. तद् नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत 'असौनामा' अयम् 'इदंरूप' इति. सएष इह प्रविष्ट:... अकृत्स्नो**

> **हि स प्राणन्नेव 'प्राण'नाम भवति. वदन् 'वाक्', पश्यन् 'चक्षु' शृण्वन् 'श्रोत्रं', मन्वानो 'मन:'. तानि एतानि कर्मनामान्येव. स यो अत: ऐकैकम् उपास्ते न स वेद अकृत्स्नो हि एषो अत: एकैकेन भवति. 'आत्मा'इत्येव उपासीत अत्र हि एते सर्वे एकं भवन्ति. तदेतत् पदनीयम् अस्य सर्वस्य यद् अयम् आत्मा अनेन हि एतत् सर्वम् वेद."**
>
> (बृह.उप.१।४।१-७).

अर्थात् सर्वथा एकाकी आत्माको भी अपने कैवल्यमें प्रकट हुयी भीतिका तो निवारण यद्यपि स्वयंकी एकाकिताके तथ्यके वश हो पाता है परन्तु उस एकाकितामें अरति जो सताती थी उसके निवारण न हो पानेके कारण स्वयंके एकत्वमें अनेकता प्रकट करनी पड़ी!

यों द्वैतमें भीतिका दु:ख और अद्वैतमें अरतिका असुख इन दोनों बाधाओंसे उबरनेका उपाय द्रष्टा आत्माके कैवल्यमें दृश्यीभूत विषय और उनके ग्राहककरण आदिके बाहुल्यकी अनुभूति अपरिहार्य बन जाती है. वह भीतिरहित आत्मरति तभी निष्पन्न हो पाती है. अत: ऐन्द्रियक एक-एककी आंशिक क्षुद्रताकी उपासनाके कारण पैदा होती भीतिसे बचा कर अतीन्द्रिय समग्र अंशीकी रतिको उभारनेपर यहां भार दिया गया है.

इस मोड़पर पहुंचनेपर हमें दु:खाभावरूप अपोहनका आश्रय लिये बिना भूमासुख या आनन्द के भावात्मक स्वरूप या निर्वचन की अन्तर्दृष्टि उपलब्ध हो जाती है. यह स्वयं व्यक्तिके देहेन्द्रियादि क्रियाकलापोंकी अनेकविधतामें एक आत्माको बहुविध नाम-रूप-कर्मोके रूपमें निहारनेकी कथा है. अर्थात् अंशात्मिका क्षुद्रताओंमें अंशीरूप आत्माके केवल अखण्डैक्यकी अवधारणा नहीं है. ऐन्द्रियक सुख प्रदान करनेवाले अनेकविध

अंशात्मक नाम-रूप-कर्मोका **''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि... रूपाणि... कर्माणि बिभर्ति. एतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा आत्मा एक: सन् एतत् त्रयम्''** (बृह.उप.१।६।१-६) यों अंशी ब्रह्मकी अखण्डैकरूपताके साथ अनुदर्शन कर पाना शोकमोहातीत भूमासुख या आनन्द है.

यह वैयक्तिक स्तरपर जैसा जो कुछ हो, उसे वैश्विक स्तरपर जबतक समन्वित न किया जाये तब तक आनन्द प्रकट नहीं हो पाता ऐसे सिद्धान्तकी उद्घोषणा है.

यही बात ईशावास्योपनिषद्में **''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येव अनुपश्यति सर्वभूतेषु च आत्मानं ततो न विजुगुप्सते. यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैव अभूद् विजानत: तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वम् अनुपश्यत:''** (ईशा.उप.६-७) अर्थात् यह आत्मानुभूति और विश्वानुभूति के बीच किसी तरहके तादात्म्यदर्शनका सिद्धान्त है. उनका इतरेतरनिरासक दो खण्डोंमें विभाजन नहीं. अतएव ईशावास्योपनिषद् अंशात्मक खण्डोंकी अनेकविधता जो अविद्यावश भासित होती है और अंशीकी अखण्डैकता जो विद्यावश भासित होती है, उन्हें भी एकीकृत रूपमें निहारनेको **''अन्ध:तम: प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते ततो भूयइव तमो य उ विद्यायां रता:... विद्यां च अविद्यां च य: तद् वेद उभयं सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते''** (ईशा.उप.९-११) ऐसा उपदेश देता है. उपनिषद् शोकमोहातीत सुखानुभूतिकी अवस्थाको तादात्म्यदर्शनके साथ जोड़ आनन्दकी अपोहनात्मिका व्याख्या देनेके बजाय भावात्मक धर्मके आधारपर निर्वचन करना चाहता है. निष्कर्षत: सुखानुभूतिको दु:खाभावकी अनुभूतिमें खपाया नहीं जा सकता है.

मूलमें इस तरहके असंकीर्ण खण्डोंके बारेमें आत्यन्तिक भेदवादी दृष्टिकोण द्रव्य और/अथवा क्रिया तरह अर्थात् *अस्ति* (बींग) और

भवति(बिकमिंग) के इतरेतरनिरासक दो पृथक वृत्तोंको स्वीकारनेकी संकीर्ण मानसिकताका परिणाम है. अत: ब्राह्मिक आनन्द और जागतिक सुख के अन्तर्भेदोंको परखना हो तो **'सच्चिदानन्द'** (द्रष्ट.''ब्रह्मैव इदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपं'' नृसिं.उत्त.ताप.उप.७) ब्रह्मकी **'सत्यं-ज्ञानम्-अनन्तं ब्रह्म'** (तैत्ति.उप.२।१) बननेकी औपनिषदिक प्रक्रियाका अनुसन्धान आवश्यक सिद्ध होता है.

तैत्तिरीयोपनिषद्की ब्रह्मवल्लीमें यह प्रतिपादन हमें मिलता है कि ब्रह्ममेंसे कैसे क्रमश: उत्तरोत्तर आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी ओषधि अन्न और पुरुष प्रकट हुवे; और, इस अन्नोद्भूत अन्नमय कोषरूप पुरुषके अन्तर्गत कैसे प्राण मन विज्ञान आनन्दमय अन्तर्निहित रहते हैं. क्योंकि उस एकमेवाद्वितीय ब्रह्मके भीतर कामना प्रकट हुयी कि मैं आत्मबहुल हो जाऊं. सो उस सच्चिदानन्दने अपने सदंशमेंसे आकाशादि पांच तत्त्व प्रकट किये. इनके संघातसे बने कोषमें वह पुन: अन्नमयब्रह्म प्राणमयब्रह्म मनोमयब्रह्म विज्ञानमयब्रह्म और आनन्दमयब्रह्म के पांचविध रूपोंको धारण कर प्रविष्ट हो गया. इस सृष्टिप्रक्रियाको स्वीकारनेके कारण उपनिषद् कहता है :

> **''सो अकामयत 'बहु स्यां प्रजायेय' इति. स तपो अतप्यत स तप: तप्त्वा इदं सर्वम् असृजत. यदिदं किञ्च तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत. तदनुप्रविश्य सत् च त्यत् च अभवत्, निरुक्तं च अनिरुक्तं च, निलयनं च अनिलयनं च, विज्ञानं च अविज्ञानं च, सत्यं च अनृतं च, सत्यम् अभवत्. यदिदं किञ्च तत् 'सत्यम्' इति आचक्षते''.**
>
> (तैत्ति.उप.२।६).

अत: अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्ममें सत् चिद्रूप होता है, इसी

च अहंकारः इति इयं मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा,
अपरा इयम् इतस्तु अन्या प्रकृतिं विद्धि मे परां
जीवभूतां... यया इदं धार्यते जगत्''.
(भग.गीता.७।४-५).

यों दोनोंका ही पारमात्मिक प्रकृति होना प्रतिपादित किया गया है. अतः दोनों स्वरूपतः तो एकात्मक पारमार्थिक सत्य ही हैं. फिरभी विभक्ततया अवभासित होनेके कारण दोनों ही विभक्त गुणधर्मोंको प्रकट करनेवाली बन जाती हैं. अतः उनकी मौलिक एकात्मकताके बोधसे पूर्व प्रतीत होते गुणधर्मोंका एकदूजेमे समारोपण, एक सोपाधिक अनृतता प्रकट करने लगता है. यह अनृतता मौलिक एकात्मकताके प्रतिभासित होते ही पारमार्थिक सत्यताकी प्रतिभासिका भी बन सकती है. यह तथ्य भगवद्गीताके इसी अध्यायमें अनावृत हुवा है :

''ये चैव सात्त्विकाः भावाः राजसाः तामसाः
च ये मत्तएव इति तान् विद्धि नतु अहं तेषु ते
मयि. त्रिभिः गुणमयैः भावैः एभिः सर्वम् इदं जगत्
मोहितं न अभिजानाति माम् एभ्यः परम् अव्ययम्''.
(भग.गीता.७।१२-१३).

अर्थात् जीवचेतनाकी तरह त्रिगुणात्मिका जडप्रकृति भी परब्रह्म परमात्माकी समग्रतामें तो पारमार्थिकतया एकीभावापन्न ही रहती है सच्चिदानन्द ब्रह्मके सदंश चिदंश और आनन्दांश के रूपोंमें आत्मविभाजनकी प्रक्रियामें अनेकभावापन्ना हो कर एकदूजेमें अप्रकट गुणधर्मोंका एकदूजेकी उपाधि बन कर समारोपका जब हेतु बन जाती हैं तब एक सोपाधिक अनृतता प्रकट हो जाती है. अर्थात् समग्र अंशीका अंशोंमें न समाना परन्तु सभी अंशोंका समावेश तो अंशीमें न होता हो तो अंशांशिभाव ही अनुपपन्न हो जाता है यह **''नतु अहं तेषु ते मयि''** कहनेका

अभिप्राय है. इस पारमार्थिक तथ्यका उद्घोष छान्दोग्योपनिषद्में भी अतीव प्रभावशाली शब्दोंमें यों किया गया है :

''सन्मूलम् अन्विच्छ सन्मूलाः... इमाः सर्वाः
प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः. यथानु खलु... इमाः
तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृद् ऐकैका भवति...
अस्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः
प्राणे प्राणः तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्. स
य एषो अणिमा ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यं
स आत्मा तत् त्वम् असि''.
(छान्दो.उप.६।७।६-७).

अर्थात् दृश्यरूप यह सारा स्थूल जगत् जैसे सन्मूलक है और वह अपने सूक्ष्मरूपमें प्रत्यावर्तनसे पहले समझमें नहीं आ सकता. फिरभी अपने सूक्ष्म मूलरूपसे प्रकट होनेके बाद स्थूल जगत् उसी सूक्ष्ममें अवस्थित रहनेपर भी जब तक अन्तमें सूक्ष्म मूलरूपमें विलीन नहीं हो जाता तब तक उससे भिन्नतया ही अवभासित होता है. सूक्ष्म मूलरूपमें क्रमशः प्रत्यावर्तनकी प्रक्रियामें वाणी मनमें मन प्राणमें प्राण तेजस् तत्त्वमें और तेजस् तत्त्व परदेवतारूप परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो जाता है. अतः परिदृश्यमान सभी कुछ एतदात्मक ब्रह्मात्मक ही सिद्ध होता है. क्योंकि सभीके भीतर आत्मतया तो परमात्मा ही अवस्थित है और वही तुम चिदंशरूप जीव भी तो हो.

इसी तरह सभी सात्त्विक राजस और तामस सुख भी अन्तमें तो आनन्दमेंसे प्रकट हुवे हैं, आनन्दमें अवस्थित हैं; और, आनन्दमें ही अन्तमें विलीन होनेवाले हैं. अतः आनन्दात्मक ही हैं. परन्तु अपने स्थूल प्राकृत गुणोंकी सात्त्विक राजस तामस उपाधिओंसे ग्रस्त होनेके कारण, साथ ही साथ, मौलिक एकात्मकताके अनवभासित रहनेके

तरह चित् भी आनन्दरूप होनेसे केवल अस्ति(बींग)रूप धर्मी होता है परन्तु आकाशादिक्रमसे बहुभावापन्न होनेपर वह सत् सत्य(=सत्+त्यत्) अर्थात् भवति(बिकमिंग) धर्मरूप क्रिया बन जाता है. इसी तरह अखण्डसच्चिदानन्दरूप ब्रह्मका धर्मिरूप चित् ज्ञान(=विज्ञान + अविज्ञान) धर्मरूप 'जानाति/न जानाति' क्रिया बन जाता है. समानन्यायेन धर्मिरूप आनन्द भी अनेकविध नाम-रूप-कर्मोंमें प्रकट होनेके कारण 'सुखयति/दु:खयति'धर्मरूप क्रिया बन जाता है. यहीं आगे चल कर उपनिषद् यह भी समझाता है कि कैसे इस ब्रह्मने अपने-आपको इतने सारे रूपोंमें सिरजा होनेके कारण इन सभी अनेकविधतामें अन्तर्निहित रस तो एकमात्र वही है. क्योंकि वह यदि इन क्षररूपोंके भीतर अक्षरात्मना विद्यमान न होता तो कौन इस क्षयिष्णु जगत्में एक सांस लेनेभरको जीना चाहता! अत: जो द्वन्द्वात्मक रूप प्रकट किये उनमें सत्के भीतर त्यत्, निरुक्तके भीतर अनिरुक्त सनिलयनके भीतर अनिलयन और अनृत-अविज्ञानके भीतर सत्य-विज्ञान रूपोंको धारण करनेवाला अन्तर्निगूढ रहता ही है. अत: जो द्रष्टा इन खण्डोंमें परस्पर अन्तर या इतरेतरनिरासक आत्यन्तिक भेदमें निगूढ अन्यको नहीं देख पाता उसे तो भय लगता ही है. जो भेद देखने लगता है उसका तो भयभीत या शोकमोहग्रस्त होना स्वाभाविक कथा है.

कुल मिला कर सब कुछ आनन्दसे प्रकट हुवा है, आनन्दमें अवस्थित है; और, आनन्दमें ही अन्तमें विलीन होनेवाला है. उस ब्रह्मात्मक आनन्द और जागतिक सुखदु:ख के बीच अमिट भेदरेखा खींचनेके कारण शोकमोहभयादि दु:खसे ग्रस्त हो जाता है. यों आनन्दमें दु:खानुभूतिकी उपपत्ति मिल जाती है.

अतएव भगवद्गीताके बारहवें अध्यायमें :

''सुखन्तु इदानीं त्रिविधं शृणु : ...[1]अभ्यासाद्

रमते यत्र दु:खान्तं च निगच्छति, यत् तद् अग्रे विषमिव परिणामे अमृतोपमं तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजं [2]विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तद् अग्रे अमृतोपमं परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतं [3]यद् अग्रे च अनुबन्धे च सुखं मोहनम् आत्मनो निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत् तामसम् उदाहृतम्. न तद् अस्ति पृथिव्यां च दिवि देवेषु वा पुन: सत्त्वं प्रकृतिजै: मुक्तं यद् एभि: त्रिभि: गुणै:''.

(भग.गीता.१२।३६-४०).

अर्थात् आनन्द तो प्राकृत गुणोंके दायरेमें आ नहीं पाता, क्योंकि वे प्राकृत गुण अपरिच्छिन्न आनन्दके दायरेमें प्रककट हुवे परिच्छेद हैं. सुख, परन्तु, अपनी तीनों सात्त्विक राजस और तामस विधाओंमें, उस अखण्ड सच्चिदानन्दके अवभासित न हो पानेके कारण, आनन्दकी क्षुद्रमात्राओंके साथ दु:खमिश्रिततया प्रतिभासित होता है. यह ऐसा प्रकट निर्वचनीय निलयन प्राणेन्द्रियमनोबुद्धि-अहंकार-चित्तादिकी उपाधिके साथ विज्ञात होते अनृत नाम रूप कर्म रूपी विषयोंके बारेमें बारेमें होता है. ये सभी कुछ उस एक पूर्वोक्त नृसिंहोत्तरतापिनीमें निरूपित सच्चिदानन्दरूपकी अपनी समग्रतामें प्रतिभासित न हो कर सदंश चिदंश और आनन्दके क्षुद्रांशमात्राओंमें प्रतिभासित होनेके कारण घटित होता है.

यहां उल्लेखनीय हो जाता है कि इन प्रतिभासोंके बारेमें कही जाती अनृतता निरुपाधिकी न हो कर सोपाधिकी जाननी चाहिये. इसे सोपाधिक सत्यतामें खपा देना अतएव अनुचित है. क्योंकि ब्रह्मकी सदंशरूपा जड़प्रकृति और चिदंशरूपा जीवप्रकृति यों दोनोंका परमात्माकी प्रकृति होना उल्लिखित है भगवद्गीतामें :

''भूमि: आपो अनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव

कारण भी उनकी आनन्दात्मकता प्रकट नहीं हो पाती. वह लोकमें थोड़ी-बहुत रसात्मक आनन्दानुभूतिकी प्रक्रियामें अपनी झलक कुछ परिमित कालकी अवधिमें प्रकट करती होनेपर भी शाश्वततया प्रकट नहीं हो पाती.

निष्कर्षतया आनन्द एक ऐसा धर्मी(अस्ति=बींग) है जिसमें 'सुखयति/दु:खयति' धर्मरूपा क्रिया(भवति=बिकमिंग) अनेकविध रूपोंमें प्रकट होती है और उपपन्न भी होती है. सुख और दु:ख इतरेतरके निरासक हो सकते हैं परन्तु आनन्द सर्वोद्भावक सर्वसमावेशी तथा सर्वसमाहारी देश-काल-स्वरूपत: अपरिच्छिन्न एक धर्मी है.

सैषा आनन्दस्य मीमांसा !

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीआचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

ब्रह्मवाद

(वैदिक-अवैदिक तुलनात्मक दृष्टिसु)

॥ मंगलाचरण ॥

चिन्ता-सन्तान-हन्तारो यत्-पादाम्बुज-रेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्-वल्लभ-नन्दनम् ॥२॥
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनम् ॥
लक्ष्मी-सहस्त्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥४॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा ॥
षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम ॥५॥

(आयोजकको प्रारम्भिक वक्तव्य)

आपकी आज्ञासु ये संगोष्ठी, जो 'वल्लभाचार्य ट्रस्ट्' संस्था द्वारा आयोजित हे, वाको प्रारम्भिक वक्तव्य कर रह्यो हूं. साधनाप्रणालीमें याही स्थानपे याही तरहसु एकत्रित भयें हतें. वाके बाद काफी लंबे समयके बाद यहां पुनः एकत्रित होयवेको अवसर मिल्यो हे. 'ठठाई भाटिया सेवा फंड्' और 'श्रीवल्लभसुखधाम' की सुंदर व्यवस्था ब्रह्मके गहन चिंतनमें सहायक होगी, ऐसी आशा रखें. जो शृंखला लंबे समयसु चली आ रही हे वाके बीचमें एक लंबो अंतराल आ गयो. पुनः अपन् एकत्रित हो रहे हें वो सौभाग्यको विषय हे पर कम समयमें एकत्रित होवेको अवसर मिले तो ज्यादा अच्छो और ज्यादा चिंतनको अवसर मिले. ग्रंथनूको भी सघन अध्ययन करवेको

अवसर मिल जाय. अन्यथा प्रासंगिक प्रवचनमें जुड़े भये जो ग्रंथ हें उनको अध्ययन-अध्यापन होतो रहे पर ऐसे हटके विषयकी चर्चा जहां नहीं होती होय वो ग्रंथ भी बंदसे रेहते होवें.

या संगोष्ठीमें या बखत एक नयो फीचर् अॅड् कर रहे हें. सम्प्रदायके बाहरसु अन्य मतके विद्वाननूकु यामें आमन्त्रित कियो गयो हे. प्रतिदिन एक-एक विद्वान जो तत्त्वचिंतनके क्षेत्रमें कार्य कर रहे हें, उनकु अपनूने निमन्त्रित किये हें. उनके लिये अपनी प्रक्रिया देखवेको अवसर मिलेगो और अपनूकु उनकी शैलीको, उनके चिंतनको लाभ मिलेगो. या सॅमिनार्में अपनूकु कई लाभ मिल रहे हें. जैसे पिछली बार भी अपन् संगोष्ठीमें देखते आये हें के आलेख लिखवेवालो स्वयं अपने पत्रकु प्रस्तुत नहीं करे परन्तु कोई दूसरो व्यक्ति प्रस्तुत करे वा शैलीसु या बखत भी सबनूकु अपने-अपने पत्रकु दूसरेसु सुनवेको अवसर मिलेगो. प्रक्रिया ये रहेगी के पंद्रह-बीस मिनट्में पत्रकी प्रस्तुति होवे. आलेख जाने लिख्यो हे वो वाके बाद वा विषयमें जो कुछ भी केहनो चाहे वो पंद्रह-बीस मिनट्में कहें. तीसरे क्रममें ओपन् फोरम्पे चर्चा. या तरेहसु प्रत्येक आलेखपे अपन् करेंगे. कुछ आलेख जिनने लिखे हें वो कोई कारणवश यहां उपस्थित नहीं हो पाये तो भी उनके पत्रकु अपन् ले रहे हें के जासु वा विषयकी आनुपूर्वी बनी रहे.

जो अतिथि बाहरसु आ रहे हें उनसु अपन् ये अपेक्षा रखेंगे के पत्र अगर वो देख पाये होंय अथवा वो चर्चा सुन पायें वासु उनके जो भी ऑब्जर्वेशन् हें वे यहां दे सके हें. और उनको भी वा विषयके प्रति कोई वक्तव्य होवे वाकी प्रस्तुति भी वो करें.

या बखत साम्प्रदायिक विषयके ऊपर जो चर्चा संगोष्ठी चल रही हती वाकी शृंखला करीब फल पर्यन्त पोहोंचके सफल भयी. अब तत्त्वचिंतनके विषयनूकु अपन् आगे बढ़ा रहे हें. या तरहसु

जैसे श्यामुदादाकी प्रेरणा और आज्ञा होयगी वा अनुसार आगे भी करेंगे. 'ब्रह्म'को विषय या बखत अपन् ले रहे हें. और आप भी संगोष्ठीके आरम्भमें या विषयपे प्रतिदिन विषयप्रवर्तनके रूपमें और जो विषय या सूचीमें नहीं आ पाये हें उनसु भी अपनो परिचय हो सके हे. अन्य मतके भी विषयमें जो-जो विचार हें वा विषयमें भी आप निरूपण करेंगे. समय अपनो यद्यपि दससु लेके रात तक जब-तक अपनो सामर्थ्य होवे तब-तक हे. पर विषय जितने हें वा हिसाबसु संभव जितनो हो पायेगो वो पूर्ण करवेको प्रयास करेंगे. पर विषयकु अन्याय होय और जल्दीसु खतम हो जाये वो दृष्टि नहीं रखके. ये सॅमिनार् पहले वल्लभाचार्यपीठ हालोलमें आयोजित होनो हतो पर वाकु हाइजॅक् कर लियो गयो. अब वाकी जो भी कुछ अदायगी होय वो करके वापिस वाकु वाके ठिकाने पहुंचाके वाकी सम्पन्नता हो सके, ऐसी या मंगलशुभाकांक्षाके साथ आपश्रीकु मैं प्रार्थना करूं के आप आगेकी प्रक्रिया प्रारम्भ करें.

(मंगलाचरण)

नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुतकर्मणे।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः॥

(त.दी.नि.१।१)

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्
अस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति।
स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्
पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य।
तत्त्वेन यस्य महिमार्णव शीकराणुः
शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः।
कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय
मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय॥

(आळवन्दारस्तोत्र.६-७)

(नाम-रूप-कर्मकी ब्राह्मिक एकताको औपनिषदिक संदर्भ)

ब्रह्म जैसे विषयपे संगोष्ठी होनी ये सचमुचमें सौभाग्यको विषय हे. जैसे के यामुनेयाचार्य कहे हें **"ये मेरे मस्तकपे और श्रुतिके मस्तकपे बिराजमान ब्रह्म हे और प्रमाण प्रमेय साधन फल के मनोरथ जैसे नदियें सागरमें एकत्रित होवे हें ऐसे वा ब्रह्मकी स्तुति करवेके लिये ये ब्रह्मसंगोष्ठी हे" "अपने कुलधन कुलदैवत प्रभुके पादारविन्द जो अरविन्दविलोचन हे जाकी महिमाको समग्र वर्णन ब्रह्माजी-शिवजी भी नहीं कर सकतें होय, वाकी महिमाकु अपन् वर्णन नहीं कर सकें फिरभी वाकी भी स्तुति करवेके लिये मैं जो तैयार भयो हूं तो सबसु पहले दूसरेनकु नमस्कार नहीं करके मोकु नमस्कार करूं हूं."** अपन् सब एक-दूसरेकु नमस्कार करें वाके बजाय खुदकु नमस्कार कर लें. महाप्रभुजीकु तो अपनने नमस्कार कियो ही हे अपने ठाकुरजीकु भी नमस्कार किये हे. सचमुचमें अपन् अपने लिये नमस्करणीय हें के अपन् ब्रह्मके विषयपे संगोष्ठी कर रहे हें. कोई दूसरो करे के नहीं करे why should i care about u?

ब्रह्म विषयपे संगोष्ठीको आयोजित होनो, बहोत दुर्लभ बात हे. ये हाईली टॅक्नीकल् विषय हे. अपनने २२ पेपर् लिये हें. वाके बाद भी ब्रह्मके सारे पहलुनको कवरेज् यामें नहीं भयो हे. जो भी आकरग्रंथनकु देखे हें उनकु ये बात पता चलेगी. अपनने एक फॉरमेट् बनायो और वो फॉरमेट् ब्रह्मकी महिमाके आधारपे नहीं बनायो पर अपनी समझके आधारपे बनायो के ब्रह्मकु यदि अपनेकु समझनो हे तो अपने पास ये फॉरमेट् हे. या फॉरमेट्सु अपन् ब्रह्मकु समझ सकें. अपन् जा फॉरमेटसु ब्रह्मकु समझनो चाह रहे हें वो अपनी लिमिटेशन् हे. जैसे अपन् बारीमेंसु आकाशकु देखें. वा बखत आकाश तो वही दीखेगो के जो असीम हे अगाध हे पर दीखेगो उतनो ही जितनो बारीमेंसु देख्यो जा सकतो होय.

ऐसे अपनी ये संगोष्ठीकी बारीमेंसु अपन् वा असीम अगाध

ब्रह्मतत्त्वकु देखवेको प्रयास कर रहे हें. दीखेगो तो वही असीम अगाध तत्त्व पर दीखेगो उतनो ही जितनी अपनी-अपनी संगोष्ठीकी बारी हे. ये एक बेसिक् अन्डर्-स्टॅन्डिंग्सु अपनेकु चलनो हे. सभी पेपर् मैने सरसरी निगाहसु देखे हें. काफी अच्छे ढंगसु सभीने परिश्रम कियो हे. या विषयमें जिनने भी परिश्रम कियो हे वे सभी बहोत अभिनन्दनीय हें. ''**मह्यं नमोऽस्तु कवये**'' न्यायसु. या विषयपे इतनो परिश्रम तो कियो ना! क्योंके ब्रह्मसु सरस विषय और कोई हो नहीं सके और ब्रह्मसु नीरस विषय भी कछु हो नहीं सके. अब वो ब्रह्मकी विरुद्धधर्माश्रयता समझो के माहात्म्य समझो के अपनी लाचारी समझो. हकीकत ये हे और ये ही हे.

(ब्रह्म ⇄ नामरूपकर्मात्मना त्रिविधता)

जा ब्रह्मकी महाप्रभुजीने स्तुति ''**नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुतकर्मणे रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत:**'' (त.दी.नि.१।१) करी हे. मैं याकु प्रथम मंगलाचरण या लिये केह रह्यो हूं के महाप्रभुजीके ग्रंथन्में प्रथम ग्रंथ शास्त्रार्थ प्रकरण हे. शास्त्रार्थ प्रकरणको ये प्रथम मंगलाचरण हे, क्योंके महाप्रभुजी षोडशग्रन्थ वगैरह ग्रंथन्कु लिखवेकी प्रतिज्ञा शास्त्रार्थ प्रकरणमें कर रहे हें. यासु अपनेकु पता चले के ये महाप्रभुजीको प्रथम ग्रंथ हे. वा प्रथम ग्रंथको मंगलाचरण हे ''**नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुतकर्मणे रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत:**'' (वहीं) या मंगलाचरणमें एक बहोत गम्भीर अन्तर्दृष्टि महाप्रभुजीने वापरी हे. अपने बोल-चालकी भाषामें अपनेकु साधारणसी बात लगे. पर जब वा प्रॉब्लेम्में अपन् उतरके देखें तब अपनेकु पता चले के कितनी गम्भीर बात महाप्रभुजीने एक छोटेसे मंगलाचरणमें कही हे. वामें बहोत थोड़े शब्द हें ''**रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत:**'' चाहे अपनी इण्डियन् फिलॉसॉफी होय, चाहे वेस्टर्न फिलॉसॉफी होय, ये 'रूपनामके विभेद' ये टर्म् वापरते ही कोई चीज ऐसी नहीं रेह जाय के जाको कवरेज् नहीं भयो होय.

बौद्धधर्मकु अपन् देखें तो नाम-रूपको वहां बहोत प्रॉमिनेन्ट् रोल् हे. जैसे बुद्ध कहे हें ''**पंघुलांधा यथा गंतुं पच्चेकं असमथ्थका, यंति युत्ता यथा एवं नामरूपाह्यक्रिया. न नाम रूपतो अञ्ञो स...**''(सच्च.निब्बान.परिदीपनो.पंचमो परिच्छेदो.३१२-३१३) ''**यमकं नामरूपञ्च उभो अञ्ञोञ्ञ मिस्सिता. एकस्मिं भिज्जमानस्मिं उभो भिज्जंति पच्चयंति च.**'' (अभिध्यावतार १८वो परिच्छेद-१२१५)

वेस्टर्न फिलॉसॉफीकु अपन् देखें तो परसॅप्ट् और कन्सॅप्ट् को बहोत ही प्रॉमिनेन्ट् रोल् रह्यो हे. सारी स्कूल्स् और ब्रांचेस् डिवाईड् भयी हें और अभी भी डिवीज़न् चलते रहे हें, रूप-नामके झगड़ा चल रहे हें.

संक्षेपमें अपन् केह सकें के कोई दर्शन रूपवादी होवे हे, कोई दर्शन नामवादी होवे हे. मानें लेटेस्ट् आज-कल नयो डि-कन्स्ट्रक्शनिज़म् चल रह्यो हे, वहां भी सारो झगड़ा रूप-नामको हे. पुराने विट्गिन्स्टाईन् और ऐसे सब भये वहां भी झगड़ा रूप-नामको ही हे.

अपन् समझ सके हें के अपने महाप्रभुजीने अपने प्रथम मंगलाचरणमें 'रूप-नामविभेद' केहके बहोत छोटीसी बात कही हे पर वाको इतनो बड़ो स्कोप् हे के जा स्कोप्के अंतर्गत अपन् यों समझ लें ऐसी कौनसी बात हे जाको यामें कवरेज नहीं मिल्यो होय! और ये शब्द महाप्रभुजीके खुदके घड़े भये नहीं हें. वेदने सबसु पहले ये बात कही हे. ''**ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि... रूपाणि... कर्माणि... बिभर्ति...तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा, आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्**'' (बृह.उप.१।६।१-३), ''**यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेदिरे तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवान् एके ब्रह्मविदो विदुः**'' (अथर्व.संहि.१०।७।२७).

तथ्य जो भी होय अब अपनो सिद्धांत ये हे के वेद पहेले

हे और सारी दर्शनकी विचारधारायें बादमें प्रकट भयीं. अपन् वा झगड़ामें नहीं पड़ें के वेद पहेले या कौन पहेले और कौन पीछे हे. पीछे होय के पहले होय मुद्दाकी बात ये हे के जिन लोगनने नाम-रूपके बारेमें जितनो विवाद कियो वे सारे विवादनकु वेदने ''**सर्वे होतारो यत्र एकनीडं भवन्ति, स मानसीन आत्मा जनानाम्**'' (तैत्ति.आर.३।११।१) के न्यायसु या एक छोटेसे सूत्रमें अपनेकु समझा दियो के जगत्के सन्दर्भमें ''**तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा, आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्**''(वहीं) और देववाद ब्रह्मवादके सन्दर्भमें ''**त्रयस्त्रिंशद् देवा एके ब्रह्मविदो विदु**'' (अथर्व.संहि.१०।७।२७) कहके.

ये नाम रूप और कर्म तीन होते भये भी आत्मतया यूनिफाईड् हो रहे हें. एक हो रहे हें. आत्मा एक होते भये भी नामरूपकर्मात्मना त्रिविध हो रही हे. तीन बन रही हे. ये पेहली यूनिफिकेशन् थियरी हे के जो तीन बराबर एक और एक बराबर तीन प्रोब्लेम् कर रही हे. जो बात मॅथेमॅटिकली सम्भव नहीं हे. या ब्राह्मिक दृष्टिकु ''ये ही बात सत्य हे'' ऐसे उपनिषद् अपनेकु केह रह्यो हे. अपन् भी आनन्दसु केह सकें के मॅथेमॅटिक् याकु अपोज़् कर सके हे. पर परमार्थ सत्य ये ही हे. मॅथेमॅटिक्स् कोई मॅथेमॅटिकल् सत्य हे, वाकु अपन् डिनाय् नहीं करेंगे. वो सत्य नहीं हे ऐसी बात नहीं हे पर ब्राह्मिक सत्यके आगे ये मॅथेमॅटिकल् सत्य बहोत टुच्चो पड़े हे. वो टुच्चोपन उपनिषद्ने अपनेकु या तरहसु समझायो हे के ''**तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा, आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्.**'' (वहीं) ये तीन होते भयें भी आत्मतया एक हें और आत्मा एक होते भये भी तीन हे. नामरूपकर्मात्मना एक होते भये भी तीन हें. ये इक्वेशन् कभी अपने माइन्डसु जानो नहीं चईये.

आईन्स्टीन्को $E=mc^2$को जो यूनिफिकेशन् हे वो भी याको

ही पार्ट हे. याके कवरेज्मेंसु वो बाहर जा सके ऐसो वो यूनिफिकेशन् नहीं हे. अपन् समझ सके हें के या सूत्रकी ब्रह्मकु समझवेमें कितनी महत्ता हे!

([१-४] कर्मकी व्यवस्था : नाम-रूपको पारस्परिक प्रभाव/क्रिया)

नाम रूप और कर्म कु जा बखत अपन् एनलाईज़् करें तो ये सारी सृष्टिको कॉन्स्टिट्यूशन् मूलमें रूप और नाम हे. महाप्रभुजीके शब्दमें देखनो होय तो रूप सदंशमें प्रकट हो रह्यो हे. नाम चिदंशमें प्रकट हो रह्यो हे.

([१] जैनधर्मकी दृष्टिसु)

जैन धर्मकी दृष्टिसु देखो तो जीव और अजीव दो पदार्थ हें. जो जीव पदार्थ हे वो नामवान् हे. अजीव पदार्थ हे वो रूपवान् हे. जीव और अजीव को इन्टर्-ॲक्शन् ही तो ये सृष्टि हे. वा सृष्टिकी एक पूरी सिस्टम् हे. वो सिस्टम् क्या हे? जाकु उपनिषद् कर्मके लिये ''**त्रयं सद् एकम्**'' केह रह्यो हे के कर्म एक उनके वहां फिनोमिना हे जो इट्सॅल्फ् एक सिस्टम् हे. वा कर्मकु सिस्टम् तरीके स्वीकार करके सारे नास्तिकवाद अनीश्वरवाद प्रवृत्त भये हें. वो ब्राह्मिक सिस्टम्सु डिस्-सॅटिस्फाईड् हें. वासु ज्यादा कोई ऊंची उड़ान अपनेकु नहीं करनी हे.

([२] बौद्धधर्मकी दृष्टिसु)

बुद्धधर्म भी वो ही केह रह्यो हे. जैनधर्म भी वो ही केह रह्यो हे. आजको भौतिकवाद भी ये ही केह रह्यो हे. सायन्टिफिक् जो भी कोई थियरीज़् आयी हें, आज-कल मटीरियलीज़्मको तो सायन्स्ने गणपतिबापा मोरिया कर दियो हे. मटीरियलीज़्म् 'गॉन् विद् द् विन्ड्स्' हो गयो. कॉम्युनिस्टनकु भले ही अभी भी मटिरियलिज़्मको हॅन्गओवर् सतातो होय. भौतिकवाद अब कोई कन्सॅप्ट् नहीं हे, आउट्-डेटेड्

हो गयो हे. जो प्रिवेलिङ् कन्सॅप्ट् हे वो कर्मको हे. या कर्मसु अतिरिक्त कोई ब्रह्मकी आवश्यकता नहीं हे. क्योंके कर्मकी सिस्टम् अपने आपमें सफीसियेन्ट् हे.

भगवान् बुद्ध भी ये ही बात केहते थे के ईश्वर भी यदि हे तो कर्मके बिना ईश्वर अपनो ऐश्वर्य प्रकट नहीं करेगो. यदि ईश्वरकु भी कर्मकी अपेक्षा हे तो ईश्वरकी क्या आवश्यकता हे! अपन् समझ सके हें के कर्म मानें पाप-पुण्यवालो कर्म तो एक इन्स्टेन्स् हे. यहां मोशन्की बात हे.

([३] विज्ञानकी दृष्टिसु)

'कर्म'को मतलब सायन्स्की बेसिक् टर्मिनोलोजीमें समझनो होय तो मोशन् या ॲक्शन् हे. कुछ नॉन्-ॲक्टिव् पदार्थ हें कुछ काईनेटिक् पदार्थ हें. उन दोनों पदार्थन्के बीचमें इन्टर्-ॲक्शन् जनरेट् कर पा रह्यो हे, वाकी कोई एक सिस्टम् हे, जो कर्म-नामकी सिस्टम् हे. वो कर्म-नामकी सिस्टम्के नाम और रूप पार्ट हें. सिस्टम् कर्मकी हे और नाम रूप वा सिस्टम्के दो पार्ट हें. जाकु जैन 'जीवाजीव' कहे हें. बुद्ध वाकु नाम-रूपके ही नामन्सु स्वीकारे हें. माइन्ड् और मॅटर् के रूपमें वेस्टर्न फिलॉसॉफर्सने स्वीकार्यो हे. अब टाईम् स्पेस् ॲनर्जी और मॅटर् के रूपमें वाकु स्वीकारे हें.

([४] वाल्लभ दृष्टिसु)

महाप्रभुजी या बारेमें इतने अवॅयर् हें के **'क्रीडति'** कहे हें. आखिर क्रीड़ा क्या हे? वा कर्मकी महाप्रभुजीने क्रीड़ात्मिका व्याख्या करी हे. ॲक्च्युअली केहनो क्या चईतो थो 'रूपनामकर्मविभेदेन'. महाप्रभुजीने वहां कर्मकु ड्रॉप् करके एक बात बताई के **''रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत:''** क्रीड़ा कर्म हे. कर्मकी व्याख्या महाप्रभुजीने क्रीड़ात्मिका कर दी.

([१-३] क्रीड़ाको स्वरूप)

([१] प्रभावनियतक्रीड़ा)

जब क्रीड़ात्मिका करी तब अपने सामने एक बहोत बड़ो मुद्दा उछलके आयो. क्रीड़ा व्यक्ति प्रभावसु करे, कम्पल्शन्सु करे, डरसु करे अथवा कैसे करे? सर्कस्में जितने शेर हाथी हिप्पोपोटेमस् जैसे बिचारे हन्टर्के बलपे क्रीड़ा करते होवें वैसे? उनसु खुदसु पूछ्यो जाय के तुम क्रीड़ा कर रहे हो? कोई जानवरकु वो बात पसन्द नहीं आवे. जा बखत बिफर जाये वा बखत अपन् देख सकें के जानवर रिंगमास्टरकु खा जातो होवे हे. यदि क्रीड़ा मानतो होतो तो खातो नहीं. हंटर्के मारे करे बिचारो क्रीड़ा! शेरकु कहें के ''फायर्की रिंग्मेंसु कूदो'' तो वो कूदे. हाथीकु कहो के ''बॉल् खेलो'' तो बॉल् खेले बिचारो! वो छोटेसे टेबल्पे जापे अपन् नहीं मा सके वापे हाथी बैठके ओर दिखा दे. ये सब ठीक हे. हंटर्के बलपे बेचारो क्रीड़ा कर रह्यो पर वाको खुदको एहसास क्रीड़ाको नहीं हे.

([२] लीलात्मिका क्रीड़ा)

जो बेसिक् डिफरेन्स् या बातपे आ रह्यो हे के कोईके कारण कोई कर्म कियो जा रह्यो हे तो वामें अपनेकु क्रीड़ाको भाव नहीं जगे. यदि अपन् कोई कामनासु कर रहे हें तो भी क्रीड़ाको भाव नहीं जगे. क्योंके महाप्रभुजीने वाकी परिभाषा करी **''अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीला''** (भाग.सुबो.१।१।१७) ये बहोत बड़ी इन्साइट् हे. ब्रह्मके संदर्भमें सोचें तो अपनेकु लगे के महाप्रभुजीने जैसे सूरदासजीकु डपट लगा दी के ''सूर व्हेके काहे घिघियात हे कछु भगवद्लीला गा''. ऐसे भगवद्लीलागानके मूडमें महाप्रभुजी वाकु केह रहे हें. ब्रह्मकी लीलाको गान करनो होय तो वाकु वा तरहसु केहनो चईये.

([३] स्वाभाविक क्रीड़ा और वाकी विसंवादिता)

पर यदि स्वभावनियत क्रीड़ा हे तो वामें कॅल्क्युलेशन् संभव

हे. कॅल्क्युलेशन संभव हे तो प्रिडिक्शन् संभव हे. क्योंके जहां कॅल्क्युलेशन् हे याको मतलब के एकके बाद दो आनो हे, दोके बाद तीन आनो हे चार आनो हे. दसके बाद बीस आनो हे, चालीस आनो हे. कॅल्क्युलेशन् जहां संभव हे वहां प्रॅडिक्टेबिलिटी आवे. जहां अन्प्रॅडिक्टेबिलिटी आती होय वहां अपनी कॅल्क्युलेशन्की सामर्थ्य खतम हो जाये. क्योंके अन्प्रॅडिक्टेबल् कुछ आ रह्यो हे. अपन् सीज़न्को दिनको कॅलेन्डर्को कॅल्क्युलेशन् कैसे करें? या महीनाके बाद वो महीना तो आयेगो ही. अपने यहां वा तरीकेकी थोड़ी सिस्टम् रखी हे के कुछ क्षय हो जाये कुछ अधिक हो जाये. जो भी रोमन् कॅलेन्डर्सु काम चला रहे हें उनको दिमाग चकरा जाये के महीनाको मानें ३० दिनको क्षय कैसे हो गयो! क्या अर्थमें क्षय भयो? उनको क्षय भयो कहां? ३० दिन तो आ ही रहे हें. अपन् कहें के नहीं ऐसे नहीं पर ऐसे हो गयो. आम नहीं पण ओम थई गयो. अब वो आम और ओम करते रहो पर समझ नहीं पड़े के क्षय क्यों भयो? क्योंके आदमी कॅल्क्युलेट् नहीं कर पावे. जितनो भी लॉजिक् हे, मॅथेमॅटिक्स् हे, सायन्स् हे, वाकी बेसिक् रिक्वायर्मॅन्ट् कॅल्क्युलेशन् हे. ऐसे आजसु पचास-साठ साल पुरानी सायन्टिस्टन्की कल्पना हती.

अपन् सबन्पे एक घोर लाञ्छन हतो के इनकी जो दार्शनिक दृष्टि हे वो लीला केहके कॅल्क्युलेशन् स्वीकार नहीं करे हे. कॅल्क्युलेशन् अलाउ नहीं करे हे करके वामें प्रॅडिक्टेबिलिटी नहीं हे के प्रिमाईस् ये हे तो कन्क्लुज़न् क्या आयेगो? सारे वेस्टर्न स्कॉलर्सकु जैनन्कु बौद्धन्कु अपने या दर्शनपे आपत्ति हती और वे लोग ये केहते थे के याको मतलब ये हे के भगवान् या ब्रह्म पागल हे. क्योंके अन्कॅक्युलेटेड् कुछ काम कर रह्यो हे. अब तो सायन्स् भी ये मान रह्यो हे के कॅल्क्युलेशन् संभव नहीं हे. एक बखत शान्तिसु घोषणा करो के सायन्टिस्ट् सब पागल हें. तब अपन् कहेंगे के ब्रह्म महासायन्टिस्ट् हे. वेदान्त महासायन्स् हे. ये छोटे-छोटे सायन्स्

हें जो कॅल्क्युलेशन् संभव नहीं मान रहे हें. मानें लाईट् वेव् हे के पार्टिकल् हे यामें कॅल्क्युलेशन् संभव नहीं हे.

अभी ग्रांड्-यूनिफिकेशन् थियरीके तहत कॅल्क्युलेशन् संभव नहीं हे. अपन् लोग केहते थे (वो बात) स्टिफन् हॉकिन्स् केह रहे हे के भूल जाओ; ये यूनिवर्स नहीं हे पर मल्टीवर्स हे. कोई एक मल्टीवर्सके तहत कोई एक यूनिवर्स एक प्रिन्सिपल्सु काम नहीं कर रह्यो हे. पच्चीसन् प्रिन्सिपल् वामें संभव हें. और सायन्टिस्ट् यहां तक केह रहे हें के जा प्रिन्सिपल्सु काम कर रहे हें, वो एक ही पॉसिबिलिटी नहीं हे. ऐसी पचास पॉसिबिलिटी हो सकें. कॅल्क्युलेशन् खतम.

(कर्मव्यवस्थाकी क्रीड़ारूपता)

अब कॅल्क्युलेशन् खतम हो गयो तब क्या करनो? ब्रह्म संगोष्ठी करनी के उपादानता क्या हे? अन्तर्यामिता क्या हे? सर्वातीतता क्या हे? उत्पत्ति क्या हे? उपपत्ति क्या हे? विकृति क्या हे? लय क्या हे? हां करनी. **''मह्यं नमोस्तु कवये''** अपनेकु कॅल्क्युलेशन् करनो. कायके लिये करनो के जो अन्कॅल्क्युलेटेड् हे वाके बारेमें अपने माईन्ड्की फ्रेम् जो भी होय कॅल्क्युलेशन् होय वो करनो चईये. टाईम् अन्कॅल्क्युलेटेड् हे पर अपन् वाको कॅलेन्डर्की तरह कॅल्क्युलेशन् करे हें के नहीं करे हें? संख्या इन्फाईनाइट् हें पर अपने दम-तक नम्बर्कु गिने हें के नहीं गिने हें? क्योके अपनो काम अन्कॅल्क्युलेटेड् नहीं चल रह्यो हे. वासु अपन् या तरीकेको अहंकार करें के तत्त्व कॅल्क्युलेट् कियो जा सके हे. वो एक ॲक्स्ट्रीम् हे. दूसरो ॲप्रोच् ये हे के अन्कॅल्क्युलेटेड् हे याके लिये अपन्कु कॅल्क्युलेशन् नहीं करनो! महाप्रभुजीको और मॉडर्न सायन्स्को जो सिद्धान्त हे के हां सब कुछ कॅल्क्युलेशन् वर्धी नहीं हे पर अपनेसु जो कुछ भी कॅल्क्युलेशन् कियो जा सके हे वो तो करनो ही चईये.

बहोत सारे लोगनुकु पता होयगो और नहीं होय तो आज-कल तो गूगल महाराज सर्वगुरु जगद्गुरु बिराजमान हे, उनकी शरणमें जाके देख लो के जब भी सुनामी आवे हे अथवा जब भी भूकम्प आवे हे तो वामें बहोत सारे लोग मर जायें हें और वा मुसीबतको कुछ न कुछ कॅल्क्युलेशन् करके कुछ बच भी जाते होवे हें. अब मरनेवाले क्यों मर गये और बचनेवाले क्यों बच गये? ये बच्यो तो वो क्यों नहीं बच्यो? वो मर गयो तो ये क्यों नहीं मर्यो? वाको पाछो कॅल्क्युलेशन् पॉसिबल् नहीं हे. हम लोग नेपाल गये थे. कितनो सुंदर कृष्णमंदिर हतो वो सारो ढह गयो. पशुपतिनाथ अभी भी वहां बैठे भये हें. नेपालमें एक कुमारी कन्याकु देवी मानके पूजे हें, वो देवीको मंदिर जरा भी नहीं ढह्यो. कितने लोग मर-मरा गये. अपन् समझ सके हें के जहां भी अपन् कॅल्क्युलेशन् कर रहे हें वो अपनी रिक्वायर्मॅन्ट् हे. तत्त्वको स्वरूप होनो जरूरी नहीं हे.

अपन् समझ सके हें के ये **''रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत:''** यह 'क्रीडति'के अन्तर्गत महाप्रभुजीने कर्मकी व्याख्या कर दी के रूप-नामके इन्टर्-ॲक्शन्की जो सिस्टम् हे वो क्रीड़ात्मिका सिस्टम् हे. क्रीड़ात्मिका सिस्टम् हे वाको शुद्ध शुद्ध मतलब ये हे के वामें सारो कॅल्क्युलेशन् पॉसिबल् नहीं हो सके. क्योंके वो न तो कोई प्रभावके तहत की गई हे. न वो स्वभावके तहत की गई हे. जासुके अपन् कॅल्क्युलेशन् कर सकें.

वेदने एक और इम्पॉर्टन्ट् बात कही. **''श्रवणायापि बहुभि: यो न लभ्य:, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु:. आश्चर्यो वक्ता कुशलो अस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशला अनुशिष्ट:''** (कठोप.१।२।७) **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (भग.गीता. २।२९) ये तो कुछ ऐसो तथ्य हे के जो सुननो मिले ही नहीं. यदि सुन भी लें तो अपनेकु

कॅल्क्युलेशन्के अर्थमें समझ पानो मुश्किल होवे. सुनके अपन् समझ नहीं पायेंगे. क्योंके अपन् कॅल्क्युलेशन्के अर्थमें समझ नहीं पायेंगे. नहीं समझ पायेंगे तो कोई चिंताकी बात नहीं हे. वक्ता भी खुद आश्चर्य चकित होके वाको वर्णन कर रह्यो हे. सुनवेवालो वाकु समझ रह्यो हे.

उपनिषद् वाकी निंदा करे हे. **''अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम्''** (केनोप.२।३) जो ये दावा कर रह्यो हे के समझ गयो वो नहीं समझ्यो हे. जाकु ये समझमें आ जाये हे के मैं नहीं समझ्यो वाकु थोड़ी बहोत समझमें आयी. एग्ज़ॅक्ट्ली बारीमेंसु अपन् आकाशकु देख रहे हें पर आकाशकी असीमता अपनुकु समझमें तो नहीं आयेगी. बारीमेंसु दीखती भयी आकाशकी असीमता समझमें नहीं आयेगी. नहीं समझमें आ रही हे याके लिये आकाश नहीं दीख रह्यो हे मिथ्या दीख रह्यो हे. ऐसो दर्शन अपनो नहीं हे. क्योंके बारीकी उपाधिमेंसु सीमित दीखतो भयो आकाश भी अपने आपमें असीम हे असीम हे और असीम हे. या तथ्यकु अपनुकु समझके चलनो चईये. याके लिये उपनिषदनुने ब्रह्मके कन्सॅप्ट्कु समझावेके लिये बहोत सारे उपाय किये.

(ब्रह्म = उपनिषदेकगम्य)

पर ब्रह्मके बारेमें एक मौलिक बात जो उपनिषद् समझानो चाहे हे वो ये हे **''क: तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुम् अर्हति''** (कठोप.१।२।२०-२१) कैसे तुम समझ पाओगे ब्रह्मकु के ब्रह्म क्या हे? या तरीकेकी कोई आरभटी करे तो आदमी नर्वस् हो जाये. उपोद्घात्में अपन् कहें के अपन् ऐसी चर्चा करने जा रहे हें के जो कोईके समझमें नहीं आयेगी. जो भी पार्टिसिपेन्टस् हें उनको मॉरल् तो पहले ही टूट गयो ना! क्योंके वाके बाद तुम क्या चर्चा करोगे? गप्प-गोलायें मारोगे? कोई सच्ची बात करोगे के कोई कविता पाठ करोगे? 'हुँ फट' कर दोगे? क्या करोगे, ये केहनो मुश्किल हो जाये. याके

लिये बहोत अच्छी बात बताई के मैं जो बात केहनो चाह रह्यो हूं वाकु ध्यानसु समझो तुम. ब्रह्मकु अपन् अपनी वाणीकी सीमा तक वर्णन कर सके हें, नहीं कर सकें ऐसी बात नहीं हे. एक छोटीसी डोंगीसु अपन् दरियाकी सैर तो कर सके हें पर पार कर सकें के नहीं कर सकें? सैर तो कर सकें के नहीं? डोंगीकी भी जरूरत नहीं हे. अपने हाथ-पैरनूकु हिलावेके प्रयाससु भी दरियामें तेर्यो जा सके हे के नहीं तेर्यो जा सके हे? तेर्यो तो जा सके हे. पार पहोंच पावें के नहीं पोहोंच पावें? तो न यामें अतिशय निराश होवेकी जरूरत हे और न ही या मौलिक तत्त्वके बारेमें अतिशय अभिमानकी आवश्यकता हे.

या बातकु ध्यानमें रखके अपन् जा बखत ब्रह्मसंगोष्ठी कर रहे हें तो वामें एक पहलो मुद्दा ये आवे हे "**श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्**" (वहीं) ब्रह्मके बारेमें सुनवेके बाद भी, सुन लोगे तुम पर समझमें नहीं आयेगी. क्यों समझ नहीं आयेगी? ये तो वेद केह रह्यो हे. क्योंके ये ब्रह्मको कन्सॅप्ट् हे "**तं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**" (बृह.उप.३।९।२६) ये औपनिषद् कन्सॅप्ट् हे. जब अपन् वाकु औपनिषद् कन्सॅप्ट् मानें तो वो उपनिषदेकगम्य हे. शंकराचार्यजी बहोत अच्छी बात कहे हें "**नहि इदम् अतिगम्भीरं भावयाथात्म्यं मुक्तिनिबन्धनम् आगमम् अन्तरेण उत्प्रेक्षितुमपि शक्यम्**" (ब्र.सू.शां.भा.२।१।-३।११) ये कैसे जातको गम्भीर भावयाथात्म्य हे? यदि आगम अपनेकु नहीं बतावे तो अपनेकु ऐसी उत्प्रेक्षा (हाईपोथिसिस्) होनी भी मुश्किल हे.

मैं जो बात केहनो चाह रह्यो हूं या चर्चासंगोष्ठीमें, अपने महाप्रभुजी भी ये उपनिषदेकगम्य कन्सॅप्ट् हे ऐसो कहे हें. "**अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते, तपसा वेदयुक्त्या तु प्रसादात् परमात्मनः**" (ब्र.सू.भा. १।१।१) या कन्सॅप्ट्कु जाने बिना वाकु समझ पानो मुश्किल हे.

(क्या शब्दप्रमाणसु वेदसिद्ध ब्रह्म 'असद्' नहीं हे ?)

अक्सर या तेरहकी जा बखत संगोष्ठी होवे हें वा बखत लोगन्के मनमें घबराहट पैदा हो जाये के ये प्रामाणिक हे, हाईपोथेटिकल् हे के जस्ट् कोई काल्पनिक कन्सेप्ट् हे! क्योंके हर शब्दकी कुछ एक सीमा होवे हे वाको अर्थ अपन् कैसे समझें ?

अपने यहां पुरानी सिस्टम् ये हती **''शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानात् कोशाद् वाक्याद् व्यवहारतश्च वाक्यस्य शेषाद् विवृतेः वदन्ति सान्निध्यतः सिध्दपदस्य वृद्धाः''** ये सारे प्रोसीजर् हें के कोई भी शब्दकी 'शक्ति' मानें कोई भी शब्दको अर्थ अपनेकु कैसे समझमें आवे ? व्याकरणसु, उपमानसु, व्यवहारसु. बड़ेनूने अपनेकु बता दियो, बड़ेनूने शब्दन्को उच्चारण करते भये कोई तरहको व्यवहार कियो, जैसे एक पेटेन्ट् उदाहरण हे याको 'घटम् आनय' बड़े लोग बोलें. एकाद घड़ाकु ले आवे तो वृद्धव्यवहारकु देखके बच्चा समझ जाये के घडा लावेको मतलब ये हे. वाक्यशेषाद्, कोई वाक्यके शेषमें कोई बात आती होय तो वासु जुड़ जाये. दो शब्दन्की आपसमें संन्निधिके कारण एकसु दूसरे शब्दको ज्ञान हो जाये. ये सारे पॅटर्न् हते.

शंकराचार्यजीने दूसरी बात कही, **''रूपाद्यभावाद् हि न अयम् अर्थः प्रत्यक्षस्य गोचरः, लिंगाद्यभावात् च न अनुमानादीनाम्, आगममात्रसमधिगम्यएव तु अयम् अर्थो धर्मवत्''** (ब्र.सू.शां.भा.२।१।३।६) वामें कोई रूप नहीं हे तो वाकु देख नहीं सकोगे. देख नहीं सकोगे मतलब ये हे जैसे लॉजिकल् पॉज़िटिविस्ट् यों कहे हें के जा टर्मको इम्पीरिकल् वॅरिफिकेशन् संभव नहीं होय, वाको कन्स्ट्रक्टेड् मीनिंग् हे. डिस्क्रिप्टिव् मीनिंग् हे.

जैसे मैं आपकु कहूं के ये पॅन् हे. अब आपने याको वॅरिफिकेशन् कियो. तो या पॅन्को मतलब आपकु समझमें आ गयो. मैं कहूं

के ये डस्टर् हे, तो ये आपने वॅरिफाय् कर लियो के ये डस्टर् हे. मीनिंग् तो समझमें आ गयो क्योंके याके रूपके साथ आपने ये 'डस्टर्' शब्दकु वॅरिफाई करके जा टर्मको मिनिंग् वॅरिफाई नहीं होवे वो मीनिंगलॅस् हे. अर्थहीन कौनसे अर्थमें? वो तुम्हारो मॅन्टल् कन्स्ट्रक्शन् हे. जब मॅन्टल् कन्स्ट्रक्शन् हे वा बखत कोई गॅरेन्टी नहीं रेह जाये. क्योंके **''अत्यन्तासत्यपि अर्थे शब्दस्य ज्ञानजननात्''** (ब्र.सू.भा.१।१।१) क्योंके अत्यन्त असद् अर्थमें भी—अपने यहां शशविषाणको उदाहरण दियो जाय हे. पाश्चात्य दर्शनमें गोल्डन् माउन्टन्, राउन्ड् स्क्वॅर्, वन्ध्यासुत को उदाहरण दियो जाय हे. जो उदाहरणसु समझनो होय. वन्ध्यासुतको उदाहरण दियो जाय. अब ये तो पुरानी बात हो गई. आज-कल तो वन्ध्यायें भी सुत पैदा करवे लग गई हें. वो तो अब आउट्-डेटेड् उदाहरण हो गयो हे. शशविषाण भी कोई ऐसो उदाहरण नहीं हे, आजकी तारीखमें. जो थियोरिटिकली पॉसिबल् नहीं होय. क्योंके जॅनेटिकल् साईंस् जो डॅवलप् भयी हे वामें जब चईये साइन्टिस्ट् सींगवालो खरगोश पैदा कर सकेगो, आज नहीं तो कल. राउन्ड् स्क्वॅर्को अपन् केह रहे हें पर मैं हर बखत एक बात कहूं के पृथ्वीके सरफेस्पे यदि अपन्ने स्क्वॅर् बनायो और वाकु ॲक्स्टॅन्ड् करते गयें और पृथ्वी गोल हे तो अन्तमें जाके वो स्क्वॅर् कहीं न कहीं गोल हो जायेगो. वो भी अत्यन्त असद् अर्थ आजकी तारीखमें रेहनो मुश्किल कथा हो गई हे.

अब 'असद्'के अर्थको उदाहरण अपन् फुरसतसु सोचेंगे. पर **''अत्यन्तासत्यपि अर्थे शब्दस्य ज्ञानजननात्''** (ब्र.सू.भा.१।१।१) अत्यन्त असद् अर्थको भी शब्दसु ज्ञान हो सके हे. ब्रह्म कोई या तरीकेको अत्यन्त असद् अर्थ तो नहीं हे. आदमीकु निर्णय कैसे होय? क्योंके जब अपन् वाको वॅरिफिकेशन् नहीं कर पा रहे हें; जब अपन् वाको कोई इन्फरेन्स् नहीं कर पा रहे हें; अपन् छेल्ली शरण श्रुतिकी ले हें. श्रुतिकी शरण क्या? इन्ट्युशन् केह दो वाकु. इन्ट्युटिवली

अपनूकु वो समझमें आ रह्यो हे.

(क्या ब्रह्म अनुमानगम्य हे?)

बात सत्य हे. बहोत सारी बातें अपन् अपने आत्मप्रत्ययसु समझ सकें, इन्ट्युटिवली अपनूकु समझमें आवें. क्योंके पहली बार जा बखत ॲपल् गिर्यो तो पहले तो न्यूटनूकु इन्ट्युशन् ही भयो होयगो फिर वाने इनफरेन्स्के रूपमें वाकु ट्रान्सफॉर्म कियो होयगो या सब्लिमेट् कियो होयगो के 'लॉ ऑफ् ग्रेवीटेशन्' काम कर रह्यो हे, वजन काम नहीं कर रह्यो हे. या तरीकेके कार्य-कारणके साहजात्यसु अपन् अनुमान करें.

जैसे प्रसिद्ध नैयायिकनूने कियो के घड़ाकु कुम्भार बना रह्यो हे तो जगत्कु बनावेवालो भी कोई होनो चईये. जब तकलीफ सामने आयी के बरसातके बाद घास उग रही हे वो तो कोई माली नहीं उगा रह्यो हे. नैयायिक तो बड़े चतुर होवें ना! उनने कही के एक काम करो. 'मण्डूकतोलनन्याय!' मेंढककु तोलनो. तो जो बाट होवे वामें मेंढक उछलके जाके दूसरी बाटमें बैठ जाये. उनने कही के ऐसे-ऐसे जो भी इन्स्टेन्स् हें उनकु पक्षमें रख दो. वाकु पक्षमें रख दियो. **''क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्''** जहां अपनेकु कोई कर्ता नहीं दीख रह्यो हे वो जितने भी इन्स्टेन्स् हें वाकु पक्षमें रख दो, मण्डूकके तोलकी तरेह के वा बाजू वो तोलवेमें प्रॉब्लेम् क्रियेट् नहीं करे. फिर कल्पना करो 'घटवत्', कुम्भारने जैसे घड़ा बनायो ऐसे बनायो.

जैन-बौद्धनूने अनुमानकी बहोत मज़ाक उड़ाई. इन्सिडॅन्ट्ली एक बात बताऊं के या ईश्वरानुमानूकी, जैन-बौद्धनूने ही मज़ाक उड़ाई हे ऐसो ही नहीं पर महाप्रभुजीने और अपने वेदान्तने भी खूब मज़ाक उड़ाई हे.

शंकराचार्यजीने भी मज़ाक उड़ाई हे **''के यूयम् अनुमानकुशलाः इत्येवं पृष्टानां किम् उत्तरम्'' ''अहो! अनुमानकौशलं दर्शितम् अपुच्छशृंगैः तार्किकबलीवर्दैः, यो हि आत्मानमेव न जानाति स कथं मूढः तद्गतं भेदमभेदं वा जानीयात्...तस्मात् तार्किकचाटभटराजाप्रवेश्यम् अभयं दुर्गम् इदम् अल्पबुद्ध्यगम्यं शास्त्रगुरुप्रसादरहितैः च''** (बृह.उप.शां.भा.२।१।२०) अरे ऐसे कैसे तुम बैल हो! तार्किको! तुम क्यों अनुमान कर रहे हो? क्योंके शंकराचार्यजीने वहां बहोत मज़ेदार तर्क दियो हे के तुमकु ईश्वर हे ये तो वेदसु पता चल्यो. **''पाटच्चरलुण्ठिते वेश्मनि यामिकजागरणम्''** (लौकिकन्यायसाहस्री-६७२) इति वृत्तान्तम् अनुसरति. स्क्रिप्चर्सु जो कन्सॅप्ट् डिराइव् भयो हे वाको लॉजिकल् जस्टिफिकेशन् तुम खोज रहे हो. ये गलत ऑर्डर् हो रह्यो हे. ऐसे शंकराचार्यजी तर्क देवे हें. जरा सी गाली देवे हें के तार्किक सब सींग-पूछ बिनाके बैल हें. **''अपुच्छशृंगैः तार्किकबलीवर्दैः''** (वहीं) कैसे अनुमान कर रहे हो. अपने यहां भी खण्डन कियो हे. तो अपन् समझ सके हें के अनुमानसु निश्चय होनो तो मुश्किल हे.

(क्या जिज्ञास्यब्रह्मकी सिद्धि परार्थानुमान हे या अर्थवाद हे या स्वार्थमें प्रामाण्य हे?)

जा टर्मको मिनिंग् प्रत्यक्षसु वॅरिफायेबल् नहीं हे, जो लॉजिकली जस्टिफायेबल् नहीं हे, इन्ट्युशन्को अपन् सहारा लें तो श्रुति तो प्रत्यक्षगोचर हो सके हे. इन्ट्युशन् जाकु हो रह्यो हे वाकु हो रह्यो हे. (स्वार्थानुमान) जब दूसरेकु कन्वे करनो हे, जैसे परार्थानुमान, ऐसे इन्ट्युशन्कु जा बखत तुम वर्बलाइज़् कर रहे हो, वा बखत सुनवेवालेकु कैसे पता चलेगो के तुमकु इन्ट्युशन् भयो के नहीं भयो?

फिर तो शब्दकी ही बात आ गई ना! अब यदि तुम कोई शब्द घड़ रहे हो, कोई टर्म् घड़ रहे हो, कोई टर्म् यदि तुमने घड़ी, तो घड़ते ही ये प्रॉब्लेम् आ जायगी के कन्स्ट्रक्टेड् मीनिंग्

हे के नहीं? अब यदि वो मीनिंग् ही कन्स्ट्रक्टेड हे; मॅन्टली कन्स्ट्रक्शन् हे, डिस्क्रिप्टिव् टर्म् हे, वॅरिफायेबल् टर्म् नहीं हे, तो **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (वहीं) **''आश्चर्यो वक्ता कुशलो अस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलो अनुशिष्टः''**(वहीं)

आजकी तारीखमें दुनियाभरके धर्मके झगड़ा, मोज़ेस्‌को इन्ट्यूशन् हतो. वो कहे के ''साक्षात् प्रत्यक्ष हतो. बोल्यो हतो वो सुनाई दियो'' वाकु यहूदी लोग डिनाय् करें. क्राईस्ट् केह रह्यो हे के ''मैं भगवान्‌को पुत्र हूं'' मुसलमान डिनाय् करें. **''लम् यलिद्, व लम् यूलद्, व लम् यकुल्लहु कुफुवन् अहदुन्''**(कुर्आन-शरीफ,सूरतुल् इख्लेसि:११२) कोई बेटा हे ही नहीं. तुम कैसे बेटा होनेको दावा कर रहे हो! जिनकु इन्ट्यूशन् हो रह्यो हे, सुनवेवालेकु वो बात कन्वे नहीं हो रही हे. अपन् केह रहे हें वेदसु हे. पर पूरी वेस्टर्न इण्डोलॉजी अपने वेदकु शुरुआतमें गडरियान्‌के गीत मानती हती. अभी भी कुछ-कुछ मानती रहे हे. नये-नये रिसर्च होते रहे हें. निश्चय कैसे होवे के या नामको कोई तत्त्व वस्तुतः हे के नहीं हे?

ये एक जॅन्युइन् डिफिकल्टी हे **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''**(वहीं) ब्रह्मके नामपे अपन् क्या करें? एकाद मूर्ति घड़े हें. रामकी कृष्णकी शिवकी देवीकी दुर्गाकी गणपतिकी, वाकु पूजें. वहां वॅरीफिकेशन् पॉसिबल् हे. बच्चा नहीं झुकतो होय तो दस बार माथा झुकाके नमस्कार भी करवा सके हें. पर जैसे ही बच्चा बड़ो होवे हे तो वाकु शंका तो हो ही जाये के ये ब्रह्म हे के मूर्ति हे ब्रह्मकी? जब ये शंका हो रही हे तो फिर ब्रह्म समझमें नहीं आ रह्यो हे पर ब्रह्मके नामकी कोई मूर्तियें समझमें आ रही हें. ब्रह्म तो समझमें नहीं आ रह्यो हे. ये एक वास्तविक डिफिकल्टी हे **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (वहीं)

सो अपनेकु ब्रह्मचर्चा करनी हे. ये वचनके **''श्रवणायापि बहुभिः**

यो न लभ्यः'' (वहीं) **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (वहीं) बारेमें एक बहोत ही मौलिक प्रश्न उठ्यो हे के क्या ब्रह्मजिज्ञासाकी विधिको ये अर्थवाद हे, क्या स्वार्थमें याको प्रामाण्य हे? क्योंके **''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म''** (तैत्ति.उप.३।१) जहांसु ये सब भूत पैदा हो रहे हें, जहां ये स्थित हें, जहां ये लय होनेवाले हें, वाकी तुम जिज्ञासा करो वो 'ब्रह्म' हे. ठीक हे. प्राईमार्फसी अपनेकु ऐसो लगे के उपनिषद् कोई परार्थानुमान कर रह्यो हे. वो ही **''कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः वाक्यात् संख्याविशेषात् च साध्यो विश्वविद् अव्ययः''** (न्या.कु.५।१) **''क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्''** वो बहोत नॅरो फ्रेम्‌में आतो अनुमान हे, ये थोड़ो वाइडर् फ्रेम्‌में भयो अनुमान हे. पर हे कोई जातको परार्थानुमान. पर जितने आद्य वेदान्ती हे, अपने बादरायण महर्षिसु लेके नीचे महाप्रभुजी तकके सब वेदान्ती या बातपे एकदम यूनेनिमस्ली ॲग्री हो रहे हें के ये अनुमान नहीं हे. **''जन्माद्यस्य यतः''** (ब्र.सू.१।१।२) के बाद बादरायण क्या केह रहे हें **''शास्त्रयोनित्वात्''** (वहीं) अनुमान नहीं हे.

शंकराचार्यजी बहोत सुंदर कहे हें **''किं पुनः तद् वेदान्तवाक्यं यत् सूत्रेण इह लिलक्षयिषितम्'', ''वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रैः उदाहृत्य विचार्यन्ते, वेदान्तवाक्य-कुसुमग्रन्थनार्थत्वात् सूत्राणाम्''** (ब्र.सू.शां.भा.१।१-।२) ये सूत्र तो एक डोरा हे जामें वेदान्तके वाक्यके फूल पिरोके एक माला बनाई जा रही हे. ये अनुमानके लिये प्रवृत्त नहीं भये हें. अनुमान तो हे नहीं.

पर यहां विधि-विधान कियो हे. विधान कियो हे कौनसे जातको? जैसे बच्चाकु अपन् माथा पकड़के अपने आराध्य देवके आगे झुकवा दें. दस पांच पन्द्रह बार झुकवा दियो जाय तो बच्चाकु समझमें

आ जाये के यहां माथा झुकानो. वो एज़ पर् हॅबिट् माथा झुकावे लग जाये. ऐसे शास्त्र अपनेकु जोर-जबरीसु केहतो होय **''विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म''** (वहीं) तो अपनेकु लगे अच्छा कर्तव्य हे अपनो विजिज्ञासा करनी. वा जिज्ञासा रूपी कर्तव्यको ये अर्थवाद हे, मानें प्ररोचनार्थ. यों कहें ना के लड्डू खा ले, मजा आयेगी. **''मैया कब बाढ़ेगी ये चोटी. दूध पीवत मोहे किति बेर भई अजहू हे ये छोटी''** सूरदासजी कहे हें के दूध पीयेगो तो तेरे बाल बड़े हो जायेंगे. बेहकावेके लिये जैसे कोई अर्थवाद बता दें.

ऐसे बेहकावेके लिये बतायो गयो अर्थवाद हे के याको स्वार्थमें प्रामाण्य हे? कायको? **''श्रवणायापि बहुभिः यो न लभ्यः''** (वहीं) **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (वहीं) ये जिज्ञास्य ब्रह्मकी जिज्ञासाविधिको (स्तावक) अर्थवाद हे के स्वार्थमें याको प्रामाण्य हे? ये भी एक बहोत जिज्ञास्य विषय हे. अपनूने या बखत या टॉपिक्कु नहीं लियो हे. अब कैसे-कैसे विषय छूट रहे हें वो मैने आपकु बता दियो. ब्रह्म इतनो छोटो विषय नहीं हे के अपन् वाकु सारोको सारो कवर् कर सकें. पर एक बात निश्चित हे के जा बखत अपन् कोई वॅरिफिकेशन् करवेको प्रोग्राम् भी घड़ें; श्रुतिमें भी ऐसे इम्पीरिकल् वॅरिफिकेशन्, लॉजिकिल् जस्टिफिकेशन जैसे या वचनमें वेदान्तीने दिये हे. कोई भी उनकु अनुमान नहीं माने हे ये केहके यालिये निरास कर दियो. पर दूसरे जैसे नैयायिक मीमांसक और जो वेदान्ती नहीं हें, भारतके ऐसे दर्शन, उनने यहां अनुमान भी मान्यो हे. **''श्रुतेरपि आहः''** ऐसे केहके.

(जिज्ञास्यब्रह्मको स्वार्थमें प्रामाण्य)

अब सवाल वामें ये होवे हे के वेदान्तकी दृष्टिसु जा बखत अपन् ये बात केह रहे हें के ब्रह्मकु अपन् इम्पीरिकली वेरीफाई नहीं कर सके हें, वा बखत एक प्रॉब्लेम् और खड़ी होवे हे.

यदि अपन् कहीं भी वॅरिफिकेशन् करवे जायें जैसे **''न्यग्रोधफलम् अतः आहर''** (छान्दो.उप.६।१२।१) उपनिषद्ने इम्पीरिकली वॅरिफाई करवेको उदाहरण दियो. याकु चाखके देख. एक लवण=नमक पानी भरके आ. वो सब जगहसु नमकीन हे. **''असन्नेव स भवति 'असद् ब्रह्म' इति वेद चेद्. 'अस्ति ब्रह्म' इति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः''** (तैत्ति.उप.२।६) (आई थिन्क् देर्फॉर् आई ॲम्)

जो ब्रह्मकु 'असद्' केह रह्यो हे वो ब्रह्मकु 'असद्' नहीं केह रह्यो हे पर वो खुदकी सत्ताकु डिनाय् कर रह्यो हे. **'''अस्ति ब्रह्म' इति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः''** (वहीं) जो ब्रह्मकी सत्ताको स्वीकार करे वो ब्रह्मपे कोई उपकार नहीं कर रह्यो हे. वो खुदकी सत्ता स्वीकार रह्यो हे. बात क्या केहनो चाह रह्यो हे वेद? सोर्ट ऑफ् डेकार्तियन् फ्रेम् हे. (आई थिन्क् देर्फॉर् आई ॲम्) तुम्हारी सत्ता वा सत्ताको पार्ट् हे. जब तुम होल्कु डिनाय् कर रहे हो तो पार्ट कॅन् नॉट् ॲग्ज़िस्ट्. यदि तुम होल्को स्वीकार कर रहे हो तो पार्टकी ॲग्ज़िस्टेन्स् हे. पर फिलॉसॉफिकली ये प्रॉब्लॅमेटिक् इश्यु हे.

अपने यहां जैन चार्वाक भयें, जो बहुत्ववादी हें. जो एकत्ववादकु मान ही नहीं रहे हें तो वो होल् क्यों मानेंगे? बुद्धने संघातवाद और प्रतीत्यसमुत्पन्नवाद कु प्रपोज़् कियो वा मूलदृष्टिमें प्रॉब्लेम् क्या हे? जा एकत्वको तुम स्वीकार रहे हो वो हमकु स्वीकार्य नहीं हे. बाकी हर वस्तु हे. **''यत् सत् तत् क्षणिकम्''** (क्षणभंगसिद्ध.१) क्षणिक सब कुछ हे. पर उन क्षणिक सत्को पाछो कुछ होल् हे वो तुम्हारी भ्रमणा हे. तो अपन् समझ सके हें के अपन् लॉजिकली जस्टिफाय् करवे जायें तो भी ब्रह्मके कन्सॅप्ट्में बहोत प्रॉब्लेम् हे.

मैं ये बात आपकु निराश करवेके लिये नहीं केह रह्यो हूं.

मैंने पहलेसु ही आपकु बता दी, जाके लिये बारीको उदाहरण दियो. **"सूर व्हेके काहे घिघियात हे, कछु भगवद्लीला गा"** लीलागानके लिये बता रह्यो हूं. सबके चेहरा मोकु उदास होते दीख रहे हें. रेस्ट् अॅश्योर्ड ब्रह्मसंगोष्ठीमें निराश करवेके लिये ये प्रवचन नहीं हे. पर ब्रह्मसंगोष्ठीके लीलात्मक गान करवेके लिये ये मेरो प्रवचन हे. या बातकु मत भूलियो. पर वाकी लीलात्मकतामें कोई तरहकी अन्-प्रॅडिक्टिबिलिटी हे. और जो अन्-प्रॅडिक्टिबिलिटी हे वापे आपको ध्यान नहीं गयो तो हमेशा अपनो माइन्ड्-सॅट् कुछ न कुछ प्रपोज़िशनल् प्रॅडिक्शन्के अर्थ करतो रहे. वाके कारण फिर अपनो माइन्ड् करप्ट् हो जातो होवे हे. वा तत्त्वकु उपनिषद् जा तरहसु समझानो चाह रह्यो हे, वा तरेहसु समझवेको प्रयास नहीं करके अपने-अपने कोई अपने ही पॅरामिटर्पे अपन् समज लेंगे.

जैसे मोकु बराबर अच्छी तरहसु याद हे के एक बखत कोई प्रॉफेसर्ने ही मोसु कही हती के "महाराज, तुम्हारो कृष्ण क्या हे?" मैनें कही के "आपकु क्या लगे हे वो आप बता दो" वाने कही के "कृष्ण कोई मुगलकालमें जा तरहसु ऐयाश मुगल शहेनशाह हते वा तरीकेकी तुमने एक भगवान्की कल्पना कर ली हे" तो हर बखत अपनेकु हर चीज अपने पॅरामिटर्सु नापवेकी इच्छा होवे हे. अपन् भी केह सके हें के वहां अत्याचारी राजा हते या लिये उनने अत्याचारी ईश्वरकी कल्पना करी. कहीं प्रेमी भक्त हते तो उनने भगवान्की प्रीतमके रूपमें, लव् इज़् गॉड्की, कल्पना कर ली. तो जा बखत अपन् लव् इज़् गॉड् केह रहे हें वो लव् कौनसो? ये बॉलिवुड्को लव्? वो लव् नहीं. कौनसो लव्? वो लव् अपनेकु पता नहीं हे. क्योंके अपन् जो लव् जान रहे हें वो बॉलिवुड्को लव् जान रहे हें के एक हीरोईन्के पीछे एक हीरो दौड़ रह्यो हे. वो लव्-स्टोरी हे. इज़् धॅट् लव् गॉड्? आदमी जब भी सोचेगो तो वाके पास उपलब्ध फ्रेम् हे. वाही माईन्ड्-सॅट्में सोचेगो ना!

जैसे रीसेन्टली नासाने (NASA) एक ग्रह खोज्यो. ग्रह खोजके इश्यु हाईप् कियो के अब एक ऐसो ग्रह मिल गयो हे जहां पृथ्वीकी तरह जीवनकी संभावना हे. मैंने तुरत वापे एक कमॅन्ट् सबन्कु व्हॉट्स्-अप्में दियो. याको मतलब ये हे के अपन् जीवनकी संभावना एक ही मान रहे हें, जो पृथ्वीकी हे. अपन् आकाशमें इतने बड़े टॅलिस्कोपसु (Hubble space telescope) और ऊपर घूमते स्पेस्क्राफ्ट्सु खोज क्या रहे हें? पृथ्वी जैसो वातावरण कहां हे, वहां प्राणकी सम्भावना हे? वाको मतलब के प्राणको अपन्ने एक ही फॉर्म्युला सोच्यो के जहां पृथ्वीको वातावरण हे हाईड्रोजन-ऑक्सिजन् और कार्बन-ऑक्सिजन् को, वो ही सम्भावना हे.

पर कार्लसॅगान् (carl segan) केह रह्यो हे के ऐसे दस फॉर्म्युला हो सके हें. अमोनिया और मीथेन् को जासु जीवनकी सम्भावना हो सके के एक चीजकु छोड़े और एक चीजकु ले. अपन्ने क्यों ऐसे सीमित मान्यो? पर अपन् जब इतने बड़े साइन्टिफिक् उपकरणन्के साथ खोज रहे हें, वामें खोज क्या रहे हें? 'कूपमण्डूक' न्यायेन जो अपन्कु अवेलेवल् हे वा पॅरामीटर्पे अपन् खोज रहे हें. वा पॅरामीटर्पे खोजवेके लिये अपनी तैयारी ही नहीं हे के दूसरी भी कोई सम्भावनायें हो सके हें.

कार्लसॅगान् खुद केह रह्यो हे के जुपिटर् भले गॅसियस् हे तो गॅसियस् होयगो, भले सॉलिड् मॅटर् नहीं हे जुपिटर्की, तो वहां कुछ वा तरीकेके प्राणी हो सके हें के जो प्राणी यहां पृथ्वीपे आके जी न सकें. जिनने भी अवतार फिल्म देखी होयगी उनने पण्डोराको देख्यो होयगो के पण्डोराको आदमी पृथ्वीपे मर जाये और पृथ्वीको आदमी पण्डोरापे तीन मिनटसु ज्यादा जीवे नहीं. तो कोई जीवनकी सम्भावना एक ही हे क्या? **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व**

तद् **'ब्रह्म'** '' (तैत्ति.उप.३।१)

अपन् हर बखत ऐसे सोचें के महम्मद पयगंबरके साथ अल्लाह अरबीमें बोल्यो थो. वाकु रोमन् संस्कृत नहीं आती होयगी. भगवान् व्रजभाषामें बोले तो अपन् सोचें के भगवानूकु पर्शियन् नहीं आती होयगी. क्यों? हमारी व्रजबानी ही वेद! हमारे दादाजीकी प्रॉब्लेम् ये हती. वो ठाकुरजीकु व्रजभाषाके कीर्तन सुनाके एक पर्शियन् गज़ल तो सुनाते ही. मोकु भी बचपनमें चिंता होती के पर्शियन् सुनावें पर अपने ठाकुरजी तो व्रजके ठाकुर हें. उनकु पर्शियन् गज़ल कायकु सुनावें दरवाजापे खड़े होके? उनकु समझ कैसे आती होयगी? दादाजीको नियम हतो. कीर्तन करवेके बाद बालकृष्णलालजीकु एक गज़ल जरूर सुनाते. मोकु भी ये समस्या हती के कैसे समझते होंयगे ठाकुरजी के क्या गा रहे हें दीक्षितजी महाराज? क्योंके हर बखत अपनी समस्या ये ही हे के जो मेरी भाषा नहीं समझ रह्यो हे वो म्लेच्छ हे. जो मेरी भाषा नहीं समझ रह्यो हे वो बार्बेरियन् हे. सारे जर्मनीकु रोमन् लोग बार्बेरियन् समझते हतें. सारे असंस्कृतभाषीनूकु अपनूने म्लेच्छ समझ्यो. एक बात ध्यानसु समझो के जहां तक अपनो इश्यु हे वहां तक ये बात सच हे. ब्रह्मके इश्युपे ये सारे पॅरामीटर्स् कॅन्सल् हो रहे हें.

वे कॅन्सल् हो रहे हें वाके लिये अपनेकु मूलमें एक बात समझनी पड़ेगी के जा बखत अपन् वॅरिफिकेशन् करवे जा रहे हें वा बखत श्रुति केह रही हे **'' 'न' इति 'न' इति — 'नहि एतस्मात्' इति 'न' इति अन्यत् परम् अस्ति!''** (बृह.उप.२।३।१) तुम याकु ही ब्रह्म केह रहे हो तो श्रुति ना पाड़ेगी. ''ब्रह्म नास्ति'' **''न भूमिः न तोयं न तेजो न वायुः न खं न इन्द्रियं वा न तेषां समूहः अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धः''** (दशश्लोकी.१) सुषुप्तिमें अज्ञानके सिवाय कुछ भी सिद्ध नहीं हो रह्यो हे. सब कछु असिद्ध हो रह्यो हे.

माईन्ड् इट्. शंकराचार्यजी केहनो क्या चाह रहे हें अज्ञानैकसिद्ध ज्ञान हे. **''सुषुप्त्येकसिद्धः तदेको अवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्''** (वहीं) तो या तरीकेकी क्योंके अपनूकु हर बात ज्ञानसु समझमें आ रही हे तो अपन् ये समझ रहे हें के अज्ञानसु कुछ समझमें नहीं आवे. उपनिषद् ऐसे नहीं कहे हे.

उपनिषद् बहोत सुन्दर बात कहे हे. जब तुम अपने ज्ञानसे समझनो चाह रहे हो के ये ब्रह्म हे तो उपनिषद् **'' 'न' इति''** केह रह्यो हे. **'' 'नहि एतस्मात्' इति 'न' इति अन्यत् परम् अस्ति!''** (वहीं) ये ब्रह्म नहीं हे. अब अपनेकु ना पाड़ दी तो अपनेकु लगे के अच्छा ये ब्रह्म नहीं हे. क्योंके श्रुतिने ना पाड़ दी ना! श्रुतिने ना पाड़ी याके लिये ब्रह्म नहीं हे. तो सीधोसो अपनेकु ऐसे लगे के ब्रह्म अवाच्य अमेय हे. विवेकचूड़ामणिमें शंकराचार्यजी बहोत अच्छी बात कहे हें के **'' 'अस्ति' इति प्रत्ययो यश्च यश्च 'न अस्ति' इति वस्तुनि, बुद्धेरेव गुणौ एतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः''** (वि.चू.५७३) 'हे' ये सोचनो और 'नहीं हे' ये सोचनो ये तत्त्वको या वस्तुको गुण नहीं हे पर ये तुम्हारी बुद्धिकी खुराफात हे. अब तो ब्रह्म भी सदसद्-अनिर्वचनीय हो गयो.

अब निराश मत होओ. मैं ब्रह्मसंगोष्ठीमें निराश नहीं कर रह्यो हूं लेकिन बार-बार ये केह रह्यो हूं के **''श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्''** (वहीं) रहस्य हे ये अर्थवाद नहीं हे. याको स्वार्थमें प्रामाण्य हे ये बतानो चाह रह्यो हूं. मेहरबानी करके याकु नोट् करके रखो, निराश मत होओ. मैं ये बतानो चाह रह्यो हूं के याको स्वार्थमें प्रामाण्य कैसे हे? आप लोगनूके चेहरा देखके मोकु भी संशय हो जाये के कुछ गड़बड़ तो नहीं बोल रह्यो हूं मैं! मैं गड़बड़ नहीं बोल रह्यो हूं. बात बहोत पतेकी केह रह्यो हूं.

(जिज्ञास्य ब्रह्मको अवाच्य-अमेय स्वरूप[१-२])

(बौद्धदृष्टिसु[१])

दूसरी बात ये आवे के जा बखत "'न' इति 'न' इति" केह रह्यो हे वा बखत अपनेकु अवाच्य और अमेय ब्रह्म लगे. भगवान् बुद्धकु तत्त्व ही अवाच्य और अमेय लग्यो. याके लिये उनने 'निर्विकल्प-प्रत्यक्ष-प्रामाण्यवाद' स्थापित कियो. 'निर्विकल्प-प्रत्यक्ष-प्रामाण्यवाद' मानें क्या? ये जो दीख रह्यो हे वो सच हे. याके बाद जा बखत तुम्हारी बुद्धि ये सोच रही हे के ये पॅन् हे, ये लिखवेको साधन हे. ये जो-जो 'इदम्'के साथ जुड़ते भये विकल्प हें वो तुम्हारी बुद्धिकी कल्पना हे. जा बखत तुम बोलने जा रहे हो वा बखत ज्ञान वा बातकु (वा पॅनकु या वा तत्त्वकु) विषय करके नहीं बोले हे पर वा बखत तुम्हारो ज्ञान, तुम्हारे मनमें, तुम्हारे संस्कारसु जो कल्पनायें घुसी हें तुम्हारी स्मृतिसु, तुम्हारे सुखदु:खके हेतुनसु वो सारी अविद्या काम कर रही हे. वो तत्त्वकी अनुभूति काम नहीं कर रही हे. याके लिये शब्दके बारेमें भगवान् बुद्धने अपोहवादकु बतायो.

अतद्व्यावर्तनसु शब्दतत्त्वको निरूपण कर सके हे. शून्यके मतलब कई हें. पर वाको एक मतलब ये भी हे के "**'अस्ति' इति वदतो ब्रूमो 'न अस्ति' सर्वं विचारत:, 'न अस्ति' इति वदतो ब्रूम: सर्वम् 'अस्ति' अविचारत:. यथा-यथा समारोपा: जायन्ते तत्त्वयोगिन: तथा-तथा समारोपा: हन्यन्ते तत्त्ववादिना**" (श्रीमदद्वयवज्रपादकृत अद्वयवज्रसंग्रह पृ.६२) तुम 'हे' केह रहे हो तो मैं कहूंगो के 'नहीं हे'. थोड़ो विचार करो तो तुमकु लगेगो के 'नहीं हे'. 'नहीं हे' केह रहे हो तो मैं कहूंगो के विचार नहीं करो तो 'हे' तो सही. ये 'होनो' और 'नहीं होनो', ये सब अपनी बुद्धिकी फितूर हे. वस्तुको गुण नहीं हे.

(शांकरदृष्टिसु[२])

याकु शंकराचार्यजीने भी कॅरीफॉर्वर्ड करके "**'अस्ति'इति प्रत्ययो यश्च यश्च 'न अस्ति'इति वस्तुनि बुद्धेरेव, गुणौ एतौ न तु नित्यस्य वस्तुन:**" (वहीं) ये बात कही. ये सिद्धान्त आयो के ब्रह्म अवाच्य हे. शांकरमतने भी याही लिये 'सन्मात्रग्राहिप्रत्यक्षवाद' की स्थापना करी के जा बखत अपनकु आंखसु दीख रह्यो हे वा बखत कुछ 'हे' इतनो ही दीख रह्यो हे. जो 'क्या हे' ये दीख रह्यो हे वो बुद्धिकी कल्पना हे. या लिये ब्रह्म क्या हे ये सारो सोचनो बुद्धिकी कल्पना हे. बस 'ब्रह्म हे' ये मानके चलो. क्योंके 'क्या हे' पूछने पर तुमकु भ्रम हो रह्यो हे. जहां तुमकु हो रह्यो हे वो एकान्ततया ब्रह्म हे. ये उनको सिद्धान्त अवाच्य अमेय ब्रह्मको सिद्धान्त हतो. जो बुद्धको अपोह और निर्विकल्पप्रत्यक्षप्रामाण्य-वादसु अपने वेदान्तमें इन्कॉर्पोरेट् कियो गयो.

(जिज्ञास्य ब्रह्मको वाच्य-मेय स्वरूप रामानुज दृष्टिसु)

याके विरुद्ध रामानुजाचार्यने एक रिवोल्ट् कियो के ब्रह्म वाच्य हे, ब्रह्म मेय हे. वेदान्तदेशिक बहोत अच्छी बात कहे हें "**वाच्यत्वं वेद्यतां च स्वयम् अभिदधति ब्रह्मणो अनुश्रवान्ता: वाक्चित्तागोचरत्वश्रुतिरपि परिच्छित्त्यभावप्रयुक्ता**" (तत्त्वमुक्ताकलाप ३।३) ब्रह्म वाच्य हे, ब्रह्म वेद्य हे. जो अवाच्य और अवेद्य केह रह्यो हे वाके लिये वेदान्तदेशिक केह रहे हें वो तो '**परिच्छित्त्यभावप्रयुक्ता**', ईयत्तया वाकु नहीं कह्यो जा सके हे. जो बात मैंने बारीके उदाहरणसु बताई. आकाश ज्ञेय हे के अज्ञेय हे? बारीमेंसु जितनो दीख रह्यो हे उतनो तो दीख ही रह्यो हे, वाकु उतनो मान रहे हो और उतनो ही मान रहे हो तो भ्रमणा हे. "**वाच्यत्वं वेद्यतां च स्वयम् अभिदधति ब्रह्मणो अनुश्रवान्ता:**" (वहीं) अनुश्रवान्ता मानें वेदान्ता.

वेद खुद केह रह्यो हे के ब्रह्म वाच्य हे वेद्य हे. पर

वाक्चित्तागोचर भी कहे हे. **''यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह''** (तैत्ति.उप.२।४।५) यों श्रुति जो केह रही हे वो तो वामें परिच्छेद नहीं हे. याही लिये व्यासजीने भी **''प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः''** (ब्र.सू.३।२।२२) **'''नहि एतस्माद्' इति 'न' इति अन्यत् परम् अस्ति''** (वहीं) 'न इति'को मतलब वेदने खुदने व्याख्यान कियो. **'''नहि एतस्माद्' इति''** एक इन्स्टेन्स्में यदि तुम ब्रह्म बताओगे तो ना पाड़नो पड़ेगो के ये ब्रह्म नहीं हे. '''न' इति अन्यत्'' कुछ और भी हे. कुछ और भी हे. कुछ और भी हे. जितनो तुमने एक-एक इन्स्टेन्स् बतायो. ब्रह्म उन सबकु नॅगेट् करवेके बाद कुछ और भी हे, कुछ और भी हे. यासु पहेली वेदान्तकी स्कूल् ऐसी भयी के **''निषेधशेषो जयताद् अशेषः''** (भाग.पुरा.८।३।२४) वाकु निषेधसु ही बोल्यो जा सके हे. विधानसु बोल्यो नहीं जा सके हे.

दूसरी स्कूल् ऐसी भयी के 'नहीं-नहीं' विधानसु बोल्यो जा सके हे, पर कितनो हे ये नहीं बोल्यो जा सके हे. क्या हे, ये बोल्यो जा सके हे, क्या हे ये जान्यो जा सके हे, पर कितनो हे और कैसो हे, ये जान्यो और बोल्यो नहीं जा सके हे.

ये दो वेदान्तकी ब्रह्मके बारेमें बेसिक् स्कूल् हें. अपन् संगोष्ठीकी लाईट्में यों समझ सके हें. क्योंके अपनेकु बोलनो हे और समझनो हे या लिये ये बात मैं बता रह्यो हूं.

(वाल्लभ दृष्टिसु)

महाप्रभुजीने एक बात बहोत मीठी कही हे के जहां तक अपने माईन्ड्-सॅट्को सवाल हे, वेदके बिना **''अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते''** (ब्र.सू.भा.१।१।१) तस्माद् उपनिषद्एव प्रमाणं **'''तन्तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति केवलोपनिषद्वेद्यं ब्रह्म''** (ब्र.सू.भा.१।१।१)

या न्यायसु. ये सीमा अपनी हे के ब्रह्मकी हे? ब्रह्मकु यदि कोईके सामने रिवील् होनो होय तो अपन् ब्रह्मकु ये शोकॉज् नोटिस् नहीं दे सकें के बिना उपनिषद्के तुम कैसे रिवील् हो गये! बात समझमें आयी?

''न अयम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया, न बहुना श्रुतेन'' (कठोप.१।२।२३) **'न प्रवचनेन'**=उपनिषद्के प्रवचनसु आत्मा समझमें नहीं आयेगी, **'न मेधया'**=अपने इन्ट्युटिव् ज्ञानसु भी समझमें नहीं आयेगी, **'न बहुना श्रुतेन'**=बहोत कुछ अपन् ब्रह्मसंगोष्ठीमें सुन लेंगे तो भी समझमें नहीं आयेगी, तो समझमें कैसे आयेगो? **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः''** (वहीं) वो जाके सामने अपने आपकु रिवील् करनो चाहे तो वो उपनिषद्के बिना भी रिवील् हो सके हे. **''तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्''** (वहीं) वाके सामने वो अपने आपकु रिवील् करे हे. रिवील् कर सके हे **''तं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि''** (वहीं) यदि हॉल्में बैठके आकाशकु देखनो हे तो बारीमेंसु झांकनो पड़ेगो. ये आकाशको लिमिटेशन् हे के अपनो लिमिटेशन हे? या हॉल्में बैठे भये आकाशकु देखनो हे तो बारीमें झांके बिना अपनेकु आकाश दिखाई नहीं देगो. ये अपनो लिमिटेशन् हे. ऐसे उपनिषद्सु ही वाकु जान्यो जा सके हे, ये अपनो लिमिटेशन् हे, ब्रह्मको लिमिटेशन् नहीं हे. ब्रह्ममें वा तरीकेकी अन्लिमिटेड्नेस् हे के **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः''** (वहीं). वैसे तो बारीके बाहर ताकवेकी जरूरत नहीं हे. दीख पातो होय तो बारीके बाहर दीखतो आकाश ही या हॉल्में दिखाई दे सके हे!

ब्रह्मके दो स्वरूप आ रहे हें. अपने सूत्रकारके हिसाबसु **''प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः''** (वहीं) कोई भी एक पर्टिक्युलर् इन्स्टेन्स्में ब्रह्मकु देखने जानेपे ब्रह्मको बोध अपोहनसु होयगो, **'''न' इति 'न' इति''** के अपोहनसु और अमेय हो जायेगो. जो शंकराचार्यजीकी

तरह महाप्रभुजीने पॉलिसी बनाई हे. या रामानुजाचार्यजीने पोलिसी बताई हे के अवाच्यत्व परिच्छिन्नतया वाच्य होता हे. ब्रह्म अभिधेय भी हे और मेय भी हे. अब ये दोनों कॉन्ट्राडिक्टरी स्टेटमॅन्ट् हें. रामानुजाचार्यजी शंकराचार्यजीकु डिनाय् करेंगे और शंकराचार्यजी रामानुजाचार्यजीकु डिनाय् करेंगे.

(जिज्ञास्य ब्रह्मको अपोह्यवाद-अभिधेयवाद : विरुद्धधर्माश्रयता)

महाप्रभुजी क्या कहेंगे विरुद्धधर्माश्रय होवेके कारण दोनों सम्भव हें. अमेय भी हे और मेय भी हे वाच्य भी हे और अपोह्य भी हे. दोनों तरेहको ब्रह्म हे, **''विरुद्धधर्माश्रयत्वात्''**.

विरुद्धधर्माश्रयत्वात् क्यों हे, विरुद्धधर्म वामें क्यों हे? क्योंके ये धर्मनूकी विरुद्धता अपनो माइन्ड्सॅट् सोचवेको तरीका हे, वाकी लिमिटेशन् हे के ये चीजें कॉन्ट्राडिक्टरी हें. एक हे तो तीन नहीं हे, तीन हें तो एक नहीं रह्यो. और उपनिषद् क्या केह रह्यो हे **''तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा. आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्''** (वहीं) तीन बराबर एक और एक बराबर तीन. अब ये मॅथेमॅटिकली जस्ट् ग्रेटेस्ट् ब्लन्डर् हे. वेद गडरियाको गीत हो सके हे. मॅक्स्मूलर् कहे हे के उन गडरियान्ने ब्लन्डर् कियो होयगो. अपने हिसाबसु आर्षदृष्टि हो सके हे. फिर उनको ये तथ्य वा बखत पता चल्यो के एक बराबर तीन होवे हे. कोई इक्वेशन् उनके पास ऐसो हे आईन्स्टिनके जैसो के $e=mc^2$ अपने उपनिषद्कु ये इक्वेशन् समझमें आ रह्यो हे के तीन बराबर एक हे और एक बराबर तीन हे.

वाके लिये औपनिषद् ब्रह्म हो सके, अनौपनिषद् ब्रह्म भी हो सके हे. मैं ये मानू हूं के बुद्धधर्म अनौपनिषद् मत होवेके बाबजूद भी ब्रह्मवादी दर्शन हे. क्योंके जैसे उनने अपोहविधिसु ब्रह्मको

वर्णन कियो हे. अपोहविधिसु जो शून्यको वर्णन कियो हे, वा शून्यपे ध्यान दो. क्या बात आ रही हे? **''अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैः अप्रपञ्चितम् अविकल्पम् अनानार्थम् एतत् तत्त्वस्य लक्षणम्''** (मध्यमकशास्त्र.१८।९) **''अपरप्रत्ययं शान्तम्''** केह रहे हें. ब्रह्मकु अपने यहां उपनिषद्ने 'शान्तम्' भी कह्यो हे. **''प्रपञ्चैः अप्रपञ्चितम्''** महाप्रभुजी भी ये बात केह रहे हें. **''ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचित् वस्तुतो ब्रह्म सर्वं हि व्यवहारस्तु लोकतः''** (पत्रा.३) ब्रह्मवादमें तुम कोई चीज डिफाइन् करवेकी कोशिश ही मत करो. क्योंके सब्जॅक्ट् और प्रॅडिकेट् दोनों ब्रह्म हें. जा बखत सब्जॅक्ट् भी ब्रह्म हे और प्रॅडिकेट् भी ब्रह्म हे तो, ब्रह्म ब्रह्म हे, वाकु केहवेसु तुमकु क्या इन्फॉर्मेशन् प्राप्त भयी? यदि सब्जॅक्ट्सु कन्वे हो रही हे तो प्रॅडिकेट्की जरूरत नहीं हे और यदि प्रॅडिकेट् ॲडीशनल् आ रह्यो हे तो रिडन्डट् आ रह्यो हे. ब्रह्म ब्रह्म हे.

चार्ट

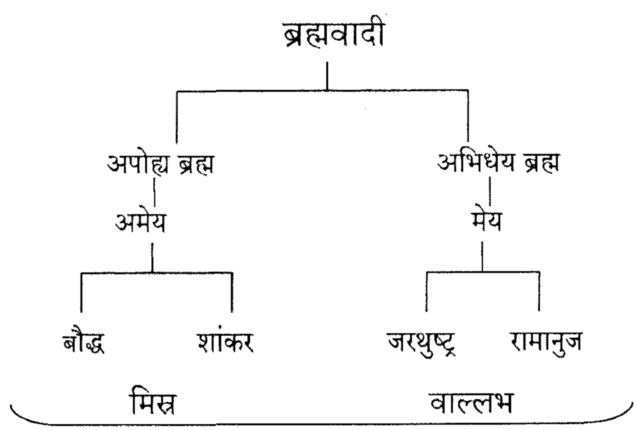

वालिये महाप्रभुजी भी बात केह रहे हें के विकल्प भी वामें नहीं हे. भागवत खुद कहे हे के विकल्पबुद्धि मिथ्या हे. भागवत तो अपने यहां परमप्रमाण हे. विकल्प सारे मिथ्या हे. अब **'अनानार्थम्'** ब्रह्म अपने यहां **''एकमेव अद्वितीयम्''** (छान्दो.उप.६।२।३) **''नेह नानास्ति किञ्चिन्''** (बृह.उप.४।४।१९) तो बौद्धमत अपनी वेदविरोधी होनेकी पूरी सामर्थ्यके बावजूद अपोह्यब्रह्मवाद हे. अभिधेयब्रह्मवाद नहीं हे. या बातकु मैं आपकु बहोत इलस्ट्रेशनूसु समझानो चाहूंगो के कैसे-कैसे बुद्धागम अपन् देखें, दिग्धनिकाय देखें मज्झिमनिकाय देखें, वहां कैसे-कैसे ब्रह्मको वर्णन अपोहनकी विधिसु आयो हे! अपनेकु आश्चर्य होवे के **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्य:''** (वहीं) उनकु भी ब्रह्मकी अनुभूति तो भयी हे. अपन् ना नहीं पाड़ सकें के ब्रह्मकी अनुभूति उनकु नहीं हे. अपोह्यब्रह्मवादकी अनुभूति उनकु भयी हे. अभिधेयब्रह्मवादको वो इन्कार कर रहे हे.

वाकी दूसरी ब्रांच् अपने यहां शांकर भी हें. वो मैंने आपकु बतायो के निर्विकल्पप्रत्यक्ष-प्रामाण्यवाद और सन्मात्रग्राहिप्रत्यक्षप्रामाण्यवाद और निर्विशेषब्रह्मवाद. जैसे उनके यहां अपोहन हे ऐसे इनके यहां भी अवाच्य ब्रह्मकु मान्यो गयो हे. तो उनको ब्रह्म भी वा तरीकेको हे जा तरीकेको बौद्धको शून्य हे. दूसरी बाजु ज़रथुष्ट्र और रामानुज हें जो या बातको इन्कार कर रहे हें. उनके अनुसार ब्रह्म अभिधेय भी हे और मेय भी हे. ज़रथुष्ट्र भी ऐसे ही केह रहे हें. मैं खास आपकु दिखानो चाहूं ब्रह्मवादके अन्तर्गत ज़रथुष्ट्र कैसे ब्रह्मवादी हे!!

(अभिधेयब्रह्मकी वेद-अवेस्तामें समानान्तरता)

अपने ब्रह्मकी कोई ॲक्टिविटी ऐसी नहीं हे के जो ज़रथुष्ट्रने ज़ेन्दावस्थामें कही गयी नहीं होय. अवेस्तामें या यज्नमें कही नहीं होय, अक्षरश: मिले हे. ऐसे इनको अभिधेय ब्रह्म प्रकट भयो हे, मेय ब्रह्म प्रकट भयो हे. यहां विरुद्धधर्माश्रय होनेके कारण, ये विरुद्धधर्म

फिलॉसॉफी ऑफ् फिलॉसॉफी हे. द् फिलोसोफी ऑफ् फिलोसोफी महाप्रभुजीकी क्या हे? **''सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्''** (त.दी.नि.१।७०) ब्रह्म कैसो हे? सर्ववादको अनवसर हे और नानावादन्को अनुरोधी हे. हर वादके हिसाबसु वाको कुछ रूप हे. नानावादानुरोधी और सर्ववादसु अनवसर भी हे. या तरीकेको विरुद्धधर्माश्रय ब्रह्म सर्ववादानवसर भी हे और नानावादानुरोधी भी हे. वो सर्ववादानवसर और नानावादानुरोधी जो विरुद्धधर्माश्रयी ब्रह्म हे वो मिस्रको एक ब्रह्मवाद हे. वो मैं आपके साथ शॅर् करनो चाहूं.

आज अपन् इन्ट्रोडक्शन्को यहां रखेंगे. ये एक स्कीम् हे जामें अपन् कुछ ब्रह्मसंगोष्ठी करेंगे. अपने महाप्रभुजीके हिसाबसु भी देखेंगे. **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्य:''** (वहीं) ब्रह्मने उन लोगन्को कैसे वरण कियो और उनकु ब्रह्मको कैसे इन्ट्युशन् भयो हे वो भी अपन् देखेंगे. (मिस्रवालेन्को) उपनिषद्के ब्राह्मणके आरण्यकके और मिस्रके पॅसेज् जो पिरामिड्के ऊपर लिखे भये हें, उनके कब्रगाहपे कफनपे लिखे भये जो लेख हें, वो उपनिषद्के पॅसेज्के साथ एकदम पॅरेलल् जाते भये पॅसेजिस् हें. अपन् देखें तो अपनेकु आश्चर्य हो जाये के इतनो पॅरेललिज़म् आ कैसे रह्यो हे! कौनसी बात अपनी हे जो उनने नहीं कही हे. उनकी कौनसी बात ऐसी हे जो अपन्ने नहीं कही हे. ये बात सच हे के अपने यहां ब्रह्म उपनिषदैकगम्य हे. **''तं तु औपनिषदं पुरुषं(ब्रह्म) पृच्छामि''** (वहीं) ये समस्या अपनी हे ब्रह्मकी नहीं हे. **''न अयम् आत्मा प्रवचेन लभ्यो, न मेधया, न बहुना श्रुतेन, यमेव एष वृणुते तेन लभ्य: तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्''** (वहीं) वा आत्माने अपनो कैसे-कैसे विवरण कियो हे वो अपन् थोड़ो-थोड़ो करके देखेंगे रोज. और अधिक चर्चा नहीं करके मैं यहां विराम लऊं हूं.

(क्या ब्रह्म अवाच्य या अमेय हे?)

ब्रह्मवादके उपक्रममें कल अपन्ने ब्रह्मवादके जो डिफरॅन्ट् फॉरमॅट्स्

हें— अपोह्यब्रह्मको ब्रह्मवाद, अभिधेयब्रह्मको ब्रह्मवाद. अपोह्यब्रह्म अमेयब्रह्म मानवेवाले ब्रह्मवादमें, बौद्ध और शांकर को मत हे और अभिधेय-मेय ब्रह्म मानवेवाले ब्रह्मवादमें रामानुज और ज़रथुष्ट्र आवे हें. 'मेय' मतलब जान्यो जा सके ऐसो, प्रमाणको जो विषय बन सकतो होय. वैसे पुष्टिमार्गकी बहोत सारी वॉकेब्युलरीकु (शब्दावली) अपन् करेन्सीकी तरेह वापरे हें, ये देखे बिना के कौनसे सन्की करेन्सी हे, वो चालू हे के बन्द हो गई. हाथमें आ गई करके वापरनो शुरु करें. वा तरीकेको एक शब्द हे. प्रायः अपन् सब वा शब्दसु अवेयर् होंगे 'लोकवेदातीत'. अब 'लोकातीत'को मतलब प्रत्यक्षागम्य. 'वेदातीत'को मतलब वेदागम्य. **''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' ''शास्त्रयोनित्वात्''** (ब्र.सू.१।१।१-२) वा ब्रह्मकु 'शास्त्रयोनि' कह्यो हे. शास्त्रयोनिमें उपनिषद् ब्रह्मको प्रतिपादक हे, गीता परमात्माकी प्रतिपादक हे. भागवत भगवान् कृष्णकी प्रतिपादक हे. **''ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते. त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयात्र हि''** (त.दी.नि.१।६) पाछे लोकवेदातीत पुरुषोत्तमको एक अलग लफड़ा हे. जो करेन्सीकी तरेह अपन् वापरते होवें और अपनेकु पता ही नहीं होवे के ये क्या हे? वो करेन्सी इश्यु कब भयी वो अपनेकु समझनी चईये.

कोई तो स्वरूप वाको ऐसो हे के जो लोकातीत ही नहीं हे पर वेदातीत भी हे. वेदातीत हे वाको मतलब वेदातीत ही पुरुषोत्तम होवे ऐसो नहीं हे, वो मैंने कल रामानुजाचार्यजीकी बातसु बताई थी के **''वाच्यत्वं वेद्यतां च स्वयम् अभिदधति ब्रह्मणो अनुश्रवान्ताः वाक्चित्तागोचरत्वश्रुतिरपि हि परिच्छित्त्यभावप्रयुक्ता''** (वहीं) जो वेदान्तदेशिक केह रहे हें. वामें उनने एक बहोत मज़ेदार बात कही हे. यदि तुम कहोगे के नहीं-नहीं, अवाच्य ही हे मानें अपने यहांकी परिभाषामें वेदातीत ही हे तो 'हे' के 'नहीं हे' ये सिद्ध कहांसु करोगे? कोई भी बापा-बापी पूपा-पूपीन् कु पूछो के लोकवेदातीत पुरुषोत्तम सिद्ध कैसे होयगो? कौनसी कथा करें के जासु लोकवेदातीत

पुरुषोत्तम सिद्ध होयगो?

यदि भागवतकथा करी तो-तो वो **''जन्माद्यस्य यतो अन्वयाद् इतरतः च अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः. तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि''** (भाग.पुरा.१।१।१) वहां गायत्रीप्रतिपाद्य हो रह्यो हे. फिर तो वो वेदातीत कहां रह्यो?

भागवतप्रतिपाद्य कृष्ण वेदातीत हे या भागवत अप्रतिपाद्य कृष्ण वेदातीत होय. ये वेदातीत हे क्या? सिद्ध कहांसु करोगे? वोही प्रश्न रामानुजमतमें वेदान्तदेशिक भी उठा रहे हें के **''नो चेत्, पूर्वापरोक्तिस्ववचनकलहः, सर्ववेदान्तबाधः तत्सिद्धिः हेतुभिः चेत् प्रसजति विहतिः धर्मिसाध्यादिशब्दैः''** (तत्त्वमुक्ताकलाप. ३।३) यदि तुम केह रहे हो के कोई हेतुसु तुम सिद्ध करोगे तो जो भी हेतुसु सिद्ध करवे जाओगे तब समस्या तुमकु क्या नड़ेगी, कुछ पक्ष बनानो पड़ेगो कुछ साध्य बनानो पड़ेगो. जैसे ही तुमने पक्ष बनायो तो वो वाको कोई वाचक शब्द बन जायेगो. जैसे ही तुमने साध्य बनायो तो साध्यवाचक कोई पद होयगो. अब वो तुम्हारे लौकिक पदसु वाच्य हो रह्यो हे और तुम केह रहे हो के 'वेद'पदसु वाच्य नहीं हे? किं केन् सम्बध्यते! शान्तचित्तसु विचारो, वेदान्तदेशिक केह रहे हें.

ऐसो बॉम्बास्टिक् स्टेट्मॅन्ट् तुम दे क्यों रहे हो के तुम जो अनुमान कर रहे हो; शांकरन्कु यामें बहोत ही जॅन्युइन् प्रॉब्लेम् हती, उनने कही के ऑल्राईट् हम ऐसे करेंगे न तो हम वाकु लौकिक शब्दन्सु वाच्य मानेंगे, न वैदिक शब्दसु वाच्य मानेंगे, शब्दसु अवाच्य हे या अर्थमें वाच्य मानेंगे. वेदान्तदेशिक वाकी भी मज़ाक उड़ावे हें, **''अवाच्यं वाच्यम् इति वा वस्तुनि प्रतिपाद्यते वाच्यमेव भवेद् वस्तु, वाच्यावाच्यवचोऽन्वयात्''**(न्या.सि.३।४६) 'अवाच्य' वचनसु वाच्य

के अवाच्य? यदि 'अवाच्य' वचनसु भी अवाच्य हे तो अवाच्य सिद्ध नहीं होयगो. अवाच्य वचनसु वाच्य हे तो वाच्य तो हो ही गयो. ये केह क्या रहे हे?

ये खाली शांकरनकी समस्या नहीं हे, ये समस्या वाल्लभनकु भी सतायेगी. क्योंके करेन्सीकी तरेह वापर रहे हें 'लोकवेदाप्रथित पुरुषोत्तम'. ये लोकवेदातीत पुरुषोत्तम क्या हे? करेन्सीकी तरेह वापरें पर वापे विचार करवेकी फुरसत नहीं हे.

(ब्रह्म अवाच्य - अमेय भी हे)

अमेय ब्रह्म, जो बौद्धनको सिद्धान्त हतो और शांकरनने लियो. शंकराचार्य खुद अपने आपकु वहां कहे हें **''परिहृतस्तु ब्रह्मवादिना स्वमते दोषः''**. (ब्र.सू.शां.भा.२।१।२९) वे अपने आपकु 'ब्रह्मवादी' केह रहे हें. अब ब्रह्मवादी हें और ब्रह्म अवाच्य हे. ब्रह्म वदति इति 'ब्रह्मवादी'. और ब्रह्म जो हे वो 'ब्रह्म' पदसु वाच्य नहीं हे. ऐसे लफड़ा अपने वेदान्तमें ही हे ऐसी बात नहीं हे शांकर वेदान्तमें भी हें. हम ब्रह्मवादी हें पर ब्रह्म जो हे वो ब्रह्म पदसु वाच्य नहीं हे. जब ये प्रश्न उठायो गयो तब वामें एक दूसरो उनके तरफसु ये समाधान आयो. ब्रह्ममें 'ब''र''ह''म' और छेल्लो 'न', इन सबनकु ड्रॉप् कर दो. ये ड्रॉप् करवेके बाद जो बच रह्यो हे, कहां बच रह्यो हे वो 'ब्रह्म' हे. वाकु वे लोग 'अखण्डार्थवाद' कहें. अपनकु वाल्लभ वेदान्तकी दृष्टिसु अखण्डार्थवाद सुनते ही सबकु मुस्कराहट आयी. महाप्रभुजी भी खुद 'अखण्डाद्वैत' केह रहे हें. अखण्डाद्वैतमें विधि - विधान नहीं हो सके. सखण्डाद्वैतमें विधि - विधान हो सके हे. या बातसु अपनेकु समझमें आवे के ब्रह्मवादको फॉरमॅट् एक नहीं हे.

मैंने चार फॉरमॅट् बताये हें अमेय भी हे, मेय भी हे. उन

दोंनोनके कॅम्प् अलग - अलग बंट रहे हें, अमेयवादी ब्रह्मके और मेयवादी ब्रह्मके कॅम्प्. अमेयब्रह्मवादीमें शांकर तो खैर उत्तराधिकारी हे, पर बौद्ध पायोनियर् हे. क्योंके अपनेकु सबसु ज्यादा बात जो खुचे हे, बौद्धनकु ब्रह्मवादी सुनते ही. अपन् सबनकु खुचे क्योंके अपनने बुद्धके सामने तोपें तान रखी हें. वास्तवमें बुद्धने अपने सामने जो तोप तानी हे वो अपनी आर्मीमेंसु चुराई भयी तोप हे. अपनी आर्मीमेंसु चुरायी भयी तोप अपने सामने तानी हे. वा तोपको पज़ेशन् वापिस ले लेनो चईये. फिर तो अपनेपे तनेगी ही नहीं. दावा करनो चईये के भई ये तोप हमारी हे. हमपे तुम क्या तान रहे हो! ये तो हमारी तोप हे. याकी टॅक्नीकल् नो-हाउ हमकु पता हे. तुमकु शायद उतनी टॅक्निकल् नो - हाउ नहीं पता हे. तुमने हमारे सामने तान तो दी हे. कैसे तानी हे अमेय ब्रह्मवादकी तोप अपने सामने वाकी अपनी एक लीलात्मिका ब्युटी हे. वो मैं आपके साथ शेयर् करनो चाह रह्यो हूं.

(अवाच्य ब्रह्मको वागात्मक व्याकरण मानें वाणीसु सृष्टि)

जैसे जब अपन् अमेय - अवाच्य स्वरूप केह रहे हें, वाके साथ - साथ एक बात और केह रहे हें, बहोत बखत ब्रह्मके रसात्मकताकु **''स इममेव आत्मानं द्वेधापातयत्. ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्''** (बृह.उप.१।४।३) अपन् लद्द-पद्द शृंगाररसात्माके अर्थमें प्रयोग मान ले हें. नहीं लियो जा सके हे ऐसी बात नहीं हे, क्योंके वो तो शब्दतः कह्यो जा रह्यो हे. तो लियो ही जा सके हे. पर उतने ही अर्थमें वाको लेनो नहीं चईये क्योंके वाकु श्रुति खुद कहेगी **'' 'न' इति 'न' इति — 'नहि एतस्माद्' इति 'न' इति अन्यत् परम् अस्ति''** (वहीं)

वाके द्वेधापातनके स्वरूपकी कल अपनने काफी चर्चा करी. **''सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय! इति स तपो अतप्यत. स तपः**

तप्त्वा इदं सर्वम् असृजत. यदिदं किं च तत्सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्. तद् अनुप्रविश्य. सत् च त्यत् च अभवत्. निरुक्तं च अनिरुक्तं च. निलयनं च अनिलयनं च. विज्ञानं च अविज्ञानं च. सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत्. यदिदं किंच तत् 'सत्यम्' इति आचक्षते. तदपि एष श्लोको भवति'' (तैत्ति.उप.२।६) ये सब पति-पत्नीकी ॲनॉलॉजीके डॅमोन्स्ट्रेशन्में कही गई बाते हें. मोकु मिस्इन्टप्रेट् मत करियो के पत्नी सब अनिरुक्त हें पति सब निरुक्त हें. पत्नी सब निलयन हें और पति सब अनिलयन हें. ऐसी बात नहीं हे. पर वाकी ॲनॉलॉजीकु समझावेके लिये कहे गये ये सारे डिफरॅन्ट् पॅरामिटर्स् हें. और इनमें कहींमें भी ब्रह्मकु अपन् जा बखत कन्फाईन् करनो चाहेंगे तो वाके लिये श्रुति **'''न'इति 'न'इति''** केह रही हे. ब्रह्मकु कोई भी एकमें कन्फाईन् मत करो. **'''न' इति अन्यत् परम् अस्ति''**

वा **'''न' इति अन्यत् परम् अस्ति''**की अपन् जब बात करें वा बखत वाच्य भी हे, अवाच्य भी हे, क्योंके **''निरुक्तं च अनिरुक्तं च''** हो रह्यो हे. बहोत सारे आचार्य या झगड़ामें उलझ गये. अपने महाप्रभुजीकी एक ब्युटी देखो. महाप्रभुजी या बातकु केह रहे हें के ब्रह्मने जा बखत द्वेधापातन कियो तो वचन और वाच्य के अर्थमें भी एक द्वेधापातन भयो हे. क्योंके वागात्मा भी वो खुद भयो हे. क्योंके सारी सृष्टिको जो व्याकरण हे **''स 'भूः' इति व्याहरत् स भूमिम् असृजत...स 'भुवः' इति व्याहरत् स अन्तरिक्षम् असृजत...स 'सुव' इति व्याहरत् स दिवम् असृजत''** (तैत्ति.ब्रा.२।२।४।१-२) सारी सृष्टिको वागात्मक उच्चारण हे. मनुस्मृतिने तो याकु ॲम्फेटिकली कह्यो हे. प्रस्थानरत्नाकर भी यापे बहोत भारपूर्वक केह रह्यो हे.

सारी सृष्टिको जो व्याकरण हे वो वागात्मक व्याकरण हे. जैसे नामरूपकर्मात्मना व्याकरण हे, ऐसे वाण्यात्मक व्याकरण हे. क्योंके ब्रह्मकु करवेकी जरूरत नहीं हे, बोलवेकी जरूरत होवे हे. वाकु

पुराने जमानामें जैसे ये बतायो गयो के **''ऋषिणां पुनराद्यानां वाचम् अर्थो अनुधावति''** (उत्तररामचरित.१।१०) उनकी वाणी निकले तो वा तेरहसु अर्थ पैदा हो जाये. वाणीसु अर्थ पैदा भयो हे. अर्थसु वाणी पैदा नहीं भयी हे.

(ब्रह्म ऑनोमोटोपोइया नहीं हे)

आजके सॅट्-अप्में अर्थसु वाणी पैदा हो रही हे. **''अर्थं वाग् अनुधावति''** अर्थसु वाणी पैदा होवेके एकदम ग्रॉस् उदाहरण मोकु देनो होय तो 'ऑनोमोटोपोइया' अपन् समझ सके हें कुत्ता भाउ-भाउ करतो होय तो बच्चा कुत्ताकु 'भाउ-भाउ' कहेगो. बकरी मैं-मैं करती होय तो अपन् बकरीकु 'मिमियाती भयी' कहे हें. शेर गुर्राती होय तो गुर्रानो वो ऑनोमोटोपोईया हे. तो अर्थसु यहां वाणी पैदा हो रही हे. मोटर्साईकल्कु जैसे 'फटफटी' कहे हें फट-फट आवाज करवेके कारण. कौआकु 'कॉव-कॉव' केह रहे हें. मैंढककु अपन् 'दुर्दर' केह रहे हें. क्योंके वो ड्रांउ-ड्रांउ करे हे. हिन्दीमें 'टर्टर' कहे हें. ये सारे ऑनोमोटोपोईया हें. यहां अर्थसु वाणी पैदा हो रही हे.

लिंग्विविस्टिक्के ॲन्गल्सु ये बहोत डिबेटेबल् इश्यु रह्यो हे के सबसे पहले ऑनोमोटोपोइया वाणी पैदा भयी के नही. क्योंके अभी भी बहोत सारे जानवरन्कु पशु-पक्षीन्कु ऑनोमोटोपोईयाकी बहोत ज्यादा इन्क्लिनेशन्स् स्ट्रॉन्ग् होवे हे. जा वस्तुसु जा विषयसु जा तरीकेकी ध्वनि पैदा हो रही हे, वो ध्वनिकु वाको वाचक माननो. मैं अक्सर मज़ाकमें एक बात केहतो रहूं के पोपटकु मूंगफली देनेके पहले अपन् 'पोपट' बोलें. अपन् समझें के अपन् वाकु 'पोपट' बुला रहे हें. पर पोपटकी समझ ये हे के ये सब पोपट हें. पोपटकु जब मूंगफली चईती होय तो वो 'पोपट पोपट' करे. मूंगफली कहां हे पोपट? क्योंके मूंगफली देवेके पहले 'पोपट' वासु बुलवावें. अहं

ब्रह्मास्मि की तरह वो खुदकु पोपट नहीं समझे. वो अपनेकु पोपट समझे के ये जो प्राणी हे, वो मूंगफली देवेके पहले 'पोपट - पोपट' 'मिट्ठु - मिट्ठु' कर रह्यो हे तो जब मूंगफली चईती होय तो 'पोपट - मिट्ठु' करो तो मूंगफली आयेगी. वो अपनेकु पोपट - मिट्ठु समझ रह्यो हे. ऑनोमोटोपोईया.

अभी यू - ट्युब्में बहोत अच्छी क्लिप् सबकु दिखाई थी. कुत्ताकु 'आई लव् यू' बोलनो बिस्कुट् खिलाके सिखा दियो. जब भी 'आई लव् यू' बोलो तो एक बखत जीभ निकालके दिखा दे के भई बिस्कुट तो लाओ 'आई लव् यू' केह रह्यो हूं. वाके लिये 'आई लव् यू'को मतलब न तो 'आई'को मतलब कुत्ता हे, न 'लव्'को मतलब स्नेह हे, न 'यू'को मतलब तुम हे. वाको मतलब ये हे के बिस्कुट लाओ. वाकी अन्डर्-स्टॅन्डिंग् ऑनोमोटोपोईयाकी तरेह हे. क्योंके तुम बिस्कुट खवाओ वाके पहले आई लव् यू, आई लव् यू करो तो कुत्ता बिचारो कब तक नहीं करेगो? वो प्रयास करके आई लव यू बोले हे. वाको मतलब? कुत्ता क्या समझके 'आई लव् यू' बोलतो होयगो! समझके बोले के बिना समझके बोले? फिर मैंने ध्यानसु वा क्लिप्कु देख्यो तब पता चल्यो के जब 'आई लव् यू' बोले तो एक बखत जीभ फिरा दे. वाकु तो बिस्कुट चईये यदि वासु 'आई लव् यू' बुलवा रहे हो तो! याकु पावलॉव 'कन्डिशनिंग् रिफ्लॅक्ट्' कहे हे.

सारो ऑनोमोटोपोईयाको जो शब्द हे वचन हे वो प्राईमरी हे, मानें सब्-ह्युमन् स्पीशिस्में भी. वा तरहसु लिंग्विस्टिक् डॅवलप् भयी हे. अमरीकामें तो ऐसी बर्डस् हें जो मोटर् गुजर जाये तो ऑनोमोटोपोईयासु वाको साउन्ड् रिप्रोड्युस् कर दे. ट्रेन् गुजरे तो ट्रेन्को साउन्ड् रिप्रोड्युस् कर दे. कौआ बोले तो वो कौआको साउन्ड रिप्रोड्युस् कर दे. हमारो पोपट, बिल्लीको साउन्ड् म्याउं - म्याउं रिप्रोड्युस् करतो

थो. मैंने कही के "मूरख हे कहीं सचमुचमें म्याऊं आ गई तो खा जायेगी!" लिंग्विस्टिक्में ये बहोत प्रॉब्लेमॅटिक् इश्यु रह्यो भयो हे. क्योंके फिलॉसॉफी ऑनोमोटोपोईयाकु इतनो प्राधान्य नहीं दे हे.

अपने यहां भी रसशास्त्रने ऑनोमोटोपोईयाको प्राधान्य दियो हे. जैसे महाप्रभुजी तृतीयस्कन्धकी सुबोधिनीमें आज्ञा करे हें के वराह भगवान्ने 'घर्घर' कियो. वहां महाप्रभुजीने बहोत फनी अर्थ बतायो हे. वराह भगवान् घर्घर क्यों बोले? क्योंके उनकु मनुष्यके लिये घर बनानो थो. वालिये ऑनोमोटोपोईया बराबर भगवान्ने प्रकट कियो. अब ये मज़ाकको ऍक्स्प्लेनेशन् हे के सीरियस् हे ये तो पता नहीं के वा बखत महाप्रभुजीको क्या मूड हतो! कुछ शब्द संकेतसु जो ऑनोमोटोपोईयाके नहीं हें जैसे 'ब्रह्म' शब्द कभी अपनेकु कोई साउन्ड ऐसो दुनियामें सुनाई नहीं दे हे के जो 'ब्रह्म ब्रह्म' करतो होय. भ्रम तो भ्रमरामें सुनाई देतो. 'ब्रह्म ब्रह्म' साउन्ड होनो तो ऑनोमोटोपोईया नहीं हो सके हे. करके वॅरिफिकेशन् संभव नहीं हे.

(अवाच्य ब्रह्म अज्ञानमूलक नहीं हे)

याके लिये रसॅल् और लॉजिस्टिक् फिलॉसॉफीवाले क्या कहेंगे? मीनिंग् मॅन्टल् कन्स्ट्रक्शन् हे, क्योंके याको इम्पीरिकल् वॅरिफिकेशन् होनो संभव नहीं हे.

वोही बात बुद्ध भगवान्ने बहोत पहले कही हती. जिन शब्दन्कु तुम वापर रहे हो, उन शब्दन्की अर्थशक्ति तुम कहांसु ग्रहण कर रहे हो? कहां तुमने ये समज्यो के या शब्दको अर्थ ये हे. जब तुम समझ नहीं पा रहे हो तो तुमने अपने मनमें कोई कल्पना खड़ी करी हे और वा कल्पनाकु ही तुम बोल रहे हो. वाकु नहीं बोल रहे हो. एट् दि सेम् टाईम् तत्त्वकु नहीं बोल रहे हो. तत्त्वकु बोलवे जाओगे तो वामें तत्त्वको चित्रण नहीं आ रह्यो हे, तुम्हारे

माईन्ड्की इमेज्को चित्रण आ रह्यो हे और तुम्हारे माईन्ड्में कोई इमेज् रिटेन् क्यों हो रही हे? वो तुम्हारे इन्टरेस्ट्के अनुसार. इन्टरेस्ट् क्यों पैदा भयो हे? तुम्हारे सुख-दुःखके अनुसार. सुख-दुःख तुमकु क्यों हे? तुम्हारे अज्ञानके अनुसार. याके लिये सर्वमूल अज्ञान हे. अपन् समझें के सर्वमूल ज्ञान हे. शब्दकु बोलवेमें पर बुद्ध भगवान्को ऑपोज़िट् स्टॅन्ड् हे के सारी बात जो तुम केह रहे हो वाके मूलमें अज्ञान ही बोल रहे हो, ज्ञानकु बोल्यो नहीं जा सके. क्योंके भगवान् बुद्धके वहां एक बहोत अच्छी बात बताई गई हे के जा दिन भगवान्कु बोधि प्राप्त भयी वा दिन भगवान् कुछ बोले नहीं.

कुमारिल भट्टने वाकी मज़ाक उड़ाई. कुमारिल भट्ट केह रहे हें के ''भगवान् बुद्ध बोले नहीं और सबने सुन्यो ऐसो अशब्दज्ञान सबकु पैदा भयो तो भूत बोल्यो, प्रेत बोल्यो, पिशाच बोल्यो? अब कौन बोल्यो वाको निर्णय हमकु नहीं हो रह्यो हे याके लिये बौद्धमतको प्रामाण्य नहीं हे'' फिलॉसॉफीके झगड़ा कितने गम्भीर और कितने मज़ाकके लेवल्पे भी चले जाये हे, ये अपन् देख सके हें. बोधिवृक्षके नीचे भूत प्रेत पिशाच बोल्यो, वो कौन बोल्यो वो निश्चय कैसे करनो? क्योंके बुद्ध भगवान् तो बोले नहीं. **''अवचनम् बुद्धवचनम् इति''** (लंकावतारसूत्र.६) अवचनसु उनने बोल्यो.

शंकराचार्यजीने भी वो उदाहरण प्रस्तुत कियो हे. बाष्कलिने जाके तीन बखत पूछ्यो के ''महाराज ब्रह्मको ज्ञान दो, ब्रह्मको ज्ञान दो, ब्रह्मको ज्ञान दो'' तीन बखत वो बोले नहीं और चौथी बखत उनकु गुस्सा आ गयो के तीन बखत बोल्यो पर तू समझ्यो नहीं तो मैं क्या करूं? शिष्यने कह्यो ''आप कहां बोले? तब बाष्कलिने कही ''बोलने लायक हे नहीं. बोलेंगे तो कुछ लफड़ा होयगो.'' या तरीकेको अवाच्य ब्रह्म शांकरनने लियो हे. वो तो बुद्धसु लियो हे. हर सूरतमें अपन् वो देख सकें हें.

(अवैदिक अपोह्यवादकी वैदिक ब्रह्मवादरूपता)

बुद्धने अपनो नहीं लियो हे पर बुद्धने उपनिषद्सु ये बात ली हे. वो मैं एक आपकु चमत्कारिक ढंगसु बतानो चाह रह्यो हूं. बुद्ध कैसे केह रहे हें! मज्झिमनिकाय लानेकी बहोत इच्छा हती पर धांधलमें मज्झिमनिकाय ला नहीं सक्यो. मैं दीघनिकायपाली लायो हूं. जो उनको सूत्र हे. उनके यहां 'सूत्र'को मतलब **''अल्पाक्षरम् असंदिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्, अस्तोभम् अनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः''** नहीं हे. उनके यहां 'सूत्र'को मतलब अनल्पाक्षरम् हे. वा तरीकेके उनके यहां सूत्र हें. उनके यहांके सूत्र अपने यहांके सूत्रनसु बिल्कुल अपोज़िट् हें. दीघनिकाय सूत्रमें एक ब्रह्मजालसूत्र हे. वामें भगवान् बुद्धने सिग्निफिकॅन्ट् बात बताई हे. वा बखत फिलॉसॉफीके बयासी मत हतें.

अपन् अपनी क्षुद्रतामें षड्दर्शनकी गणना करें, पर बुद्ध भगवान् वा बखत बयासी मत गिना रहे हें के प्रिवेलिङ्ग बयासी मत हें. वे बयासी मतनकु ब्रह्मजालसूत्रमें उनने मिथ्यादृष्टि कही हे. ये मिथ्यादृष्टिको जो संकलन कियो वाकु ब्रह्मजालसूत्र क्यों केह रहे हें? ये एक महान चमत्कार हे. वो भी मैं आपकु बताऊंगो के क्यों केह रहे हें? वामें अपने उपनिषद्की दृष्टिकु मिथ्यादृष्टि कैसे हे वो गिना रहे हें. वो मूलभाषा तो बहोत ही मीठी हे. पर वो अपनेकु समझमें नहीं आयेगी. **''होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन अयं लोको संवट्टति...चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति''** (दीघनिकायपाली.ब्रह्मजालसुत्त. १।३९)अपनेकु कुछ समझमें नहीं आयेगो. वाकेलिये वाको हिन्दी अनुवाद खास करके मैं लेके आयो हूं. सुनवे लायक हे. **''भिक्षुओं! बहुत काल बीतने पर एक समय ऐसा आता हे के जब कभी कदाचित् इस लोकका संवर्त (प्रलय) हो जाता हे''** (वहीं)

भगवान् बुद्ध वोही केह रहे हें. "लोकके प्रलीन हो जाने पर अभास्वरब्रह्मलोक" सुबालोपनिषद् याद करो. **"सो अन्ते वैश्वानरो भूत्वा सन्दग्ध्वा सर्वाणि भूतानि, पृथिवी अप्सु प्रलीयते, आपः तेजसि प्रलीयन्ते, तेजो वायौ विलीयते, वायुः आकाशे, आकाशम् इन्द्रियेषु, इन्द्रियाणि तन्मात्रेषु, तन्मात्राणि भूतादौ विलीयन्ते, भूतादिः महति, महान् अव्यक्ते, अव्यक्तम् अक्षरे, अक्षरं तमसि, तमः परे देवे एकीभवति. परस्ताद् न सद् न असद् न सदसद् इत्येतद् निर्वाणानुशासनम् इति वेदानुशासनम् इति"** (सुबा.उप.२) व्यक्त अव्यक्तमें लीन होवे हे, अव्यक्त तममें लीन होवे हे और तम **"तमः परस्यां देवतायां लीयते"** जाकु अपने यहां 'योगनिद्रा' 'योगसमाधि' और 'गूढ़ तमः' कह्यो हे. **"न असद् आसीद् नो सद् आसीत् ...तमः आसीत् तमसा गूढम् अग्रे!"** (ऋक्संहि.१०।११।१२९।१-३) वो जो 'तम' कह्यो हे वाकु वो 'तम' नहीं केहके अन्तर कितनो कर रहे हें **"आभास्वरब्रह्मलोक"** मानें जामें भास्वरता नहीं हे. कुछ भी दिखलाई नहीं दे रह्यो हे. कुछ भी अनुभवमें नहीं आ रह्यो हे.

जैसे उपनिषद् कहे हे **"...भूतादिः महति, महान् अव्यक्ते, अव्यक्तम् अक्षरे, अक्षरं तमसि, तमः परे देवे एकी भवति...** (सुबा.उप.२) वाकु बुद्ध कैसे कहे हें! **"समुद्रविष्टाश्च भवन्ति सर्वा एकाश्रया एकमहाजलाश्च,... परीत्तसत्त्वार्थसदोषभोग्या भवन्ति बुद्धत्वम् असंप्रविष्टाः. बुद्धत्वविष्टाश्च भवन्ति सर्वे एकाश्रया एकमहावबोधाः, मिश्रैककार्याश्च महोपभोग्याः सदा महासत्त्वगणस्य ते हि"** (महायानसूत्रालंकार.बोध्यधिकार.९-।८३-८५)

महाप्रभुजी वाकु कैसे केह रहे हें! **"ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचिद् वस्तुतो ब्रह्म सर्वं हि व्यवहारस्तु लोकतः"** (पत्रा.३) और बुद्ध कैसे कहे हें **"लोकके प्रलीन हो जाने पर आभास्वर ब्रह्मलोकके निवासियों(देवताओं)की स्थिति बनी रेहती हे."**(वहीं) अपने यहां भी ये बात कही गई हे के वा बखत सारे देवतायें,

सारे जीव, सारे प्राणी, सारी शक्तियें ब्रह्ममें रेहवे हें पर distinguishable नहीं रहे हें. क्योंके सब तमोलीन हो जा रही हें. **"अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति अहरागमे रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैव अव्यक्तसंज्ञके"** (भग.गीता.८।१८) ब्रह्मकी रात्रि ब्रह्मलोक हे वामें सब देवताएं वहां रहे हें. पर indistinguishable होवे हें. जो बात महाप्रभुजी भी केह रहे हें. महाप्रभुजी अपनी नहीं केह रहे हें, वेद पुराण गीतादि के आधार पर केह रहे हें. बुद्ध केह रहे हें **"आभास्वरलोकमें देवताओंकी स्थिति बनी रहती हैं. वे वहां मनोमय, समाधिजन्य प्रीति(प्रमोद)में मुदित ...अपनी स्थिति बनाये रखते हैं"**(वहीं) उनकी कोई इन्द्रिय और अर्थ तो नहीं हें पर उनके मन बचे रेह जायें. **"स मनश्चक्रे" "स ईक्षाञ्चक्रे"** (प्रश्नो.उप.६।३) *मनोमय समाधिमें लीन रेहते हें.* **"...मुदित रहनेवाले प्रभावान् अंतरिक्षमें ही इधर-उधर विचरण करते, मनोरम वस्त्र एवं आभूषणोंसे युक्त रहते हुए चिरकाल तक अपनी स्थिति बनाये रखते हैं."**(वहीं) जो ब्रह्माजीकु सर्गके पहले नारायणने अपने स्वरूपमें दिखाई हे, सृष्टिके पहले तमकालीनमें. भागवतमें ये ही सब वर्णन हे. अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण किये भये, कोई भी ऐसो नहीं हे के जो विष्णुरूप नहीं होय. सेवक भी विष्णुरूप हे, सेव्य भी विष्णुरूप हें, सेवोपकरण भी सब विष्णुरूप हें.

(अमेयब्रह्मके बारेमें बुद्धमत)

बिल्कुल वोही बात यहां आ रही हे. **"भिक्षुओं! फिर धीरे-धीरे एक समय ऐसा भी आता हे जब इस लोकका विवर्त(पूरुत्पाद) होता हे."**(दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४०) 'विवर्त'को मतलब शंकराचार्य-जीको विवर्त नहीं. बौद्धनूके यहां 'विवर्त'को मतलब उत्पाद हे. विशेषेण वर्तते इति 'विवर्त'. विवर्त शांकर मतमें यहांसु आयो हे पर अर्थ बदलके आयो हे. 'विवर्त'को मतलब वहां भ्रम हो गयो हे. बौद्धके 'विवर्त'को मतलब भ्रम नहीं होके उत्पत्ति हे.

"इस पुनरुत्पादके(सृष्टि) प्रारम्भमें एक शून्य ब्रह्मविमान प्रादुर्भूत

होता हे.''(वहीं) एक ब्रह्मविमान प्रकट होवे. ब्रह्म कहांसु आ रह्यो हे? वो ब्रह्म कैसो हे? शून्य ब्रह्म हे. **''तब कोई देवता अपने आयुःक्षय या पुण्यक्षय के कारण उस(उपर्युक्त) आभास्वर कायसे च्युत होकर इस ब्रह्मविमानमें उत्पन्न होता है.''**(वहीं) ब्रह्मविमान जाकु अपने यहां 'ब्रह्माण्ड' कह्यो गयो हे. तममें जो सारो लीन हतो, वामें अचानक एक ब्रह्माण्ड उत्पन्न भयो. वा ब्रह्माण्डमें पुरुषने **''तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्''**(तैत्ति.उप.२।६) अनुप्रवेश करके वो ब्रह्माण्डमें जैसे अण्डामेंसु मुर्गीको बच्चा फूटके निकले हे, ऐसे वा अण्डामेंसु नारायण फूटके निकल्यो और सारी सृष्टिकु धारण कियो और विसर्गके लेवल्पे वो कैसे ब्रह्माण्डसु फूटके निकले हे; जो आजकी लेटेस्ट् बिग्-बॅन्ग् थियरीके पॅरलल् चलती बात हे.

वो एक बिग्-बॅन्ग् भयो हे. जाकु साइन्टिस्ट् लोग ॲब्सॉल्यूट् सिन्युलिरिटी कहेवे हें. 'ॲब्सॉल्यूट् सिन्युलिरिटी' वाको प्रॉपर् शब्द हे. वा ॲब्सॉल्यूट् सिन्युलिरिटीमेंसु अचानक मल्टीप्लिसिटीको एक्स्प्लोज़न् भयो हे. **''एकोहं बहु स्याम्''** (छान्दो.उप.६।२।३) वालो. बिग्-बॅन्ग्को चित्र भी देखोगे तो ॲब्सॉल्यूट् सिन्युलिरिटीसु मल्टीप्लिसिटीको एक्स्प्लोज़न् कैसे भयो वो वहां दिखायो गयो हे.

वोही बात भगवान् बुद्ध भी केह रहे हें. वा ब्रह्माण्डकु अण्डा नहीं केहके 'विमान' केह रहे हें. विमान क्यों केह रहे हें ध्यानसु समझो. अभी तक वो माप्यो नहीं जा सकतो थो, याकु माप्यो जा सके हे, करके भागवत वाकु 'सर्ग' कहे हे. सर्गके बाद विसर्ग ये हे. वो विसर्ग वा ब्रह्मविमानमें उत्पन्न होवे हे. **''...यहां(ब्रह्मविमानमें) भी वो अपनी मनोमय, समाधिजन्य प्रीतिसे मुदित रहनेवाली स्थिति बनाये रखता है.''**(वहीं) ये अपन् जाकु ब्रह्माजी समझ रहे हें के वा ब्रह्माण्डमेंसु नारायणकी नाभिकमलमेंसु एक ब्रह्माजी पैदा भये. वाके पॅरलल् जाती बात हे. **''परन्तु वह वहां बहुत समय तक एकाकी रहते-रहते उद्विग्न हो उठता हे तब उसे भय होने लगता**

है. (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४१) **''स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते. स द्वितीयम् ऐच्छत्''** (बृह.उप.१।४।३) देखो बृहदारण्यक उपनिषद् कहे हे के **''सो अबिभेत् तस्माद् एकाकी बिभेति...यद् मदन्यद् न अस्ति कस्मान्नु बिभेमि इति, ततएव अस्य भयं वीयाय, कस्माद् हि अभेष्यत्? द्वितीयाद् वै भयं भवति''** (बृह.उप.१।४।३) अपनी एकाकितामें भय लग्यो. अरमण भयो. जैसे ही अरमण भयो, उद्विग्न होवे हे वाकु भय होने लगे हे के **''मेरे इस ब्रह्मविमानमें कोई दूसरा प्राणी आकर आधिपत्य न कर बैठे!''**(वहीं)

उपनिषद्ने या बातको खुलासा नहीं कियो हे के भय कायको भयो? पर वहां ये खुलासा कियो के **''यद् मदन्यद् न अस्ति कस्मान्नु बिभेमि इति...द्वितीयाद् वै भयं भवति''** (वहीं) मैं कौनसु डरूं जब मेरे अलावा कोई हे ही नहीं! वा भयकु और थोड़ो ॲक्स्प्लेन् करके भगवान् बुद्ध केह रहे हें के **''अभी तो मैं यहां अकेला हूं पर कोई दूसरा प्राणी आकर आधिपत्य न कर बैठे''** यदि कर ले तो मेरो क्या होयगो? जब उनकु ये भय लग्यो तब अविद्या काम कर गई केह रहे हें. वो अविद्या अपने यहां ब्रह्माजीमें भी काम करी हे. वो अविद्या जब काम करी,**''...तभी कुछ दूसरे प्राणी (देवता) भी आभास्वर लोकसे च्युत होकर इस ब्रह्मविमानमें उस देवताके साथ आकर रहने लगते हैं. वे भी वहां उसीकी तरह मनोमय...अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हुए तथा मनोरम वस्त्र एवम् आभूषणोंसे अलंकृत रहते हुए चिरकाल तक वास करते हैं.''**(वहीं)

''भिक्षुओं! उस ब्रह्मविमानमें जो प्राणी(देवता) सर्वप्रथम आया था उसे(कभी) यह विचार होता है कि मैं ब्रह्मा हूं, महाब्रह्मा, सर्वजेता(अभिभू) हूं'' (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४२). अन्तर कितनो पड़्यो हे? उपनिषद् या ठिकाने 'अभिभू' नहीं केहके 'आभू' शब्द केह रह्यो हे **''अर्वाक देवाः अस्य विसर्जनेन अथ को वेद यत आबभुव. न असद् आसीद् नो सद् आसीद् तदानीं, न आसीद् रजो**

नो व्योमा परो यः. किमावरीव कुहकस्य शर्मन् अम्भः किम् आसीद् गहनं गभीरम्. न मृत्युः आसीद् अमृतं न तर्हि न रात्र्यां अहनं आसीत् प्रकेतः, आनीद् अवातं स्वधया तदेकं तस्माद् ह अन्यन्न परः किंचन आस. तम आसीत् तमसा गूढम् अग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्वम् इदं तुच्छ्येन आभु अपिहितं यदासीत्'' (ऋक्.संहि.११।१२९।१-३). उनके वहां अभिभू सबसु पेहले पैदा भयो. आसमन्तात् भवति इति 'आभू', ब्रह्माण्डविग्रह नारायण. वो(बुद्ध) वा आभूकु 'अभिभू' कहे हे. उनके वहां अभिभू सबसु पहले पैदा भयो. ब्रह्मांडविग्रह नारायणकु उपनिषद् 'आभू' कहे हे. बुद्ध वाकु 'अभिभू' केह रहे हें. मानें अपराजित, सर्वदृष्टा, स्वयंवशवर्ती-स्वतन्त्र, ईश्वर, सबको कर्ता, निर्माता, दूसरेनूकु वशमें रखवेवालो. ये सायकॉलॉजी ब्रह्माजीकी अपने यहां भी बताई गई हे. **''मैंने ही वर्तमान तथा भविष्य में होनेवाले प्राणियोंकी सृष्टि की हे. वो कैसे? वह ऐसे कि मेरे ही मनमें ऐसा संकल्प हुआ कि दूसरे जीव मेरी ही तरह यहां अस्तित्वमें आयें.''**(वहीं) **''स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते, स द्वितीयम् ऐच्छत्''** (बृह.उप.१।४।४) जब वाने या तरीकेको संकल्प कियो, संकल्पपूर्विका सृष्टिकी बात आ रही हे. अपने यहां भी सत्यसंकल्प और सर्वभवनसामर्थ्य ये दो ही फॅक्टर् माने हें. उनके वहां संकल्पपूर्विका सृष्टिमें संकल्प भयो के **''दूसरे भी जीव मेरी ही तरह यहां अस्तित्वमें आयें तो मेरे उस मन:प्रणिधानका (शुभसंकल्प/ कॉन्सन्ट्रेशन्) ही यह प्रभाव था कि इन प्राणियोंका यह अस्तित्व हो पाया. अन्य प्राणी वहां बादमें उत्पन्न हुए तो उनके मनमें भी कभी यह विचार उठा कि सर्वप्रथम उत्पन्न तो ब्रह्मा, महाब्रह्मा हैं, हम सभी इन महाब्रह्माद्वारा उत्पन्न किये हुए है. कारण कि हमने अपने उत्पन्न होते समय इनको पहले देखा, हम लोग तो इनके बाद उत्पन्न हुए हैं''**(वहीं) वो (ब्रह्मा) यहां बादमें आये हे, तो शायद हमारे कर्ता ये ही होंयगे! पर न ये उनके कर्ता हे और न वो इनके कार्य हे. सब प्रतीत्यसमुत्पादसु ब्रह्मविमानमें पैदा भये हें.

अब देखो, अपनी तोप अपनेपे ही तानी जा रही हे. अभिन्ननिमित्तोपादानकी विधिसु पैदा नहीं होके प्रतीत्यसमुत्पादके ढंगसु आभास्वरलोकमेंसु पैदा भये हें. मल्टीप्लिसिटीको सिद्धान्त लाके देवतान्की जो मल्टीप्लिसिटी हे मानें **''एवमेव एतस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति''** (बृह.उप.२।१।२०) वा तरेहसु व्युच्चरण वहां बतायो हे, यहां वो पतन बतायो हे. व्युच्चरण ग्राफिकली अप्-वर्ड और पतन डाउन्-वर्ड हे. पर अपनी तोप अपनेपे तानी जा रही हे. क्योंके शून्यकु अवाच्य सिद्ध करनो हे. अवाच्यता यहांसु आ रही हे. पर ब्रह्म तो स्वीकार्य हे ही. वाकु 'शून्यब्रह्म' भी केह रहे हें. 'ब्रह्मविमान' भी केह रहे हें. ब्रह्मके तीन लेवल् हें. स्वरूपकोटि कारणकोटि और कार्यकोटि. वामेंसु ये सारो विस्तार पैदा भयो हे.

अपन् देख सके हें के अमेयब्रह्मवाद अपोह्यब्रह्मवाद कु बुद्धने कैसे तरेहसु उपनिषद्के बाद प्रोजॅक्शन् कियो हे. वो बात ठीक हे के उनकु अपने मतके अनुकूल बनावेके लिये कियो हे पर वो थियरी ब्रह्मवादकी स्वीकार्य तो हे. अन्तर पड़यो हे तो कितनोसो पड़यो हे जहां अपन् कार्य-कारणभावके रिलेशन्में, तादात्म्य और अभिन्ननिमित्तोपादानता मान रहे हें, वहां वो प्रतीत्यसमुत्पाद मान रहे हें. क्योंके बुद्धभगवान्को सिद्धान्त ये हे के जो प्रतीत्यसमुत्पत्तिकु जाने हे वो बुद्धकु जाने हे. जो बुद्धकु जाने हे वो प्रतीत्यसमुत्पत्तिकु जाने हे. प्रतीत्यसमुत्पत्तिकु जाने हे वो शून्यकु जाने हे. शून्यकु जाने हे वो बुद्धकु जाने हे. इक्वेशन् कैसे हो रह्यो हे, प्रतीत्यसमुत्पत्ति = शून्य = बुद्ध = प्रतीत्यसमुत्पत्ति. तादात्म्य आयो के नहीं? यो नहीं आयो तो द्राविड़ प्राणायामसु आयो हे. प्रतीत्यसमुत्पत्ति मानें हर चीजको एक्सीडेन्ट्ली एकत्रित हो जानो. मल्टीपल् फिनोमिनाको अचानक एकत्रित होके ऐसो झांसा देनो. जैसे कॅलिडोस्कोप्में एक डिज़ाईन् बने. वामें मल्टीपल् फॅक्टर्ससु डिज़ाईन्को झांसा बन जाये हे. वास्तवमें वो डिज़ाईन् हे

नहीं पर वाके मल्टीपल् फॅक्टर्स हें. कांचकी चूड़ीनूके टुकड़ा हें. पीछे एक मिल्की कांच हे. या बाजू तीन मिरर् हें. वापे देखवेको व्युफाइन्डर् हे. ऐसे मल्टीपल् फॅक्टर्स मिलके एक डिज़ाईनूको झांसा जैसो पैदा करे हे वाकु 'प्रतीत्यसमुत्पाद' कह्यो जाय. ऐसे ही ये मल्टीपल् फॅक्टर्ससु एक प्रतीत्यउत्पत्तिसमुत्पाद हे और **''यः प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यति स धर्मं पश्यति यो वा धर्मं पश्यति सो बुद्धं पश्यति''** (बोधिचर्यावतार.पं.) ऐसे भगवान् बुद्धको केहनो हे. सो तादात्म्यवाद वैसे कॅन्सल् कर दियो हे. प्रतीत्यसमुत्पाद = धर्म हे. धर्म=बुद्ध हे और बुद्ध = शून्य हे. एक तरहसु यों तादात्म्यवादकी ही तो बात करे हें के तीनों होते भये भी **''तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा, आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयम्''** (वहीं) बात तो पाछी वोही आयी के ''जिस जगहसे ले चला था राहवर हम वहीं आये हें फिर घूमके. आ गया सीमा जाने क्या खयाल ताकमें रख दी सुराही चूमके''. ये कोई खयालको नशा हे जो चढ़ गयो हे जामें तुम सुराहीकी मयके जितनो ही नशीलो हे. उनको खयाल बंध गयो हे. अब अभिन्ननिमित्तोपादान और अविकृतपरिणाम सच्चो नहीं हे. क्योंके अभिन्ननिमित्तोपादान और अविकृतपरिणाम के कारण कोई चीजकी नित्यता सिद्ध हो जायेगी. नित्यता सिद्ध हो जायेगी तो हर वस्तु क्षणभंगुर हे ये सिद्ध नहीं होयगी. अब क्षणभंगुरता लानी हे, वेदकु अपोज़् करवेके लिये, वाकेलिये तोप कौनसी चईये? वेदकी ही सृष्टिप्रक्रिया. बुद्धने अवैदिकी सृष्टिप्रक्रिया नहीं बताई हे. यहां जाके वो पूरी बात केह रहे हें. **''भिक्षुओं! जो प्राणी सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ वह अपेक्षाकृत दीर्घायु, अधिक सुंदर एवम् अधिक शक्तिसम्पन्न था. जो प्राणी बादमें उत्पन्न हुए, वे उसकी अपेक्षा अल्पायु, कम सुंदर और अल्पशक्ति सम्पन्न थे.''**(दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४३) उन्होंने मान लियो के तू देव हे और हम भक्त हें.

अपनेकु लगे के अपने देवतानूकी मजाक उड़ावेके लिये ये

बात कही गई हे. अपनो उपनिषद् कहे हे के **''..न स वेद यथा पशुरेवँ स देवानां, तस्माद् एषां तत् न प्रियं यदेतन् मनुष्या विद्युः''** (बृह.उप.१।४।१०) मनुष्य देवतानूके पशु हें. याकेलिये ब्रह्मज्ञान होवे वो देवतानूकु पसन्द नहीं आवे. वही बात उपनिषद् भी केह रहे हे. ये देवतायें क्योंके कमजोर हतें तो इनने वा ब्रह्माकु प्रजापति मान लियो. अब अपनी तो चल नहीं रही हे तो जाको डण्डा चल रह्यो हे; जिसकी लाठी उसकी भैंस. पर हते सब प्रतीत्यसमुत्पन्न. कोई कोईमेंसु पैदा नहीं भयो हे. ऐसो हे अमेयब्रह्मवाद, अपोह्यब्रह्मवाद याको बुद्ध भगवानूने कितनी खूबसूरतीसु प्रतिपादन कियो हे. ये अपन् देख सके हें.

वाके बाद सारे उपनिषद्की जो-जो सृष्टि उत्पन्नकी अनेकधा प्रक्रियायें हें जाकु महाप्रभुजी केह रहे हें **''सृष्टेः उक्ता ह्यनेकधा''** (त.दी.नि.४०) वो अनेक सृष्टिकी अनेक क्रियानूकु उपनिषदनूसु आरण्यकसु बुद्ध भगवानूने भाषामें अनुवाद करके बताई हें. वामें कहे हें **''खिड्डोपदोसिका नाम देवा''** (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४५) मानें क्रीडा करवेवाले देवता. ये क्रीडारूपा सृष्टि हे. तो खिड्डोपदोसिका भी अपन् समझें के बुद्ध मज़ाक उड़ावेके लिये केह रहे हें. नहीं नहीं, अपने यहां कह्यो गयो हे. **''स 'भाण' अकरोत् सैव वाग् अभवत् व्याहरत्''** (बृह.उप.१।२।४) जो बड़ो स्वरूप पैदा भयो वाकु खावे गयो, तो बड़ेने कही के या छोटेकु महामत्स्यन्यायसु खा जाओ. वो एक एस्ट्रोनॉमिकल् सिद्धान्त हे के जो भी बड़ी गॅलेक्सी हे वो छोटी गॅलेक्सीकु खा जाये, जासु ब्लॅक्होल् पैदा होवे हे. उपनिषद्में आवे हे के बड़ो छोटेकु खावे गयो तो वाने भाण कियो के ''अरे भई, खा मत जा.'' बड़ेने कही के ''खा नहीं जाऊं तो क्या करूं?'' वाने कही के ''भई, एक काम कर के तू और मैं एक हें ऐसे समझ ले तो तेरेकु खावेको और मेरेकु खवावेको दर्द नहीं होयगो. **''अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात्, अन्नाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते''** (तैत्ति.उप.३।१)

अब अपन् अन्नके बारेमें सोचें के **''अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात्''** तो अपन् ये दाल-भात ढोकला-गांठिया अन्नम् समझें, **''अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात्''** वहां ये दाल-भात ढोकला कु **''अन्नम् इति व्यजानात्''** नहीं कियो हे. वहां या सिद्धान्तकु बतायो हे के जा बखत सृष्टि पैदा भयी हे तो वामें कोई चीज खाद्य पैदा भयी हे, कोई खादक पैदा भयी हे. जैसे अपन् समझें के जो बड़ी गॅलेक्सी हे वो छोटेकु खा जाती होवे हे. वासु कोई चीज खवावेवाली पैदा हो रही हे. वाकेलिये वो कहे हे के **''अहम् अन्नम्! अहम् अन्नम्!! अहम् अन्नम्!!! अहम् अन्नादो! अहम् अन्नादो!! अहम् अन्नादो!!!... अहम् अन्नम् अदन्तं मां अद्मि. अहं विश्वं भुवनम् अभ्यभवाम. सुवर्णज्योती: य: एवं वेद इत्युपनिषत्''** (तैत्ति.उप.३।१०।६) तुमकु जा दिन ये अनुभव होयगो के अन्न भी तुम हो और अन्नाद भी तुम हो तो गोल्डन् लाईट्र तुम्हारे दिमागमें पैदा हो जायेगी. अपनो तैत्तिरीयोपनिषद् केह रह्यो हे. **''अहं श्लोककृद्! अहं श्लोककृद्!! अहं श्लोककृत्!!! अहम् अस्मि प्रथमजा ऋता अस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य ना३ भायि यो मा ददाति स इदेव मा३ वा: अहम् अन्नम् अदन्तं मा अद्मि. अहं विश्वं भुवनम् अभ्यभवाम् सुवर्नज्योती: य: एवं वेद इत्युपनिषत्''** (तैत्ति.३।१०।६) मैं अन्न हूं और **''अन्नम् अदन्तं माम् अद्मि''**

वो खेद करवेवालें देवता सृष्टि बनें हें. अपन् समझ रहे हें के अपनी मज़ाक उड़ा रहे हें पर नहीं नहीं अपन्ने ये बात पहले गोल्डन् ट्रूथ् करके कही हे. इनने तो पीछेसु कही. उपनिषद्ने बात कही हे और जर्मनीमें और यहां इन सबन्कु मूलमें अपनेसु द्वेष होवे हे करके ये रिसर्च ऐसी करवा रहे हें के बुद्धकी कॉपी करवेके लिये उपनिषद् बहोत बादमें पैदा कर दिये हे. पहले बुद्ध केह गये, बादमें ब्राह्मणन्ने खुराफातमें बुद्धके दर्शनकी कॉपी करवेके लिये उपनिषद् रचे. अरे भई, भगवान्की दी भयी अक्कल तो वापरो! यदि ऐसो हे तो बुद्ध याकु ब्रह्मजालसूत्र क्यों केह रहे हें? जा बखत आनन्दने

उनसु पूछी के महाराज ये जो आपने उपदेश दियो हे तो या उपदेशको नाम क्या हे? कुछ नाम तो बताओ!

आनन्द, उनको प्रधान शिष्य जैसे अपने महाप्रभुजीको दामोदरदास. तो वाकु बुद्ध भगवान्ने एक बड़ी मजेदार बात बताई. **''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! को नाम अयं, भन्ते धम्मपरियायो'' ''तस्मातिह त्वं, आनन्द, इमं धम्मपरियायं 'अत्थजालं'ति पि नं धारेहि, 'धम्मजालं'ति पि नं धारेहि, 'ब्रह्मजालं'ति पि नं धारेहि, 'दिट्ठिजालं'ति पि नं धारेहि, 'अनुत्तरो सङ्गामविजयो'ति पि नं धारेहि''ति''** (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसुत्त-१४८) अरे, गज़बकी बात कही हे भगवान् आपने! 'अब्भुतं' मानें अद्भुतम्. भगवान् बुद्धने बड़ी शान्तिसु कही. **''इमं धम्मपरियायं''** ये मेरे धर्मके उपदेशको 'अत्थजालम्' अर्थजाल समझ जा. मैंने एक अवाच्य अर्थको जाला बुन्यो हे. जो बोल्यो नहीं जा सके. **''धम्मजालम्''** धर्मजाल याकु समझ ले. **''बम्मजालम्''** ब्रह्मजाल समझ ले. **''दिट्ठिजालम्''** खोटी-खोटी दृष्टिन्को जाल हे. खोटी दृष्टिको जाल हे तो बुद्धकी दृष्टि तो नहीं हे ना ये! बुद्ध जब वाकु ये बात केह रहे हें के मेरे जमानामें प्रिवॅलिंग् ओपिनियन् ये हें. तो बात क्या हो गई के उपनिषद् पहले हें के ये पहले हें? करो ना रिसर्च!

(सृष्टिप्रक्रिया वेदकी और बुद्धकी दृष्टिसु)

उपनिषद्की और बुद्धके इन वचनन्की पॅराफ्रेज़िंग् करो. दीघनिकायके पाथिकसुत्तमें ईश्वरकृत ब्रह्माकृत खिड्डोपदोसिक देवकृत मनोपदेसिक देवकृत अनेकसृष्टिके प्रकार बताये और हर प्रकारके अन्तमें एक उद्गार आते है **''ते एवमाहंसु-'एवं खो नो आवुसो गोतम, सुतं यथेवायमस्मा गोतमोआहा'ति''** (दीघ.नि.पाथि.सु.४०।४५) यह तो दीघनिकायके आधारपर भी सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्धसे पहेले भी यह, उपनिषदोंके लोगोंने सुन रखी थी!. पता चल जायेगो के ये सारे पॅसेजेस्; ऐसे एक नहीं हे ये तो मैने चोखाके दानाकी तरह दो-चार दाने बताये हें ऐसे सारे पॅसेजेस्, अलग-अलग उपनिषदन्सु लिये भये हें. सृष्टिकी

प्रक्रिया महाप्रभुजीने भी रॅकग्नाईज़् करी हे **"कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनः अन्यथा, कदाचित् सर्वम् आत्मैव भवति इह जनार्दनः. महेन्द्रजालवत् सर्वं कदाचिद् मायया असृजत् तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः...सृष्टेः उक्ताः हि अनेकधा, यथा कथञ्चिद् माहात्म्यं तस्य सर्वत्र वर्ण्यते"** (त.दी.नि.१।३७-४१) ऐसे सृष्टिके अनेकधा प्रकार क्यों बताये हें? महाप्रभुजी स्पष्ट वामें एक कारण कहे हें **"यथा कथञ्चिद् माहात्म्यं तस्य सर्वत्र वर्ण्यते"** अपने ब्रह्मवादमें और इनके ब्रह्मवादमें अन्तर कितनो हे **"यथा कथञ्चिद् माहात्म्यं तस्य सर्वत्र खण्डयते"** अन्तर इतनो ही हे पर ब्रह्मवाद इन्कार कियो हे ये तो अपन् केह नहीं सकें. ब्रह्मवाद उनने स्वीकार कियो हे.

अपनेकु एक शंका ये हो सके के ये ओपिनियन्की गिनती उनने मिथ्या दृष्टिमें करी हे तो ये ओपिनियन् शायद बुद्धकी नहीं भी हो सके हे! ये दीघनिकाय हे. याके पहले एक मज्झिमनिकाय और हे. वामें हमारे भारद्वाज गोत्रको एक ब्राह्मण जो अपने जमानाको बहोत पंडित हतो. वाकु सबन्ने खूब चाबी भरी के तुम बुद्धसु जाके शास्त्रार्थ करो. क्योंके बुद्ध ब्राह्मणन्को खण्डन कर रह्यो हे. अचानक वा बिचारेकु जोश आ गयो और बुद्धसु शास्त्रार्थ करवे पहोंच गयो. बुद्धकु वाने भरी सभामें चॅलेन्ज् दी. ये तुम क्या बात कर रहे हो? तुम केह रहे हो के ब्रह्माने जगत् नहीं बनायो तो क्या तुमने बनायो?

भगवान् रजनीश तो चतुर हतें. भगवान् रजनीशकु भी क्रॉस्मॅदानमें ये बात पूछी गई हती. भगवान् रजनीशने बहोत अच्छी बात केह दी. पूछवेवालेकु कही के "यहां पासमें आओ" आदमी पासमें गयो तो भगवान् रजनीशने कही "हां मैंने बनायो. पर दूसरेकु मत कहियो नहीं तो ना पाड़ दूंगो. तोकु ये ब्रह्मज्ञानको उपदेश दे रह्यो हूं" કેમકે અધિકારી પાંખે એ વાણી નહીં કોને ઉચ્ચાર. भगवान् रजनीश या बारेमें बुद्धसु वन् स्टॅप् अहेड् हते. भगवान् बुद्ध वन् स्टॅप् बिहाइन्ड् हें.

ब्राह्मणके पूछने पर भगवान् बुद्धने कही "अरे भई! तू कायकु चिंता करे. तोकु सत्यकी चिंता हो रही हे ना! मैं अपने तपसामर्थ्यसु तोकु ब्रह्मलोक भेज रह्यो हूं. मज्झिमनिकायकी वार्ता हे. भगवान् बुद्धने वा भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणकु ब्रह्मलोक भिजवा दियो. वहां ब्रह्माजी वाकु मिले. ब्रह्माजीने जैसे अपने यहां पुराणन्में आवे हे के संध्या वगैरह करके पूछ्यो के कैसे आये? वाने कही के "मैने बुद्ध भगवान्सु ये सवाल कियो के ब्रह्माने जगत् नहीं बनायो तो कौनने बनायो?" भगवान्ने कही के "कौनने बनायो ये मैं क्या बताऊं! तू ब्रह्माजीकु ही जाके पूछ." या लिये आपके पास आयो हूं. ब्रह्माजीने वाकु बहोत फॅन्टास्टिक् उपदेश दियो. दूसरे कोई औरके द्वारा रॅक्मन्डेशन् होतो तो मैं सच्चो रहस्य तोकु नहीं बतातो परन्तु तेरी रॅक्मन्डेशन् बुद्धकी हे तो मोकु सच्चो रहस्य बतानो पड़ेगो. वो सच्चो रहस्य ये हे के "मैं सृष्टिके साथ पैदा भयो हूं. सृष्टिकु पैदा करवेवालो नहीं हूं. पर लोककु ये रहस्य बताऊंगो तो वो मोकु प्रजापति नहीं मानेंगे. या डरके मारे लोग डरते रेहवे हें याकेलिये मैं केहतो फिरूं के मैं प्रजापति हूं. तुम मेरी प्रजा हो. अब बुद्धने रॅक्मन्ड् कियो यालिये तोकु ये रहस्य बता रह्यो हूं"

ये बुद्धद्वारा अपने तपोबलसु भेजे गये ब्राह्मणके द्वारा कह्यो गयो कथन हे. अब ये सिद्धान्त हे के नहीं? यदि ये सिद्धान्त खोटो हे तो बुद्धकी तपसामर्थ्य खोटी हे. मतलब क्या भयो के यातो बुद्धने वाकु मॅस्मॅराईज़् कियो हे या हिप्नोटाईज़् कियो हे. यदि बुद्ध केह रहे हें के अपने तपसामर्थ्यसु मैं तोकु ब्रह्मलोक भिजवा रह्यो हूं मतलब ब्रह्मलोक बुद्धकु मान्य हे. वा ब्रह्मलोकमें पहोंचे भये भारद्वाज ब्राह्मणकु ब्रह्माजी जब ये उपदेश केह रहे हें के "मैं सृष्टिके साथ पैदा भयो हूं. सृष्टिको कर्ता नहीं हूं" अपनेकु लगे के बुद्ध भगवान्ने जैसे कि राहुल सांकृत्यायनने ये बात कही हे राधाकृष्णन्के खण्डन्में. राहुल सांकृत्यायनके मुद्दाके साथ झगड़ामें

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने कही के "बुद्ध भगवान् नयो धर्म फैलानो नहीं चाहते थे. बुद्ध भगवान् वैदिक धर्मकु ही फैलानो चाहते थे. पर ब्राह्मणन्के विरोधी हतें" राधाकृष्णन्की ये बात सच हे. उनके अभिधम्ममें एक ब्रह्मवग्ग भी आवे हे. वामें उन्होंने ये बात क्लीयर् करी हे के मैं अच्छो ब्राह्मण कौनकु मानूं हूं. मनुस्मृतिमें सामान्य दस धर्म कहे गये हें वो जामें होंय वाकु अच्छो ब्राह्मण मानूं. जातसु अपने आपकु ऊंचो दावा करवेवाले ब्राह्मणकु मैं अच्छो ब्राह्मण नहीं मानूं हूं. दस सामान्य धर्म मनुने अपने यहां बहोत पहलेसु बता रखे हें.

वो तो मनुसु भी पहले वेदने बताये हें. वाकी श्रुतियें बिल्कुल स्पष्ट अवेलेबल् हें. तो ब्रह्मवग्गमें या तेरहसु आयो हे. वा ब्रह्मवग्गमें जब ब्राह्मणविरोधी हते के नहीं हते ये जो इश्यु राहुल सांकृत्यायन और सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के बीचको झगड़ा हे. वामें सर्वपल्ली यों कहे हे के "ब्राह्मण विरोधी हतें. क्योंके ब्राह्मणलोग मूर्ख पैदा हो गये थे." वो वेदविरोधी या एस् सच् ब्राह्मण विरोधी भी नहीं थे क्योंके ब्राह्मण वोही हे जाकु अपन् आईडियल् केह रहे हें और जाकु वो भी आईडियल् केह रहे हें.

बुद्ध खुदकु भी आईडियल् याही अर्थमें केह रहे हे जो दस सामान्य धर्म हें उनके पालवेवाले होवेके कारण बुद्ध हूं. तो अपन् समझ सकें के प्रॉब्लेम् कहां हे, कहां डिस्प्युट् हे. कॉमन् ॲग्रीमॅन्ट् कहां हे! यामें ध्यान देवेकी बात ये हे के बुद्धकी शरणमें जावेसु पारमार्थिक तत्त्वको रहस्य प्रकट हो रह्यो हे, ये मज्झिमनिकायको स्वीकरण या बातको क्लीयर्कट् इन्डिकेशन् हे के बुद्धकु भी सृष्टिप्रक्रिया तो ये ही स्वीकार्य हे. जरासे मॉडिफिकेशन्के साथ के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण नहीं हे. क्योंके **"तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत"** (तैत्ति.उप.२।७) ये जो बात हे वहां उनको थोड़ोसो डिफरेन्ट ओपिनियन् हे क्योंके

वे आत्मवादी नहीं हें, कर्तृवादी नहीं हें, वे क्रियावादी हें. क्रिया अपने आपमें सफिशियेन्ट् हे. 'क्रिया'को मतलब ही प्रतीत्यसमुत्पाद हे.

(ब्रह्मानुभवके बिना आत्मानुभव संभव नहीं)

जा संदर्भमें मैंने आपकु बतायो के *रेने देकार्ते आके महाप्रभुजीकु यों केहतो के 'कॉजितो एर्गो सुम्'(cogito ergo sum) और महाप्रभुजीकु

*रेने देकार्ते : अपने चिन्तनका प्रारम्भ सर्वग्रासी संन्देह (de omnibus dubitandum) के साथ करते हैं : परमेश्वर, बाह्य जगत्, स्वयं अपना शरीर, उससे संपन्न होती क्रिया ही नहीं अपितु आन्तरिक क्रियाओंका भी अस्तित्व स्वप्नके समान क्यों एक मिथ्या अनुभूति नहीं हो सकती है? फिर भी जाग्रत्कालीन आत्मबोधकी बात तो जाने दो स्वप्नकालीन आत्मबोध भी, सन्दिग्ध नहीं हो सकता. क्योंकि सन्देहव्यापारको सम्पन्न करनेवालेका अस्तित्व (cogito ergo sum) सन्देहव्यापारमें भी भासित होता है. अत: आत्मास्तित्वको सन्दिग्ध मानना उसे स्वतोव्याहत लगता है. अत: आत्मास्तित्व सन्देहानर्ह (sum cogitans) होता है. वह जैसे सन्देहानर्ह होता है, वैसे ही और कोई बोध हो सकता है या नहीं? जैसे आत्मास्तित्वका बोध एक स्पष्ट प्रत्यक्ष (clara et distincta perceptio) होता है, वैसा ही बोध हमें स्वयम्भू परमेश्वर (causa sui) का भी होता है. क्योंकि अपने आत्मबोधमें हमें अपनी अपूर्णताका जो बोध होता है, वह पूर्णताके बोध बिना शक्य नहीं. अत: यह बोध हमारे भीतर अन्य किसीके द्वारा स्थापित होना चाहिये. यदि हम स्वयं इसके कारण होते तो अपूर्णके बजाय अपने-आपको पूर्ण क्यों नहीं बना लेतें? अत: इसके स्थापकतया परमेश्वरका अस्तित्व सिद्ध होता है. परमेश्वरसे उसके अस्तित्वको पृथक् सोचनेपर, अर्थात् किसीके द्वारा प्रदत्त सत्ताके वश उसे अस्तित्वशाली माननेपर, वह भी हमारी तरह एक अपूर्ण ही सिद्ध होगा. हमारे भीतर भरे पूर्णता और अपूर्णता के प्रत्ययोंका उत्पादक नहीं. इस तरह वह अपरिच्छिन्न

भिड़ा दियो जाय उनके साथ तो महाप्रभुजी कहेंगे के ये तो क्रिया हे. याके कारण आत्मा कैसे सिद्ध होयगी? महाप्रभुजी भी वोही आर्ग्युमॅन्ट् देंगे. ये 'कॉजीतो एर्गो सुम' तो एक अन्तःकरणकी प्रक्रिया हे, वासु आत्मा सिद्ध नहीं हो सके. क्योंके आत्मा तो कौनसी दृष्टिसु सिद्ध होयगी? योगदृष्टिसु वाको दर्शन हो सकेगो या जो दृष्टि हरिकु देखवेके लिये सक्षम हे वो देख सकेगी. जो भगवान्‌कु देख सके हे वो ही आत्माको दर्शन कर सके हे. योगसु आत्मदर्शन हो सके हे. बाकी अन्यथा ये 'कोजीतो एर्गो सुम' आई थिन्क् देयर्फॉर् आई एम्'.

जैसे शंकराचार्यजी कहे हें के **"सर्वो हि आत्मास्तित्वं प्रत्येति, न 'न अहम्' अस्मि इति यदि हि न आत्मास्तित्वप्रसिद्धिः स्यात्, सर्वो लोको न अहम् अस्मि इति प्रतीयात्"** (ब्र.सू.शां.भा.१।१।१) सब लोग ये ही तो केह रहे हें के 'मैं हूं'. कोई यों कहे के 'मैं नहीं हूं'! डेकार्तेसु पहले शंकराचार्यजीने कही हे. **"सर्वो लोको न अहम् अस्मि इति प्रतीयात्"** याके लिये आत्मा तो हे ही. शंकराचार्यजीकु भी महाप्रभुजी ये ही बात पाछी कहेंगे के **"अहम् अस्मि इति प्रत्येति"** यामें 'अहं' (अहंकार) जड़ हे. 'अस्मि' क्रिया हे. 'प्रत्येति' बौद्धिक व्यापार हे यामें आत्मा कहां हे बताओ? "आत्मा 'अहम्' 'अस्मि' इति 'न प्रत्येति'" आत्मानुदर्शन नहीं हे. नैयायिकनूकु ये भ्रान्ति हो गई के 'मैं हूं' केहवेसु आत्मा हे. अपने यहां भी ऐसे फितूर चलते थे.

दैविक पदार्थरूप परमेश्वर (substantia infinita sive deus) परिच्छिन्न विचारशील पदार्थ मानवीय जीव (substantia finita cogitana sive mens) और साकार देशवर्ती जड़ पदार्थ (substantia extensa sive corpus) रूपी त्रिकका पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्विकारते हैं. (द्र.अन्यख्यातिवादिया विद्वत्संगोष्ठी पृ.५२८)

मगनलाल शास्त्रीजी केहते थे ''એમ આપણે ક્યાં કહીએ? (છાતી પર હાથ ઠોકીને) તેથી છાતીમાં આત્મા છે. પેટ ઊપર હાથ મૂકીને કોઈ કહે છે કે 'હું છું'? તેથી પેટમાં આત્મા નથી.'' व्यतिरेको गन्धवत्. मगनलाल शास्त्री भी ऐसे केहते. छातीपे हाथ रखके 'હું છું' आत्मा या तरेहसु अनुभूत नहीं हो सके. क्योंके अब तो ओपन् हार्ट्-सर्जरी हो रही हे. आदमीके हार्ट्के ठिकाने सुअरको हार्ट बिठाके भी वाकु जीवित रख्यो जा सके हे. प्लास्टिक्को हार्ट् बिठाके भी जीवित रख्यो जा सके हे. तो वा स्थितिमें, इन ओपन् हार्ट्-सर्जरीसु या सुअरके हार्ट् या प्लास्टिक्के हार्ट् बिठावेसु वा आत्माके लिये कोई चॅम्बर् नहीं बनायो जा सके हे. क्योंके पम्प्-इन् और पम्प-आउट् को ही सॅन्टर् हे वहां. इन सॅन्टरन्के अलावा वहां कोई और सॅन्टर् नहीं हे. एक वॅक्युम् जरूर हे. वो स्थान आत्माके रेहवेको स्थान खूबसूरत हो सके हे यदि रेहनो होय तो, मोस्ट् वॅल्कम् चार पम्प्के चॅम्बर्के बीचमें.

ठीक हे वहां आत्मा हो भी सके हे और नहीं भी हो सके हे. क्योंके हृदयके **''प्रादेश मात्रम् अभिविमानम् आत्मानम्''** (छान्दो.उप.५।१८।१) अपने यहां भी कह्यो गयो हे. पर सवाल ये हे के यासु आत्माको अनुभव नहीं हो सके हे. वो तो ब्रह्मकु जो देख सके हे, वो ही आत्माकु देख सके हे. इन सारी तुक्काबाजीन्सु आत्मानुभव या आत्मसिद्धि नहीं हो सके हे. ये बात अपनेकु समझनी चईये. और बुद्ध कैसे ब्रह्मवादी हें ये अपन्ने देख्यो.

संक्षेपमें अपन् कल जरथोष्ट्र देखेंगे. परसों अपन् मिस्र देखेंगे. कम-सु-कम अपनेकु ये पिक्चर् साफ होनो चईये के अपन्के सामने बुद्धने जो तोप तानी हे वाके लिये उनकु अपन् ये केह सकें के भई ये तोप तो हमारी हे. याकी सारी तकनीकी दृष्टि जो हे, चलावेकी, वाकु हमसु सीख लो. हम अच्छी तरेहसु वो तुमकु बता

देंगे. क्योंके ये सारे वचन बुद्ध जो अपनी भाषामें ट्रांसलेट् करके केह रहे हें उनकी पॅराफ्रेसिंग् अपने उपनिषदन्सु ही भयी हे, ये अपन् देख सकें.

प्रश्न: आत्मा सुषुप्तिसाक्षी हे. मैं सो रह्यो थो. ये जो अनुभव हे मैं गाढ़ निद्रामें सो रह्यो थो; ये अनुभव और शब्दसु वाच्य आत्मबोध/आत्मज्ञान यहां होवे हे? जैसे कही के 'मैं हूं' यासु आत्मबोध नही हो रह्यो हे और सुषुप्ति साक्षी आत्माकु अपन् माने हें?

उत्तर: ये उपनिषद् और शंकराचार्यजी दोनोंने कह्यो हे. याकी खूबसूरतीपे ध्यान दे. उपनिषद् अपनो क्या केह रह्यो हे? वो सब दुष्टे अन्धन्तम नरकमें जायेंगे के जो अविद्याकी उपासना कर रहे हें. पर जो विद्याकी उपासना कर रहे हें वो वासु भी घोर अन्धन्तम नरकमें जायेंगे. अविद्याकी उपासना करवेवालेन्सु विद्याके उपासक घोर अन्धन्तम् नरकमें जायेंगे. उपनिषद् केह रह्यो हे, श्यामबाबा नहीं हों! **''अन्धतम: प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते, ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायां रता:...विद्यां च अविद्यां च य: तद् वेद उभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते''** (ईशा.उप.९-११) एक गोल्डन् ट्रुथ् उपनिषद् बता रह्यो हे. मृत्युकु तुम विद्यासु नहीं तैर पाओगे. मृत्युकु तैरवेके लिये तुमकु अविद्या चईये. अमृत पावेके लिये तुमकु विद्या चईये. याकेलिये ब्रह्मकु कभी तुम केवल विद्यासु या अविद्यासु जाननो चाहोगे तो ''नेति नेति'' मैं करूं. वो ब्रह्म नहीं मिलेगो पर वो अन्धन्तम नरक मिलेगी. **''अन्धतम: प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते, ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायां रता:''** अब बहोत सारे भाष्यकार, बहोत सारे विद्यावादी व्याख्याकार घबरा गये हें. एकदम जुलाब देने लायक बात हे. पर वामें एक मीठी रिमार्केबल् बात कही जा रही हे. यदि तुमकु अमृत प्राप्ति करनी हे, विद्याके नामपे अपने यहां महाप्रभुजी **''...वैराग्यं सांख्ययोगौ च**

तपो भक्तिः च केशवे. पञ्चपर्वैति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्'' (त.दी.नि.१।४५-४६) आज्ञा कर रहे हें. क्या वैराग्य अहंकारके बिना हो सके हे? संभव ही नहीं हे. क्यों? वैराग्यके लिये पहेले तुमकु अहंकार और मेरे अलावा चीजनूमें हेयताको भान होनो चईये. अहमास्पदसु व्यतिरिक्त जितनो हे वो हेय हे. अहं ही उपादेय हे. याको नाम 'वैराग्य'. अहंकारके बिना वैराग्य होयगो नहीं. सांख्य **''आत्मानात्मविवेक''** है. आत्मा अलग हे अनात्मा अलग हे. अब ये विवेक कायसु करोगे? बुद्धिके बिना विवेक हो जायेगो? बुद्धिके बिना आत्मा-अनात्माविवेक तो हो नहीं सकेगो. जैसे ही बुद्धि आयी वैसे ही पीछेसु अविद्या आ गई. क्योंके पञ्चपर्वा अविद्या क्या हे? अन्तःकरणाध्यास प्राणाध्यास देहाध्यास इन्द्रियाध्यास और स्वरूपविस्मृति. तो अन्तःकरणाध्यासके अन्तर्गत बुद्धि आ गई. सांख्यके लिये तुमकु बुद्धि चईयेगी. तप कहांसु करोगे? देहके बिना तप होयगो? देहाध्यासके बिना तप कैसे होयगो? देहाध्यासके बिना तप नहीं होयगो. खूबसूरती देखो वाकी. यदि तुमकु देहको अध्यास नहीं हे तो तप करोगे कायको? देहाध्यासके लिये पाछे तुमकु अविद्याकी शरणमें जानो पड़ेगो. **''वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो भक्तिः च केशवे. पञ्चपर्वैति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्''** (वहीं) भक्तिके लिये तो अहंकार और ममता दोनों चईये. क्योंके 'दासोऽहं' और 'श्रीकृष्णः शरणं मम'. 'श्रीकृष्णः शरणं मम' में ममता आ जायेगी. 'दासोऽहं' में अहंकार आयेगो. तो अहंता-ममता तो भक्तिके नामपे पाछे तुम्हारे गले चिपक गई.

कोई भी विद्या अविद्याके बिना अपनो रोल् अदा कर नहीं पा रही हे. **''विद्यां च अविद्यां च यः तद् वेद उभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते''** (वहीं) अविद्या तुमकु वहां तक पहोंचा सके हे. कहां तक के जहां पहोचवे तक तुम विद्याके पास जा पाओ. अविद्याने तुमकु विद्या तक पोहोंचायो तो तुम विद्यासु ब्रह्मतक पहोंच सकोगे. चाहे तो वैराग्यवालो ब्रह्म होय, चाहे तो

सांख्यवालो ब्रह्म होय, चाहे तपवालो ब्रह्म होय, चाहे भक्तिवालो ब्रह्म होय, विद्या-अविद्याको रोल् एक-दूसरेके साथ डायवोर्स रोल् नहीं हे पर एक-दूसरेके साथ कड़ीकी तरेह शृंखला बनतो भयो एक रोल् हे. मोकु बस नीरजकी एक कविता याद आ जा रही हे. ''प्रेमका पंथ हो ना सूना कभी मैं जहांपे थकूं तुम वहांसे चलो'' जहां अविद्या थक जाये वहां विद्या आ जाये. जहां विद्या थक जाये वहां अविद्या आ जाये. दोनोंनूके कॉलोबोरेशनूमें जो भी कुछ हो रह्यो हे सो हो रह्यो हे.

या तरहसु कॉलोबोरेशनूमें काम हो रह्यो हे करके महाप्रभुजी केह रहे हें **''विद्याविद्ये हरेः शक्ती''** (त.दी.नि.१।३१) ये तो हरिकी शक्ति हे. तुम व्यर्थमें कायेकु खोटो अहंकार करो के मेरी विद्या हे. खोटो दैन्य क्यों के मेरी अविद्या हे और खोटो अहंकार क्यों के मेरी विद्या हे. अविद्यावान् होवेको दैन्य भी खोटो हे और विद्यावान् होवेको अहंकार भी खोटो हे. ये तो भगवान्की शक्ति हे जो के तुम्हारे साथ या तरेहसु खेल रही हे.

ये एक फॉरमॅट् महाप्रभुजीने अपनेकु ब्रह्मवादके संदर्भमें दियो हे. वो उपनिषद्सु आयो भयो संदर्भ हे. वाकी सच्ची असर अपनेकु पता कैसे चले? महाप्रभुजीके दर्शनसु पता नहीं चले. शांकरमतसु पता चले. **''अहं ब्रह्मास्मि''** (बृह.उप.१।४।१०) एसी आकारवाली वृत्ति शांकरमतमें मिथ्या हे. मायिकी हे. ब्राह्मिकी नहीं हे. वेदान्तदेशिकको इन लोगनूके साथ जब तुमुल युद्ध भयो हे वहां उनने ये ही प्रश्न बहोत तर्क करके पूछ्यो हे के तुम केह रहे हो के ब्रह्म केवलाद्वैत हे, एकदम निर्विशेषाद्वैत हे, तो **''अहं ब्रह्मास्मि''** इत्याकारावृत्ति और ब्रह्म हे के नहीं हे मुक्तिके बाद, अब ऐसी जगह उने चूंटियां भरी के उनकु जबरदस्ती कबूल करनो पड़यो के नहीं अहं ब्रह्मास्मिका ऐसे आकारवाली वृत्ति मायिकी हे. पाछी वोही बात हो गई **''अविद्यया**

मृत्युं तीर्त्वा'' अहं ब्रह्मास्मिका इत्याकारिकया **''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते''**

प्रश्न: विद्यया अमृतं क्या हुई?

उत्तर: वो शंकराचार्यजी बुद्ध मतसु उधार ले रहे हें. बोल्यो नहीं जा सके. बोलने जाओगे तो गड़बड़ हो जायेगी. नहीं बोलो तो समझ जाओगे. यालिये शंकराचार्यने बुद्ध मतके नागार्जुनकी तरेह कही हे **''न चैकं तद् अन्यद् द्वितीयं कुतः स्याद्? न शून्यं न च अशून्यम् अद्वैतकत्वाद्. कथं सर्ववेदान्तसिद्धिं ब्रवीमि''** (दशश्लोकी.१०) वेदान्तकी सिद्धिकु मैं बोल कैसे सकू हूं? क्योंके वो एक नहीं हें **''न चैकं''** जब एक नहीं हे तो दो कहांसु होयगो? **''न चैकं तद् अन्यद् द्वितीयं कुतः स्यात्?''** ''न वा केवलत्वम्'' मानें वो केवल भी नहीं हे और ''न च अकेवलत्वम्'' और अकेवल भी नहीं हे. शून्य होयगो? तो कहे हें ''न शून्यम्'' तो कहे हें के अशून्य होयगो? ''न च अशून्यम्'' अशून्य भी नहीं हे. अरे तो हे क्या भई? तो बोले 'हे क्या' बताऊं कैसे? 'हे क्या' बताने जाऊंगो तो घोटाला हो जायेगो. अमेय अवाच्य अपोह्यब्रह्म वहां हे. वो बुद्धको मत या तरेहसु शांकरमतमें गोदमें लियो भयो मत हे. क्योंके बुद्धके मतने अनूंसेसरी उपनिषद्की तोप उपनिषद्पे तानी. शंकराचार्यजीने कही के ''अरे भई, तोकु फिरसु गोदमें ले लऊं न! फिर तो कोई लफड़ा नहीं होयगो ना!

हमारे जातिके भट्टवर्गमेंसु कोई एक हते. उनकु गाली-गलौचकी बहोत आदत हती. एक सेठके यहां वो नौकरी करते थे. एक दिन सेठको बेटा सुन गयो. वो बोल्यो के ''एक तो हमारे यहां नौकरी करो और पाछे गाली भी हमकु दो!'' तो उने कही ''अरे नहीं नहीं सेठ, आपकु गाली थोड़े ही दऊं तुमतो मेरे बेटा हो.'' वो और गाली दे दी. वाने कही ''याके सामने तो चुप रेहवेमें ही फायदा हे'' सेठने कही ''अब ज्यादा चर्चा छेड़वेमें फायदा नहीं

हे.'' आदमी गालीपे उतरे तो कोई कोई लेवल्पे गाली दे सके. ऐसे शंकराचार्यजीने बुद्धकु कही के ''नहीं नहीं तुमकु गाली नहीं दे रह्यो हूं, तुम तो मेरे बेटा हो.'' बात पत गई.

बौद्ध मतके विद्वान रो रहे हें के हमारो मत चुरा लियो हे. अपन् रो रहे हें के उनने अपनो मत चुरा लियो. दरअसल कोईने कोईको मत चुरायो नहीं हे. ''ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे'' ब्रह्मको लटका हे ब्रह्मके सामने, कोईने कोईको मत चुरायो नहीं हे. जैसे अपनो उपनिषद् कहे हे **''तदेव अग्निः, तद् वायुः, तत् सूर्यः, तदु चन्द्रमाः, तदेव शुक्रम्, तद् ब्रह्म, तद् आपः स प्रजापतिः''** (श्वेता.उप.४।२) वोही बात बुद्ध कहे हें **''ब्रह्माणं विष्णुमीश्वरं प्रधानं कपिलं भूतान्तम् अरिष्टनेमिनं सोमं भास्करं रामं व्यासं शुकम् इन्द्रं बलिं वरुणम् इति चैके संजानन्ति''** (लंकावतारसूत्र.३।८५।२०) ब्रह्म सबकु अलग-अलग ढंगसु कोईकु अपनी अभिधेयताको स्फुरण करा रह्यो हे. कोईकु अपनी अपोह्यताको स्फुरण करा रह्यो हे. संक्षेपमें याको ये स्वरूप हे. ये हिस्ट्री नहीं हे लेकिन ये हिस्ट्री ऑफ् फिलोसोफी हे.

(अभिधेय ब्रह्मवाद: ज़रथुष्ट्रको उपक्रम)

ब्रह्मवादके अश्रौत रूपन्को अपन् चिंतन कर रहे थे. वाके अन्तर्गत अपन्ने सबसु पहेले अश्रौत ब्रह्मवाद मानें अपोह्य ब्रह्मवादको स्वरूप बौद्धदर्शनमें दीघनिकायके आधारपे देख्यो. वा क्रममें आज ज़रथुष्ट्र आ रह्यो हे. वे अपोह्य ब्रह्मवादी नहीं हें अभिधेय ब्रह्मवादी हें. और ज़रथुष्ट्रके जो वचन हें वे श्रौत हें के अश्रौत हें ये केह पानो बहुत मुश्किल हे. क्योंके ऋग्वेदके इतनी सन्निकट भाषा हे अवेस्ताकी के यदि थोड़ेसे उच्चारणभेदसु वाकु बोलो तो वो ऋग्वेद ही लगे हे और ऋग्वेदकु थोड़ेसे उच्चारणभेदसु बोलो तो वो अवेस्ता लगे.

अब श्रौत हे के अश्रौत हे केह पानो, जहां-तक अवेस्ताको

सवाल हे वामें कुछ मोह उत्पन्न होवे हे. पर जा बारेमें मोह नहीं हे कम-सु-कम मोकु, औरन्की बात तो मैं नहीं करूं, वो हे के ज़रथुष्ट्र एकदम दृढ़ ब्रह्मवादी हते. अब शब्द उनको ब्रह्म नहीं हे, वाको मूल कारण ये हे के ब्रह्मकु 'देव' केहनो, ब्रह्मकु 'प्रजापति' केहनो, ब्रह्मकु 'असुर' केहनो, 'आत्मा' केहनो, 'तत्त्व' केहनो, **"यो देवानां नामधा एकएव"** (ऋक्संहि.१०।८२।३) **"तदेव अग्निः, तद् वायुः, तत् सूर्यः, तदु चन्द्रमाः, तदेव शुक्रम्, तद् ब्रह्म, तद् आपः स प्रजापतिः"** (श्वेता.उप.४।२) ये तो अपने ऋग्वेदकी आरम्भसु पॉलिसी रही हे, वामें परमतत्त्वकु 'असुर' भी कह्यो गयो हे. वा असुरकु वो 'अहुर' कहे हें. 'अहुरा' कहे हें. अहुरा केहवेसु 'देव' उनके यहां दानव वाचक हो गयो हे, और 'असुर' अपने यहां दानव वाचक हो गयो हे. यदि अपन् थोड़ीसी भागवत दृष्टि वापरें या थोड़ी औपनिषदिक दृष्टि वापरें तो **"द्वयाः ह प्राजापत्याः देवाश्च असुराश्च"** (बृह.उप.१।३।१) वो प्रजापतिके देव और असुर दोनों रूप हें. खाली रूप ही तो नहीं होयेंगे, नाम भी तो प्रजापतिके ही होयेंगे, देव और असुर. नाम भी तो दो होंयगे. जब नाम भी दो हो सके हें, ठीक हे जाकु गुस्सा आतो होय तो गुस्सा आवे. बाकी यामें गुस्सा आवेकी बात क्या हे. वो 'देवयज्नि' उनके यहां काफिरन्कु कह्यो जाय. कुफ्र करवेवालें काफिर देवयज्नि हें. 'अहुरमज़्दा' उनके यहां ब्रह्मवाचक हे. ब्रह्मकु 'असुर' क्यों कह्यो? आज अपनेकु कोई असुर कहे तो अपनेकु मिर्ची लगे लगे और लगे ही. अपन् रामदास श्यामदास शिवदास कहें ऐसे कोईकु रामासुर शिवासुर कहें तो सबकु मिर्ची लग जायेगी. वो जो मिर्ची लग रही हे वो पार्टिशन् पैदा होनेके बादकी परिस्थिति हे. पार्टिशन्के पहेलेकी स्थिति नहीं हे. **"द्वयाः ह प्राजापत्याः देवाश्च असुराश्च"** (वहीं)

अभिधेय ब्रह्मवादकी एक वॅरायटी ज़रथुष्ट्र और रामानुज हें.

रामानुजन्को मत तो अपन् यहां डिस्कशन् नहीं करेंगे. बाकी टाइम् टु टाइम् मेरी चर्चामें वेदान्तदेशिक आते रहे हें. क्योंके वेदान्तदेशिक महाप्रभुजी गुसांईजी कु भी अत्यन्त प्रिय हें. इन्सिडॅन्टली दादाजीने मोकु वल्लभ वेदान्तसु पहेले रामानुजके वेदान्तदेशिकके ही सब श्लोक याद करवाये थे. सो मेरो भी वेदान्तदेशिकसु दिली लगाव हे. वो एक अलग कथा हे पर अपनी या संगोष्ठीमें अपन् रामानुजकु नहीं ले रहे हें पर ज़रथुष्ट्रकु ले रहे हें. थोड़ो परिचय आपकु बताऊं के ज़रथुष्ट्र कैसे ब्रह्मवादी हें!

ये चार्ट् मैंने अवेस्ताके पारसी विद्वान (New light on the gathas of holy zarathushtra. by अरदेशर फरामजी खबरदार) भये हें उनने जा तरेहसु निरूपण कियो वा तरेहसु वाके आधारपे कियो हे. अवेस्ताकी व्याख्या युरोपियन् लोग कुछ और ढंगसु करे हें. खुद पारसी कुछ और ढंगसु करे हें. पूनामें जो ब्राह्मणन्ने मिलके अवेस्ताको बहुत विचार कियो हे वो पाछे कुछ तीसरे ढंगसु करे हें. पता नहीं यामेंसु सच्चो कौन हे और खोटो कौन हे. ये मैंने लियो हे जो खुद पारसी विद्वान केह रहे हें. वाने एक बहुत अच्छो ग्रंथ लिख्यो हे. पूरे अवेस्ताकी ऋग्वेदकी भाषामें पॅराफ्रेज़िंग् करी हे. वाको ये आग्रह हे के वा तरेहसु पॅराफ्रेज़िंग् करके याको अर्थ करो तो अवेस्ताको सच्चो अर्थ समझमें आयेगो. क्योंके अवेस्ताकी भाषाके बाद पेहलवी आयी, पेहलवीके बाद फारसी आयी और वा तरेहसु बेहते-बेहते बहुत सारी जो मूल विचारधारायें हतीं वामें कुछ परिवर्तन आ गयो.

वो परिवर्तन या सीमा तक आयो के जिन देवन्कु वे शुरुआतमें गाली देते हतें. वो देव उनके यहां आराध्य हो गये. जो उनके आराध्य हतें उनकु वे गाली देवे लग गयें. ऐसे बहुत सारे परिवर्तन आये. क्योंके उनको अपनेपे प्रभाव पड़्यो तो अपनो उनपे प्रभाव

पड़्यो. जब एक-दूसरेके साथ एक-दूसरेपे प्रभाव पड़े तो जैसे रोमियो-जूलियट्को परिवार झगड़तो रेहतो और रोमियो-जूलियट् एक-दूसरेसु अफेयर् करते हो जायें. उनके दास आपसमें तलवार भी चलावें. वहां पहेलो इन्ट्रोडक्शन् ही ऐसो हे. वाको नौकर और याको नौकर भी तलवारबाजी कर रहे हें. क्योंके वो कर्तव्य समझें मालिकके प्रति वफादारीसु. वो तलवारें चल रही हें और रोमियो-जूलियट् अपने परिवारकु दगा देके कहीं और भाग जा रहे हें.

हर धर्ममें रोमियो-जूलियट्वालो कॅरेक्टर् कहीं न कहीं टाईम्-टु-टाईम् प्रकट होतो ही रहे हे. अब रोमियो-जूलियट्के नाटकमें क्या-क्या परिवर्तन आते के कौन झगड़ते और कौन एक-दूसरेकु चाहवे लग गये, उनमेंसु "मैं ज़रथुष्ट्रको रोमियो हूं" ये केहवेमें मोकु संकोच नहीं हे. मोकु पसन्द आवे हे ज़रथुष्ट्र और वाको मूल कारण ये हे के अपनो भागवतधर्म हे और भागवतधर्म होवेके कारण बहुत सारे भागवतके ॲलिमॅन्ट्स् मोकु अवेस्तामें दीख रहे हें.

यदि मैं भागवतसु द्वेष करूं तो ज़रथुष्ट्रसु द्वेष करूं. महाप्रभुजी कहे हें **"वेदा: श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि. समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्. उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्. अविरुद्धं तु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा. एतद्विरुद्धं यत् सर्वं न तन्मानं कथञ्चन"** (त.दी.नि.१।७-८) वामें भागवतविरोधी कोई बात दीख नहीं रही हे. जब भागवतविरोधी बात नहीं दीख रही हे तो मोकु भागवत, ज़रथुष्ट्रको रोमियो बना रही हे. ये मेरी भागवतके प्रति कमिटमॅन्ट्के कारण आती भयी लाचारी हे के वो मोकु रोमियो बना रही हे. वाके कारण जब मैने ज़रथुष्ट्रके मतकु थोड़ोसो ध्यानसु देखनो शुरु कियो; वैसे हर साल जो प्रवचन सुने हें वामें महाप्रभुजीके प्रत्येक नामके पॅरेलल् ज़रथुष्ट्रके यहां क्या हे वो मैं पिछले पच्चीस सालसु निरन्तर बतातो आ रह्यो हूं. पर ब्रह्मवादके ॲन्गल्सु याकु एक बखत फिरसु अपन् चॅक् कर लें.

([१-५] अवेस्ता और वेद की समानता)

([१] ब्रह्म और अहुरमज़्दाकी दृष्टिसु)

ये जो मेरो ख्याल हे, वो वा पारसी विद्वानको ख्याल हे जाने ऋग्वेदकी पॅराफ्रेज़िंग् ऋग्वेदकी जैसी भाषामें करके अवेस्ताकु समझावेको एक महापुरुषार्थ प्रकट कियो. यदि मिस्-इन्टर्प्रिटेशन् हे तो पारसीबाबाको हे. पारसीबाबा बड़े मजेदार हें वो खुदकु गांडाबाबा केहते होवें. गांडाबाबाको हे के श्यामुबाबाको हे ये मोकु नहीं पता! पर ये मेरो नहीं हे, याकु तो मैं खाली एक चार्टकी तरह प्रस्तुत कर रह्यो हूं. ये खुलासा मैं पहेलेही आपकु कर दऊं. क्योंके यामें कुछ ॲलिमेन्टस् ऐसे आ रहे हें ब्रह्मा विष्णु और शिव के वो एस् सच् शब्दसु अवेस्तामें अवेलेबल् नहीं हें. बहोत सारे अपने देवतायें, विवस्वान् आदि देवतायें मौजूद हें वहां पर ब्रह्मा विष्णु और शिव शब्दनुसु वहां मौजूद नहीं हें. फन्क्शन्की तरेह वहां मौजूद हें. वो पारसीबाबा जो केह रह्यो हे वासु मैं भी सहमत हूं के हां, वा तरीकेके फन्क्शन् वहां बताये जा रहे हें, पर सम्-हाउ वा तरीकेके शब्द वहां अवेस्तामें नहीं आये हें.

वो ये केह रहे हे के एक 'वॉहुमनो' हे. 'क्षाथ्रवैर्य' हे. वा क्षाथ्रवैर्यकु 'ब्रह्मा' केह रह्यो हे. अब आपकु चिन्ता हो रही होयगी के क्षाथ्रवैर्यकी संस्कृत क्या होयगी? क्षाथ्रवैर्यकु ब्रह्मा क्यों माननो? ब्रह्माजीकु अपन् वेदकु प्रकट करवेवाले माने हें, सृष्टिकु प्रकट करवेवाले माने हें. वामें अचानक क्षाथ्रवैर्य कहांसु आयो?

यदि वेदके आधारपे चॅकिंग् करें तो बात समझमें नहीं आयेगी. पर भागवत जा तरहसु केह रही हे और महाप्रभुजी भागवतकु जा तरहसु प्रस्तुत कर रहे हें वामें ब्राह्मण सत्त्व हे, क्षत्रिय रज हे, बाकी तम हें. तो राजस ब्रह्मा हे. रजोगुणको अधिष्ठाता ब्रह्मा हे. रजोगुणको बाय-प्रोडक्ट् क्षत्रिय हे.

महाप्रभुजी ये बात और केह रहे हें के सारी क्रियायें रजोगुणसु पैदा होवें. यहांतक के सच्चिदानंद ब्रह्ममेंसु जा बखत ब्रह्मके धर्मको

चार्ट(हेवन पिक्चर्)

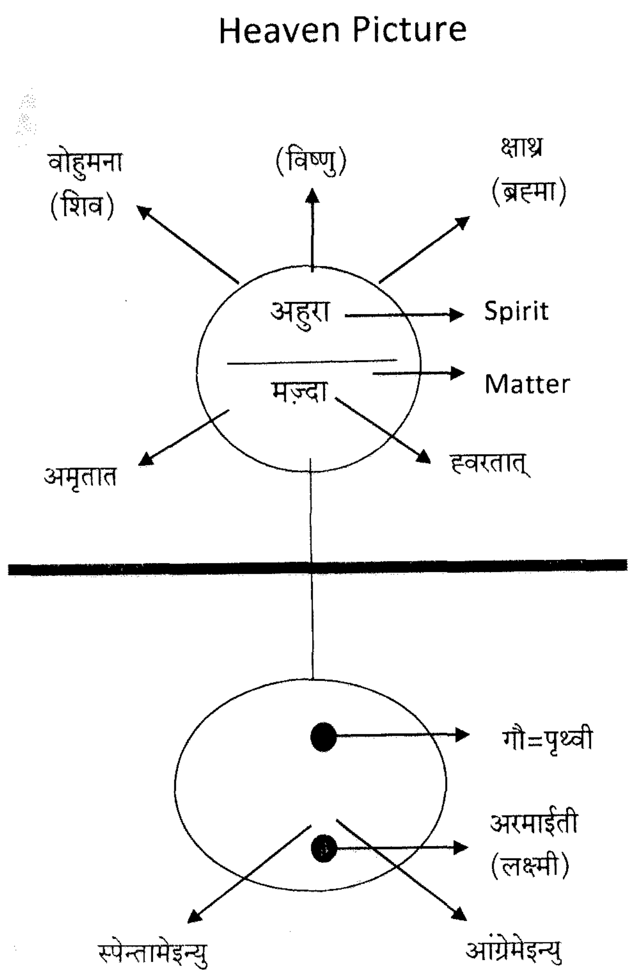

विभाजन भयो और सत्ता चैतन्य और आनन्त्य ये धर्म प्रकट भये. 'आनन्त्य' मानें नाम-रूप-कर्मको आनन्त्य, मानें असीमित पॉसिबिलिटी ऑफ् फॉर्म (रूप), असीमित सम्भावनायें ऑफ् कन्सेप्ट् (नाम), असीमित पॉसिबिलिटी ऑफ फन्क्शन् (कर्म). ये क्रियायें जब प्रकट भयी सदंशमेंसु चिद् और आनन्द के तिरोधानके कारण, सदंश प्राईमाफेसी निष्क्रिय हो गयो थो. वाकु सक्रिय करवेके लिये प्रक्रिया क्या अपनाई गई? सच्चिदानन्दके चैतन्यांशमें रही भयी क्रियाशक्ति सदंशकु सक्रिय बनावे हे. महाप्रभुजी क्या केहनो चाह रहे हें के सत्मेंसु सत्त्व, चिद्मेंसु राजस् (रजोगुण), आनन्दमेंसु तमस् (तमोगुण) प्रकट होवे हे. ये सत्त्वरजतमोगुणात्मिका प्रकृति ब्रह्मके सच्चिदानंदसु कॉरेस्पॉन्डिंग् हे. और वामें रजोगुणको अधिष्ठाता ब्रह्मा हे. रजोगुणको बाय्-प्रोडक्ट् क्षत्रिय हे. सत्त्वगुणको बाय्-प्रोडक्ट् ब्राह्मण हे.

अब यदि वो अवेस्ता केह रह्यो हे क्षाथ्रवैर्य तो जब अपने ॲन्गल्सु देखें तो अपनेकु लगे के बात तो सच्ची हे. ब्रह्मा ही तो हे और क्या हे? सृष्टि प्रकट कर रह्यो हे क्षाथ्रवैर्य, तो वो ब्रह्मा नहीं होयगो तो क्या होयगो? और वाकु 'क्षाथ्रवैर्य' नहीं केहनो तो क्या केहनो? क्योंके रजोगुणको रोल् तो वहां आ रह्यो हे. मोकु लग्यो के पारसीबाबा बात तो सच्ची केह रह्यो हे. अपनी वाल्लभ दृष्टिसु देखें तो-तो वो बात संगत लगे. युरोपियन् स्कॉलर्स्कु वाल्लभ दृष्टि अवेलेबल् नहीं होवेके कारण वे केह रहे हें के मिस्-इन्टर्प्रिटेशन् हे. हो सके हे मिस्-इन्टर्प्रिटेशन् पर अपनी दृष्टिसु अपन् देख रहे हें तो मोस्ट् प्रॉपर् इन्टर्प्रिटेशन् लग रह्यो हे के या सिच्युएशन्में क्षाथ्रवैर्य ब्रह्मा नहीं होयगो तो और क्या होयगो? **''पालने विमलसत्त्ववृत्तये, उत्पादने रजोगुणोजुषे, संहरणे तमोगुणोजुषे''** ये अपने यहांको कन्सेप्ट् हे.

यामें एक पॅराडॉक्स् आ रह्यो हे के शिवकु वो 'वॉहुमनो'

केह रहे हें. 'वॉहुमनो' शब्दको संस्कृताईज़ेशन् करें तो 'वसुमना' होवे हे. मोकु लगतो थो के वसुमन, वासुदेवके तरफ जानो चईये. पर ये वा तरफ क्यों चल्यो गयो? एक विचार मनमें आयो; ये न तो पारसीबाबाने कही हे, न अपने यहां वाको वा तरेहसु कोई डिफाईन्ड् टर्मिनोलोजी प्रकट भयी. क्योंके वसुमनाकी कोईकु पॅराफ्रेज़िंग् करनी होय तो 'वासुदेव' शब्द ज्यादा अच्छो लगे. पर वॉहुमनोकु पारसी बाबा 'शिव' केह रहे हे. उनको केहवेको मतलब हे के जाकु तुम 'शिव' केह रहे हो वो हमारे यहां वॉहुमनो हे. शिव ''घोरेभ्यो अघोरेभ्यो घोरघोरेभ्यः'' भी हे जो ॲलीफेन्टामें स्वरूप बिराज्यो भयो हे. वाको एक अघोररूप भी हे, वाको एक घोररूप भी हे और एक घोरतररूप भी हे. वाको घोरतर रूप हर बखत 'रुद्र' या 'भैरव' केहवायो हे. वाको अघोर रूप शान्त 'शिव' केहवायो हे. तीसरो जो मुख घोर हे वो यदि तीसरे नेत्रसु कामदेवकु जलायो तो शृंगाररसात्मक पार्वतीजीको मान्यो जा सके अन्यथा दुर्गा या काली जो पार्वतीजीके ही स्वरूप हें उनको भी घोररूप मान्यो जा सके!

बरसन् युरोपियन् लोगनूकु और अपने हिन्दुस्तानी लोगनूकु भी ये भ्रान्ति हती के ॲलीफेन्टाकी त्रिमूर्ति ब्रह्मा विष्णु और शिव के तीन मुख हें. वास्तवमें ऐसो नहीं हे. वो शिव पार्वती और भैरव के तीन रूप हें. 'भैरव'को मतलब भयंकर. जो भय पैदा करतो होय वो 'भैरव'. वो वाको रौद्ररूप हे. शिवके तीनों रूप हें. एक शृंगाररूप भी हे जो भैरवको रसाभास हे. दूसरो भैरव रूप हे जो शृंगारको रसाभास हे. और बीचमें उन दोनों रूपनूकु बॅलेन्स् करवेवालो एक शान्तरूप हे. वा शान्तरूपकु तो 'वसुमना' केहनो अच्छी बात हे. शान्तरूप हे तो वाकु वसुमना नहीं कहेंगे तो वसुमना होय बिना शान्ति आयेगी नहीं. 'शान्ति'को मतलब वसुमना. मोकु लग्यो के पारसी बाबा कोई हाइपोथॅसिस् कर रह्यो हे के अनुमान लगा रह्यो हे पर नॉट्र मच् ऑब्जेक्शनेबल्. वहां जितनो क्लीयर्कट्

सम्बन्ध दीख रह्यो हे, इतनो क्लीयर्कट् सम्बन्ध नहीं दीख रह्यो पर या तरीकेको अपन् एक ॲप्रोच् लें तो वसुमना(वॉहुमनो) शिव हो सके हे.

अपने विष्णुकु वो 'अहुरा' केह रहे हे. जा विष्णुने असुरके निकंदनके लिये चौबीसबार अवतार लियो वो हमारो 'अहुरा' हे. तो अपनेकु पाछो बहुत शॉकिन्ग् लगे के ये विष्णुकु कैसे अहुरा बता दियो? वो तो असुरनूके नाशके लिये हर बखत अवतार ले रह्यो हे. परन्तु स्वयं ऋगवेद भी जो कहे हे कि ''**पतङ्गमक्तम् असुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा मनीषिणः समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदम् इच्छन्ति वेधसः**'' (कृष्ण.यजु.तैत्ति.आर.१०।१७७-।१). समुद्रशायी पद क्षीरसागरमें पोढ़नेवाले विष्णुकु ही यहां 'असुर' शब्दसु द्योतित कियो गयो हे. वो एक बहोत अच्छी बात कहे हे के ''अहुरमज़्दाके कुल मिलाके चार फॅसेट्स् हें. वॉहुमनो क्षाथ्रवैर्य अमरतात् और हउर्वतात. ये चार वाके पहेलु हें. सच्चिदानंदब्रह्मके तीन पहेलु हें, ऐसे अहुरमज़्दाके ये चार पहेलु हें. इन चार पहेलुनूमें 'अहुरमज़्दाकु' कह्यो जा सके हे. देखो, अब ये अभिधेय ब्रह्म हे अपोह्यब्रह्म नहीं हे. यहां अहुरमज़्दाको बहोत क्लीयर्कट् टर्मिनॉलॉजीमें अभिधान आ रह्यो हे. ब्रह्मकु अमृत कहां नहीं कह्यो हे! तो एक अमृतात्(अमरतात्) वाको इम्मॉर्टल् स्वरूप हे. एक ह्वरतात और एक वाको क्षाथ्रवैर्य. एक वॉहुमनो और बीचमें जो अहुरा हे वो विष्णुको रूप हे. मज़्दा जो हे वो वाको मॅटर्को रूप हे. मानें वो स्पिरिट् भी हे और मॅटर् भी हे.

अब वो जड़ भी हे, जीव भी हे. यामें देखवेकी बात हे के ''**जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मतः**'' (त.दी.नि.१।३०) महाप्रभुजी केह रहे हें अव्यवहार्य ब्रह्ममें जड़-जीव-अन्तरात्माको विभाग नहीं हे. पर ब्रह्म जा बखत व्यवहार्य बन रह्यो हे, वा बखत वाके तीन प्रभेद हो रहे हें. ''**जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मतः**''

अब थोड़े अपने वाल्लभ वेदान्तके ॲन्गल्सु देखो तो बहुत स्पष्ट बात हो रही हे के जड़-जीव मज़्दाको मॅटरवालो पहेलु हे. अहुराको स्पिरिट्वालो पहेलु हे, वो आत्मा हे. अन्तरात्मावालो पहेलु हे. और वाको क्षाथ्रवैर्य वॉहुमनो, ब्रह्मा और शिव को रूप हे. वो हउर्वतात् भी हे और अमृत भी हे. अब अपने ब्रह्मकी कौनसी क्वॉलिटी हे जो यामें अपन् केह नहीं रहे हें, या कही नहीं गई हे.

अपने यहांके ब्रह्मके जो भी सॅलियन्ट् फीचर्स् हें वो तो यहां इन्कॉर्पोरेट् हो रहे हें. या स्थितिमें एक 'अहुरा' शब्दकी मिर्ची लगानी, अब जाकु मिर्ची लगती होय वाकु मैं कहूं के अलबर्ट् पिन्टोकु गुस्सा क्यों आता हे? अरे कायकु खाली-पीली गुस्सा करो हो? बात तो वही कर रहे हे पर शब्द अलग वापर रहे हे. अब ब्रह्मके जैसो ही अहुरमज़्दा होय तो ज़रथुष्ट्र ब्रह्मवादी भयो के नहीं!

([२] सृष्टिकी उत्पत्तिकी दृष्टिसु)

अपने यहां वा ब्रह्ममेंसु **''सृष्टेः उक्ताः अनेकधाः''**(त.दी.नि.१।४०) कह्यो हे. जहां **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोः अग्निः, अग्नेः आपः, अद्भ्यः पृथिवी. पृथिव्याः ओषधयः, ओषधीभ्यो अन्नम्, अन्नात् पुरुषः. स वा एष पुरुषः अन्नरसमयः''** (तैत्ति.उप.२।१।१) ये क्रमिक सृष्टिको प्रकार बतायो हे. कहीं अक्रमिक सृष्टिको प्रकार भी बतायो हे. अचानक वामेंसु बिग-बॅन्गकी तरेह **''यथा अग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगाः व्युचरन्ति, एवमेव अस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः, सर्वे लोकाः, सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति''** (बृह.उप.२।१।२०) वो बिग-बॅन्ग् थियरीकी तरेह एक्सप्लोज़न्की थियरी भी बताई हे. वो क्रमिक नहीं हे. साथ-साथ ही पैदा भयी हे. वो भी प्रकार बतायो हे.

एक प्रकार ये भी बतायो गयो हे के सब कुछ ब्रह्मने प्रकट कियो, पर नामरूपमें वाको विभाजन नहीं कियो होवेके कारण **''बृहत्वाद् ब्रह्मणत्वाद् च यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञितम्''** (विष्णु.पुरा.१।१२।५५) यह अपने पुराणन्‌को सिद्धान्त हे. याकु शंकराचार्यजीने भी मान्य कियो हे. अपने महाप्रभुजीने भी मान्य कियो हे. **''बृहत्वाद् ब्रह्मणत्वाद् आत्मैव ब्रह्मेति गीयते''** उनके यहां(शंकराचार्यजी) 'आत्मा'को मतलब जीवात्मा ही ब्रह्म हे. **''जीवो ब्रह्मैव नापरः''** हे. अपने यहां ब्रह्म आत्मा हे. क्योंके वो **''य आत्मनि तिष्ठन् आत्मानम् अन्तरो यमयति, यस्य आत्मा शरीरं, यं आत्मा न वेद एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः''** (शत.ब्रा.१४।५।३०) हे. वहां जीवात्माकु तो नहीं कह्यो जा रह्यो हे. जीवात्मामें रही भयी कोई आत्माकु 'आत्मा' कह्यो जा रह्यो हे. ब्रह्मसूत्रको और महाप्रभुजीको एक ॲन्गल् ये हे जो मूलमें मध्वाचार्यजीसु आयो भयो हे.

अपने यहांके सब नाम, मध्वाचार्यजी तो वा ॲक्स्टेन्ट् तक जावेकु तैयार हें के समुद्रकी गर्जना हो रही हे वो भी विष्णुको नाम हे. घों-घों, जो समुद्र गर्जतो रहे हे वाको अर्थ भी विष्णु हे मानें ध्वनिमात्रको अर्थ विष्णु हे. वो बात अपनेकु भी मान्य हे. क्योंके **''सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वा अभिवदन् यद् आस्ते''** (चित्यु.१२।७,महावा.उप.) अपनो वेद ये केह रह्यो हे के सर्व नाम-रूप वाके धारण किये भये हे. नामरूपको विभाजन नहीं भयो थो वा बखत ब्रह्मकु प्रॉब्लेम् हती, ऐसो बतायो जाय हे. ये बात आरण्यकमें आयी हे. ब्रह्मने सबसु पहेले क्या कियो? नाम-रूपविभाजन करने है तो उनको प्लेसमॅन्ट् कहां होनो चईये? तो वाने द्यौ और भूमि में विभाजन कियो. **''द्यावाभूमी जनयन् देवः एकः''** (ऋक्संहि.१०।८१।३) एक द्युलोक बनायो एक भूलोक बनायो. अपने वेदको पॅसेज् वाके पॅरेलल् यहां एक पॅसेज् आ रह्यो हे के अहुरमज़्दामेंसु अचानक भूमि प्रकट भयी और अहुरमज़्दा द्युलोकवासी

हो गयो. वो तत्त्व द्युलोकमें या तरीकेको हे और भूलोकमें वोही तत्त्व या तरीकेसु आ रह्यो हे. अपन् यों समझ सकें के महाप्रभुजी जा तरेहसु केह रहे हें के ब्रह्मकी तीनकोटि हें. एक स्वरूपकोटि कारणकोटि और कार्यकोटि हे. स्वरूपकोटि अहुर्मज़्दा हे जाके चार डायमॅन्शन्स् हें. वॉहुमनो क्षाथ्रवैर्य अमरतात् हउर्वतात् मानें द्युलोक. जो द्यु और भूमि के बीचमें खाली स्पेस्कु 'अन्तरिक्ष' कहे हें. वा द्युलोकमेंसु एक भूलोक प्रकट भयो. वो पृथिवी हे. **"द्यावाभूमी जनयन् देवः एकः"** (वहीं)

(सृष्टिप्रक्रियामें राहुल सांकृत्यायनकी वैदिक तादात्म्यवादी दृष्टिसु विरोधी प्रत्ययवादी दृष्टि)

या द्युलोकके लिये पाछो जब प्रश्न आयो, वेदमें याज्ञवल्क्य और गार्गी के संवादमें आवे **"कस्मिन्नु खलु आपः ओताः च प्रोताः च...कस्मिन्नु खलु...कस्मिन्नु खलु..."** (बृह.उप.३।६।१) अचानक याज्ञवल्क्यकु गुस्सा आ गयो के **"स होवाच : गार्गि! मा अतिप्राक्षी मा ते मूर्धा व्यपप्तदन् अतिप्रश्न्यां वै देवताम् अतिपृच्छसि"** (बृह.उप.३।६।१) एक रॅन्ज् तक प्रश्न हो सके हे. वा रॅन्ज्के बाद प्रश्न नहीं हो सके.

अपने हिन्दूधर्मके खास करके वैदिकधर्मके जानी दुश्मन् बहोत बड़े स्कॉलर् राहुल सांकृत्यायन खुद ब्राह्मण हते. रामानन्दी हते. हमारे दादाजीके परम मित्र भी हते. दोनों रातकु वरली समुद्रके पालपे जाके बैठते. दोनोंमें खूब झगड़ा भी होतो और दोस्ती भी हती. इन्सिडॅन्टली हिन्दीमें दर्शन पढ़वेके शौकमें मोकु सबसु पहेले राहुल सांकृत्यायन पढ़वेकी इच्छा भयी. दादाजी बहोत गुस्सा हो गये के "राहुल सांकृत्यायनकु पढ़-पढ़के तेरी मति भ्रष्ट हो जायेगी." मैने कही के "मजा आवे तो वाको क्या करनो?" मैं दादाजीसु छिपके चुपचाप पढ़तो. क्योंके दादाजीकु राहुल सांकृत्यायनने एक दिन ऐसे

केह दी के "दीक्षितजी महाराज! जब-तक मोकु गौमांस मिले तब-तक मैं दूसरा मांस नहीं खाता हूं." दादाजीने कही के "या दुष्टसु अब दूर रेहनो." वा दिनसु दोनोंकी दोस्ती खतम हो गई. राहुल सांकृत्यायन गाली दे वो मोकु भी पसन्द नहीं आवे पर वाकी स्कॉलर्शिप बहोत मीठी हे.

वाकी एक टेक हती के हिन्दीभाषा कभी इतनी दरिद्र नहीं होनी चईये के वामें कोई विषय समा न सके. सौसु ज्यादा वाने पुस्तकें लिखीं. और पूरे अरेबिया, ईजिप्त, बॅबिलोनिया, मॅसोपोटेमिया या सबकी हिस्ट्रीको तो वो इतनो जानकार हतो के तीन हजार पृष्टकी वाने हिस्ट्री लिखी हे जो उन लोगनकु भी पता नहीं होयगी. चौबीस भाषाको ऐसो जानकार हतो के जैसे मातृभाषाकी तरेह बोले. मानें दादाजीकी लायब्रेरीमें भी सारे बुद्ध धर्मको बसायो भयो साहित्य, राहुल सांकृत्यायनको हे. दादाजीने वे पुस्तकें मोकु दीं के बेटा इन पुस्तकनकु संभालके रखियो, बहुत कीमती पुस्तकें हें. वो तो दादाजीको गौमांसके बारेमें झगड़ा हो गयो. पर मेरेकु कोई गौमांसको प्रश्न हतो नहीं क्योंके मैने देख्यो नहीं कभी राहुल सांकृत्यायनकु. अब खातो होयगो वामें क्या करें! वा प्रश्नको मेरो बहुत झगड़ा नहीं भयो. पर वाकी स्कॉलर्शिप् मोकु पसन्द आवे. मैं वाकु पसन्द करूं तो भी वो एक बहुत गन्दी बात केह हे के "ब्राह्मणनने धाक-धमकीसु अपनो मत औरतनकु कबूल करवायो."

(सृष्टिमें नाम-रूपको तादात्म्य वेददृष्टिसु)

दरअसल ऐसी बात नहीं हे. मिस्-इन्टर्प्रिटेशन् हे. **"मा अतिप्राक्षी मा ते मूर्धा व्यपप्तदन्"** (वहीं) याज्ञवल्क्य केह रहे हें. यापे राहुल सांकृत्यायन केह रह्यो हे पर ऐसी बात नहीं हे. वो एक लॉजिककी बात हे. वो लॉजिक् कौनसो हे वाकु ध्यानसु समझो. **"व्याघातावधिराशंका तर्कः शंकावधि स्मृतः"** (न्याय.कुसु.) तर्क तुम कब तक कर सको

हो? वदतोव्याघात नहीं होवे तब तक शंका करी जा सके और तर्क करे तो शंका होवे ही है. प्रत्यक्ष अनुभूति होय, आनुमानिक अनुभूति होय, श्रौत अनुभूति होय, शाब्दिक अनुभूति होय. वा अनुभूतिमें अपन् जब तर्क कर रहे हें, तर्क तो लुढ़कते खिलोनाकी तरेह हे के कहीं भी लुढ़क जाये. तर्कको कोई लाग लपेट तो हे नहीं. कोई भी एक्स्टॅन्ट् तक तर्क जा सके. पर तर्कको बेसिक् रोल क्या हे? **"तर्कः शंकावधि स्मृतः"** जो अनुभूति हे वाकु हर बखत रेडीमेड् ऑथेन्टिसिटी मानके मत चलो.

अपनेकु भी कभी अनुभूतिकु शंकासु देखनी चईये. क्यों? कब अपनेकु यथार्थ ज्ञान हो रह्यो हे के अयथार्थ ज्ञान हो रह्यो हे, कौनसे ज्ञानमें अपने संस्कार भारी ज्यादा पड़ रहे हे और कौनसे ज्ञानमें अपनी सब्जॅक्टिव् फीलिंग् ज्यादा काम कर रही हे और ऑब्जेक्टिव् कॅरेक्टर्कु डॉमिनेट् कर रही हे और कौनसे अनुभवमें वाको ऑब्जेक्टिव् कॅरेक्टर् अपनी सब्जॅक्टिव् फीलिंग्कु डॉमिनेट् करके खुद अपनी बात जोर-जबरदस्तीसु मनातो होय.

जैसे एक सामान्य उदाहरण आपकु दऊं. अपन् यहां शान्तिसु बैठे हें. अचानक बद्दल गरजवेकी आवाज़ आयी. अपन् सुननो नहीं चाह रहे हें. अपनी सब्जॅक्टिव् एक्स्पॅक्टेशन् ऐसी नहीं हे. पर बद्दल गरजवेकी आवाज आयी और वा गरजके कारण ये सारी सब्जॅक्टिव् फीलिंग्के अपन् ब्रह्मविचार कर रहे हैं वाके बजाय तुरत अपनेकु लगे के बद्दल आ गये क्या? वाको विचार करनो ही पड़ेगो. वहां ऑब्जेक्ट् अपने सब्जॅक्टिव् अवॅयर्नेस्कु डॉमिनेट् कर रह्यो हे वा साउन्ड्के कारण. धूम-धड़ाका भयो नहीं बद्दलकी गरजको और वो ऑब्जेक्ट् अपने सब्जॅक्टिविटीके ऊपर हावी हो जाये. कई बखत अपनी सब्जॅक्टिविटी ऑब्जॅक्टिविटीके ऊपर हावी हो जाये, ये तो दोनोंन्की कुश्ती हे, सब्जॅक्टिविटीकी और ऑब्जॅक्टिविटीकी, कभी वाको

हाथ भारी पड़ जाये, कभी याको हाथ भारी पड़ जाये.

मैं वाको अक्सर एक फनी उदाहरण देतो रहूं के नाशिकमें मैंने निर्जला एकादशी करी. दिनभर तो निकाल लियो रातकु ऐसी प्यास लगी के मैंने कही के "आज तो मर गये". जहां मैं रेहतो थो वो अगासीके बाजूवालो रूम् हतो. वहां मथनी तो हती नहीं. मैंने कही के "क्या करुं? टंकी रखी हती वाको पानी पी लूं." मैं रूम्मेंसु बाहर निकल्यो तो वा बखत मैं आठ-नौ बरसको हतो, टंकीपे पानीके टपकवेसु वामें काई जमी थी. मोकु भालू दीख्यो. अरे भई, भालू यहां कहांसु आ गयो! फिर जाके रूम बन्द करके बैठ गयो. भालू आ गयो. अब वो क्या हतो? प्यासके कारण मेरी चित्तकी स्थिति विक्षिप्त हती. अब वो अकल काम ही नहीं कर रही हती के काई दीख रही हे रातमें भालूके जैसी. ऍक्च्युअली भालू नहीं हतो. दो बखत मैंने जाके देख्यो के भालू गयो तो कमसुकम मथनी नहीं हे तो टंकीको जल तो पी लऊं. जब बाहर जाऊं तो भालू दीखे और फिर वापिस आके रूममें बैठ जाऊं. अब वो क्या हे के ऑब्जॅक्टिविटीके ऊपर मेरी सब्जॅक्टिविटी हावी हो गयी.

ये तो कुस्ती हे अपनी सब्जॅक्टिविटी और बाह्य जगत्की ऑब्जॅक्टिविटीकी. जाको भी हाथ भारी पड़ जाये. कभी पत्नीको हाथ भारी पड़ जाये कभी पतिको हाथ भारी पड़ जाये. जो दब जाये सो दब गयो जो नहीं दब्यो सो जीत गयो. ये तो कुस्तीको सिद्धान्त हे. वो ऑब्जॅक्ट् और सब्जॅक्ट् के बीचको भी याही तरीकेको हे.

([3] सृष्टिमें नाम-रूपकी तादात्म्यदृष्टि)

एक बात ध्यानसु समझो सो जो भूमि हे वहां उनने नाम

और रूप के विभाजन करके पैदा करी वामें नाम कभी रूपपे हावी हो जाये, रूप कभी नामपे हावी हो जाये. कल जो मैंने आपकु बात बताई के सारे ऑनोमोटोपोईयाके जो टर्म्स् हें, वो रूपको नामपे हावी होनो हे.

मोटरबाईक् फट-फट चल रही हे. बच्चाकु पहेली इन्स्टिंक् ऐसी होवे हे के मोटरबाईक्कु 'फटफटी' कहे हे. कुत्ता भाउ-भाउ भौंक रह्यो हे तो पहेली इन्स्टिंक् अपनेकु ये होवे हे के याको नाम 'भाउ-भाउ' हे. वहां ऑब्जेक्टिव् सब्जॅक्ट्पे भारी पड़ रह्यो हे. रूप नामपे भारी पड़ रह्यो हे.

पर जाकु रसॅल् वगैरह 'कन्स्ट्रक्टिव् टर्म्' कहे हे और वा कन्स्ट्रक्टिव् टर्म्के कारण जब अपन्ने एक टर्म् अपने भीतर कन्स्ट्रक्ट् करी और वा नामकु जब अपन् रूपको सम्बोधन करवे लगें, वासु सम्बोधन करवेके बाद अपनेकु निरन्तर ऐसो लगे हे के ये रूप वो ही हे. वो जो तादात्म्य आ रह्यो हे, जो अपन्ने माईन्ड्में कन्स्ट्रक्ट् कियो हे, वा कन्स्ट्रक्टेड् रूपके साथ बाह्यरूपको तादात्म्य आ रह्यो हे वो क्लीयर्कट् उदाहरण हे या बातको के अपनो नाम रूपपे हावी हो गयो हे. जा तरीकेको रूप हे वा तरीकेके रूपकु अपने सामने आवे नहीं दे.

हमारे विदुजीजीकु एक वैष्णव बाहर लेके गई और टॅक्सीवालेने बड़े मन्दिरमें पांजरापोललेन्के बाहर छोड़ी. टॅक्सीवालेने कही के "अब अन्दर जाओ." तो वैष्णवने कही के "नहीं नहीं अन्दर लेलो ना! दरवाजा तो अन्दर हे." अब टॅक्सीवालेकु ये प्रॉब्लेम्के अन्दर घुसे तो फिर भीड़-भाड़के कारण बहार निकलनो बहोत मुश्किल. वाने कही के "इतनो सोही तो डिस्टेन्स् हे चले जाओ." वैष्णवने कही "कैसे चले जायें टॅक्सी करी हे तो!" वाने कही के "सब आदमी

जा रहे हें.'' तो वैष्णवने कही के ''ये कोई आदमी हें!'' टॅक्सीवालो डर गयो. वो सीधो बगीचामें आके छोड़ गयो. जब विदुजीजी उतरवे लगे तो वो बोल्यो के ''बहनजी, खाली एक खुलासा कर दो के आदमी नहीं हो तो कौन हो आप?'' वो टॅक्सीवालो बोल्यो के ''सब आदमी जा रहे हें तो आपकु आपत्ति क्या हे?'' साथमें वैष्णव हती वा बिचारीको भाव हतो के ये कोई आदमी थोड़े ही हें! ये तो बेटीजी हें. वाने कही के ''आ कोई माणस छे!'' वो टॅक्सीवालो डर गयो के माणस नथी तो कौण छे! लई जाओ अन्दर. बगीचा तक अन्दर आके छोड़ गयो.

रूपपे नाम भारी पड़ रह्यो हतो जब प्रश्न कर दियो, शंका कर दी के ''आ माणस नथी'', तो आदमी घबरा जाये के ना जाने पाछे कौन हे. दीख तो रह्यो हे आदमी पर वास्तवमें आदमी नहीं होय तो लेनेके देने पड़ जायें ना! तो है फिर कौन?

अपन् समझ सकें वा बातकु के कई बखत कन्स्ट्रक्टेड् नाम मानें विदुबेटीजी बराबर मानव. वो अमानव विदुबेटीजीके रूपपे भारी हो जाये. यदि अमानव हे तो याको ताल-मेल कैसे बैठानो! ये आपसमें एक-दूसरेकु दबावेकी सृष्टिमें प्रक्रिया हे.

वो प्रक्रियाके तहेत द्युलोक एक अलग भयो हे. वो प्रक्रिया सृष्टिमें भूमिपे चल रही हे. द्युलोकमें चल रही हे.

(४ विद्या-अविद्या-श्रीकी दृष्टिसु)

वाकेलिये वहां एक स्पेन्तामन्यु और एक अंग्रमन्यु प्रकट होवे हे. अब ये स्पेन्ताको संस्कृताईजेशन् करो तो स्फीतमतिके बहुत पास जा रह्यो हे. उतनो पास नहीं जा रह्यो हे के फॉनेटिकली अपन् यो मानें के स्फीत स्पेन्ता भयो. पर मीनिंग्वाईज् 'स्पेन्ता'को मतलब

स्फीत हे. एक मेइन्यु हे. मन्यु तो संस्कृत शब्द हे. हर व्यक्ति जो संध्या करे **''मन्युरकार्षीत् नाहं करोमि मन्युः करोति मन्युः कर्ता मन्युः कारयिता एतत्ते मन्यो मन्यवे स्वाहा''** (महा.नारा.उप.३।१८।३). एक तरेहके दो मेइन्यु हें और 'मन्यु' शब्द पाछे मनसु पैदा भयो हे. मनको डिराइवेटिव् हे मन्यु. जैसे 'मनु' शब्द मनको डिराइवेटिव् हे ऐसे 'मन्यु' शब्द भी मनको डिराइवेटिव् हे. एक स्फीत माईन्ड् हे.

दूसरो अंग्रमन्यु हे. वो अंग्रेजमति नहीं हे. पर उग्रमति हे. एक उग्रमति हे एक स्फीतमति हे. वो उग्रमति पृथिवीमें प्रकट भयी हे. थोड़ोसो अपने महाप्रभुजीके ॲन्गल्सु देखो **''विद्याऽविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते, ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं च अपि अनीशता''** (त.दी.नि.१।३१) सारो दुःख और सारी अनीशता इन दो मेइन्युके या विद्या-अविद्याके जो आपसमें संघर्ष चल रहे हे उन संघर्षके कारण अपनेमें दुःख और अनीशता प्रकट हो रही हे. मोकु एक शेयर याद आ गयो. ''अपनी नज़रोंमें गुनहगार न होते क्योंके दिल ही दुश्मन हे मुखालिफके गवाहोंकी तरह.'' क्योंके दिल अपनो दुश्मन हे के कभी वामें स्पेन्तामन्यु प्रकट हो जाये और कभी अंग्रमन्यु प्रकट हो जाये. कभी विद्या प्रकट हो जाये. कभी अविद्या प्रकट हो जाये. लाचारी मनुष्यकी ऐसी हे के अविद्याकु निवृत्त करवेके लिये विद्या चईये हे और वा विद्याकु पाछी अविद्या चईये.

मैंने कल आपकु बात बताईके पञ्चपर्वा विद्यामेंसु एक भी विद्या ऐसी नहीं हे के जाकु पंचपर्वा अविद्यामें कोई स्टॅन्डिंग् सपोर्ट नहीं चईतो होय! **''विद्यां च अविद्यां च यः तद् वेद उभयं सह''** (केनोप.९।११) ब्रह्मकु विद्या और अविद्या दोनोंके साथ देखें. **''अन्धतमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते, ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायां रताः''** (ईशा.उप.९।११) केवल अविद्यामें रत अन्धःतममें जायगो पर

केवल विद्यामें रत वासु भी ज्यादा घोर अन्धःतममें जायगो, यह उपनिषद् केह रह्यो हे.

अपनेकु समझ कैसी होनी चईये? "**विद्यां च अविद्यां च यः तद् वेद उभयं सह, अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते**" (वहीं) अविद्या और विद्या दोनोंको एक रोल् हे. भगवान्ने जो सृष्टिमें (भूलोकमें) पैदा कियो हे वो अंग्रमन्यु और स्पेन्तामन्यु को रोल् हे.

वाके साथ बीचमें एक आरमाईती भी हे. अब वो पारसीबाबा केह रह्यो हे के ये लक्ष्मी हे. 'आरमाईति'को संस्कृताईज़ेशन् आर्यमति. 'आर्यमति' अपनी लक्ष्मी हे. पारसीबाबा केह रह्यो हे के वो आर्यमति विष्णुकी लक्ष्मी हे. अपनेकु लगे के विष्णु वहां बैठ्यो भयो हे और वाकी लक्ष्मी यहां कहांसु आ गई? ध्यानसु देखो के अपन् भी केह रहे हें के लक्ष्मी तो सागरमेंसु प्रकट भयी हे चन्द्रमाकी बहेन हे. सागरमेंसु प्रकट भयी लक्ष्मीने, और कोई देवके बजाय, विष्णुके कंठमें वरमाला डाली. विष्णुकु माला डाली करके वो वैकुण्ठाधिपतिकी स्वामिनी भयी हे.

अब वो बेसिकली अपने या भूलोकके सागरमेंसु प्रकट भयी आर्यमति हे. वो आर्यमति जामें होय वाको स्पष्ट प्रमाण क्या हे वाकु ध्यानसु समझो. श्रीपतिके तिरुपति भले वहां दक्षिणमें बिराजतें होंय, पर हर नामके साथ 'श्री' तो लगे हे के नहीं! वो कौनसे ऑक्स्पॅक्टेशन्सु श्री लगे हे? मानें कोईकु बदमाश कहोगे तो बदमाशी करवेमें वाको संकोच हट जायगो. पर कोईकु सज्जन कहोगे तो बदमाशी करवेमें वाकु पहेलेसु थोड़ी तो लज्जा आयेगी ना! पहेलेसु ही हरेककु श्री श्रीमति सुश्री कहो तो वाकु लगेगो के अब बदमाशी करवेमें, अनार्यमति वापरवेमें थोड़ो संकोच तो आयेगो. 'श्री' केह

रहे हो तो फिर कोई भी 'अश्री'को काम करवेके लिये वाकु तकलीफ होयगी. वो बात अपनेकु मज़ाककी लग रही हे पर पारसीमें आंग्रेमेइन्युकु 'अहीमना' भी कह्यो गयो हे.

'अहीमना' मानें अश्रीरूपमन. आंग्रेमेइन्यु पाछो अहीमना हे, अश्रीमन हे. अनार्यमतिको रूप हे. इन सब बातनकु जब अपन् अलगसु देखें तो अपनेकु लगे के अपनेसु कौनसे अर्थमें ये बात अलग जा रही हे, सिवाय एक 'असुर' शब्दके. अपने यहां इन्द्रकु 'वृत्रघ्न' कह्यो गयो हे. उनके यहां 'वैरथ्रेघ्न' शब्द आयो हे. कितनो सन्निकट हे!

([४] हउर्वतात् (सर्वता) और अमृतता की दृष्टिसु)

जो बात बतानो चाह रह्यो हूं आपकु खास. ये अमृतता और हउर्वतात् ये ब्रह्मवादकु समझवेको की-कन्सेप्ट् हे. ऊपर जो मैंने आपकु बतायो. हउर्वतातके लिये गल्तीसु स्वरतात निकल गयो. पर वास्तवमें वाको अर्थ हे सर्वता. अमृतता और सर्वता. सर्वकाम सर्वगंध सर्वरूप सर्वरस ब्रह्मकु कह्यो हे. वो सर्वता "**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं, स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो**" (छांदो.उप.६।८।७) वो सर्वताकु 'हउर्वतात्' कह्यो गयो हे और अमृतता. वहां वाकु 'अमृत' भी कह्यो जा रह्यो हे. "**इदम् अमृतम् इदं ब्रह्म इदं सर्वम्**" (बृह.उप.३।५।१) "**यः सर्वेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुः यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतानि अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः**" (बृह.उप.३।७।१५) वाकी एक सर्वता हे और अमृतता भी हे.

अब ये पॅराडॉक्स् हे के सर्वता अमृत नहीं हे, मर्त्य हे. ये देखो, ब्रह्मवादकु समझवेको ये की-कन्सॅप्ट् हे. सब कछु मर्त्य होते भये भी हे तो वो अमृतको ही रूप. अमृत सर्वमर्त्यरूप बन्यो

हे. ये तो ब्रह्मवाद लप्प-धप्प आ गयो. अमृत सर्वरूप बन्यो हे. सर्व मर्त्यरूप बन्यो हे. जाकु अपनूने **''द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं च अमूर्तं च, मर्त्यं च अमृतं च, स्थितं च यत् च, सत् च त्यत् च''** (बृह.उप.२।३।१-६) वो अमृत भी हे और मर्त्य भी हे. सर्वतामें वो सारी बात आ रही हें जो उपनिषद् इन्क्लूड् कर रहे हे. **''सत् च त्यत् च अभवत्. निरुक्तं च अनिरुक्तं च. निलयनं च अनिलयनं च. विज्ञानं च अविज्ञानं च. सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत्''** (वहीं) और वो मर्त्य रूपी अपोज़िट् नेचर्की सर्वता हे वो भी अमृत ही बन्यो हे. वो भी वाको एक फॅसेट् हे.

अहुरमज़्दाके ये दो फॅसेट् हें के वो अमृत भी हे और वो सर्वरूपमें मर्त्य भी बन रह्यो हे. याकु महाप्रभुजी विरुद्धधर्माश्रय कहेंगे. सर्व हे तो अमृत नहीं हो सके हे, अमृत हे तो सर्व नहीं हो सके हे, ये अपनी लॉजिक् अपनेकु कहेगी. महाप्रभुजी केह रहे हें के या लॉजिक्की ॲप्लिकेशन् वहां नहीं हे. **''नहि विरोध: उभयं भगवति अपरिगणितगुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीन-विकल्प-वितर्क-विचार-प्रमाणाभास-कुतर्कशास्त्र-कलिलान्त:करणाश्रय दुरवग्रहवादिनां विवादानावसरे''** (भाग.पुरा.६।९।३६) वो विवादके अनवसर, अहुरमज़्दामें सर्वता और अमृतता विरोधी नहीं हें. वा डिवाइडर् लाईन्के नीचे भूलोकमें ये आंग्रेमेइन्यु स्पेन्तामेइन्यु एक-दूसरेके विरोधी हें. या ॲन्गल्सु जा बखत अपन् देखें तो कमसु कम मेरो मन तो कबूल करे के ज़रथूष्ट्र श्रौत हतो के अश्रौत हतो यामें कोईकु संदेह हो सके हे पर ब्रह्मवादी हतो यामें तो मोकु कोई संदेह नहीं हे. निश्चित ब्रह्मवादी हतो.

ये संक्षेपमें अपनी उपक्रमकी बात, ब्रह्मवादके जो मल्टीपल् फॉर्म्स हें वो मैने आपकु बताये.

(विरोधाभासी अपोह्य और अभिधेय रूपको समन्वय लीलादृष्टिसु)

सो अपनूने जैसे निर्णय कियो थो, वा क्रममें अभी तक अपनूने अपोह्य ब्रह्मवाद और अभिधेय ब्रह्मवाद को स्वरूप देख्यो. खास करके बौद्ध और ज़रथुष्ट्र. वा परम्परामें शांकर और रामानुज देखे. केवल ब्रह्म अपोहनविधिसु ही बोल्यो जा सके हे और केवल ब्रह्म अभिधानविधिसु ही बोल्यो जा सके हे, वो ब्रह्मवादके फॉरमेट् अपनूने देखे.

जैसेके मैने आपकु बतायो के वेदान्तदेशिकने वामें अपनी एक सूझ बताई. क्योंके अन्तमें श्रुति भी **'''न'इति 'न'इति''** केह रही हे तो अपोहन तो कर रही हे. वेदान्तदर्शन श्रुतिके वचनकी व्याख्याके लिये प्रवृत्त भयो पर शास्त्रत: कोई भी वेदान्ती अपनेकु 'वेदान्ती' केहके अपोह्यके साथ उतनो द्वेष तो नहीं कर सके के जब श्रुति **'''न'इति 'न'इति — 'नहि एतस्माद्'इति 'न'इति अन्यत् परम् अस्ति!''** (वहीं) अपोह्यको रोल् वेदान्तमें तो हे. बौद्धन्के साथ थोड़ो झगड़ा हे वा लिये शब्दत: अपन् मान्य नहीं करें, वो तो ठीक हे. पर फन्क्शनली तो वो श्रुतिमें और वेदान्तमें अवेलेबल् हे. वाको अपन् इन्कार नहीं कर सकें.

पर शांकरनूने जो स्टॅन्ड् लियो के वासु अपोह्य ही हे वो अर्थ रामानुजकु मान्य नहीं हतो करके वेदान्तदेशिकने कही के **''परिच्छित्त्यभावप्रयुक्ता''** वो परिच्छित्त्यभावसु प्रयुक्त हे. **''वाच्यत्वं वेद्यतां च स्वयम् अभिदधति ब्रह्मणो अनुश्रवान्ता:''** (वहीं) प्रतिपादिका श्रुति हे वो ब्रह्मके वाक्चित्ताऽगोचरताकी प्रतिपादिका नहीं होके ब्रह्मके परिच्छेदके अपोहनकी वाचक श्रुति हे.

वो बात अपन् देख सके हें के बादरायणसूत्रमें भी **''प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूय:''** (ब्र.सू.३।२।२२) ये बात कही

हे और भागवतमें भी ये बात बताई के **"मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य अपोह्यते हि अहम्"** (भाग.पुरा.११।२१।४२) 'अपोह' शब्दसु अपने वैसे बाप मारेको वैर तो नहीं हे क्योंके अपनो भागवत सर्वपरमप्रमाण और संशयनिराकर्ता शास्त्र हे. भगवान् केह रहे हें "जाको तुम अपोहन कर रहे हो 'तो मीच आहे'" अपन् समझ सकें के या शब्दसु या शब्दकी जो प्रक्रिया हे वा प्रक्रियासु दोनोंसु अपनेकु द्वेष नहीं हे.

अब अपन् वाको हाईप् नहीं करें वो तो बुद्धधर्मके साथ झगड़ाके कारण. उनने भी अपने साथ कियो हे तो अपन् भी उनके साथ कर रहे हें. ठीक हे झगड़नो थोड़ो अच्छी बात हे. **"न एतद् एवं यथाऽऽत्थ त्वं यद् अहं वच्मि तत् तथा एवं विवदतां हेतुः शक्तयो मे दुरत्ययाः"** (भाग.पुरा.११।२२।५) ये असलमें तुम्हारो अपराध नहीं हे ये मेरी शक्तिकी लीला हे. ये भगवान्की शक्तिकी लीला हे के अपन् झगड़ रहे हें तो झगड़नो चईये. व्यर्थमें भगवान्की शक्तिको स्वीच् ऑफ् क्यों करनो! वाकु ऑन् रखनो. जब तक भगवान् करनो चाहें तो करवे दो अपन् कायकु ऑफ करें! और भगवान् या सब स्वीचनकु ऑफ् करवे जायेंगे तो वाको मतलब उनको प्रलय करनो हे. लीलाके अन्तर्गत ये अपनो सिद्धान्त हे.

(श्रौत ब्रह्मवाद: वरणके अनुरूप ब्रह्मको विवरण)

वामें अपन् ये बात अच्छी तरेहसु समझ सके हें के अपने लिये ब्रह्म अपोह्य भी हे और अभिधेय भी हे. वो बात महाप्रभुजीने स्वीकारी हे के **"ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचित्"** (पत्रा.३) मतलब ब्रह्म अनिर्वचनीय हे. ये शंकराचार्यजी ही नहीं केह रहे हें पर महाप्रभुजी भी केह रहे हें. ब्रह्मवादमें क्यों निरुक्ति संभव नहीं हे?

क्योंके निरुक्ति करवेके लिये पश्चिमी क्राईटेरिया देखें तो निरुक्तिको पॅरामिटर् 'जीनस् कम् डिफरॅन्सिया' हे. कोई सामान्य लक्षण बोधनपूर्वक कोई व्यावर्तक लक्षण बताओ तो 'लक्षणवाक्य' केहवावे. अपने यहां वाको ऐसो कह्यो गयो हे **"असाधारणधर्मबोधकं वाक्यं लक्षणम्"** जो "अतिव्याप्ति-अव्याप्ति-असंभव-दोषरहितम् असाधारणधर्मबोधकं वाक्यं लक्षणम्" असाधारणब्रह्मको धर्म कुछ हे ही नहीं क्योंके कोई चीज ब्रह्मके अलावा होय तो-तो ब्रह्मको असाधारणधर्म हो सके, पर सर्वनाम सर्वरूप सर्वकर्म हे वे सब ब्रह्मके धर्म हें, तो ब्रह्मको कोई असाधारण धर्म तो हो ही नहीं सके, तो ब्रह्मको लक्षण हो कैसे सके?

पर हो नहीं सके हे या सिद्धान्तको अपन् पकड़के चलें तो प्रॉब्लेम् क्या हो रही हे? श्रुति खुद केह रही हे के **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व तद् 'ब्रह्म' इति"** (वहीं) श्रुति तो ये लक्षण दे रही हे. तो अपन् कहें के अपनकी खोटी बुद्धि यामें मत चलाओ ब्रह्म अवाच्य भी हे, अपोह्य भी हे और वाच्य भी हे. ये वाल्लभ स्टॅन्ड् हे.

कल अपनने विस्तृत चर्चा करी के वाच्य भी हे और अवाच्य भी हे; अपोह्य भी हे और अभिधेय भी हे. ये कोईकु विरुद्धधर्माश्रयताके ढंगसु समझमें आतो होय तो वैसे समझा देंगे. कोईकु विरुद्धधर्माश्रयता केहवेपे लग रह्यो हे के तुम दार्शनिक भाषा नहीं बोल रहे हो, लॉजिकल् भाषा नहीं वापर रहे हो, तुम मिस्टिकल् भाषा वापर रहे हो तो अपन् कहेंगे ऑल्राईट् विरुद्ध नहीं हे भिन्न हे. कोईकु भिन्नतापे भी द्वेष आतो होय तो अपन् कहेंगे के सर्वरूप सर्वकर्मा हे. **"नहि विरोध उभयं भगवति अपरिगणितगुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीन-विकल्प-वितर्क-विचारप्रमाणाभास-कुतर्कशास्त्र-कलिलान्तःकरणा**

श्रय-दुरवग्रहवादिनां विवादानावसरे'' (वहीं) चलो खतम करो बात. यामें व्यर्थमें संकोच नहीं करवेको हे. तुमकु जैसे समझमें आवे वैसे हम समझावे तैयार हें. क्योंके हम वाकु न लक्षणविधिसु समझे हें, न हम वाकु समझें हें रॅशनिलिस्ट्. जैसे रॅशनिलिस्ट् हर चीजकु डिफाईन् करें और समझ जायें और लक्षण नैयायिक लोग समझा दें के लक्षण समझ जाओ तो तुमकु समझमें आ जायेगो. अपनो वा बारेमें दुराग्रह नहीं हे.

अपन् यों भी नहीं कहें के लक्षणसु समझमें नहीं आयेगो. अपन् वाकु ओपन् सीक्रेट् रखें के लक्षणसु समझमें आतो होय तो लक्षणसु समझमें आ जाये. **''लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि''** तुमकु लक्षणसु समझमें आतो होय तो लक्षणसु समझ जाओ. प्रमाणसु समझमें आतो होय तो प्रमाणसु समझ जाओ. प्रमाणसु भी समझमें नहीं आतो होय, तो आन्तरिक अनुभूतिसु अन्तःस्फुरणासु समझमें आतो होय तो अन्तःस्फुरणासु समझ जाओ.

अपनो सिद्धान्त मूलमें ये हे **''न अयम् आत्मा प्रवचेनन लभ्यो, (न लक्षणेन प्रमाणेन वा) न मेधया, न बहुना श्रुतेन, यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्''** (वहीं) जाके सामने वो प्रकट होनो चाहे वाकु कोई भी विधिसु समझमें आ जाये. वाकु कोई भी विधिसु समझमें आ जाये वाकी लीलात्मिका रॅन्ज् अपनूने सोची हे **''गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः, सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभोः''** (भाग.पुरा.७।१।३०) वो यदि रिवील् होनो चाहे तो तुमकु कामसु भी समझमें आयेगो. कामसु सब भ्रष्ट होवें हें. भगवान् खुद आज्ञा करें के **''काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः, महाशनो महापाप्मा विद्धयेनम् इह वैरिणम्''** (भग.गीता.३।३७) तुम्हारी अक्कल, तुम्हारो जीवन, सबको दुश्मन काम हे. वो अपने दुश्मन हें पर भगवान्

यदि कोईके सामने अपने-आपकु प्रकट करनो चाहे तो अपने कामभावसु भी वो अपनेकु समझमें आ सके हे. अपने द्वेषभावसु भी वो अपनेकु समझमें आ सके हे. **''गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः''** (वहीं) कुछ नहीं होय तो तटस्थ वृत्ति रखनी, शान्त वृत्तिसु **''सम्बन्धाद् वृष्णयः''** सम्बन्ध जुड़ गयो तो समझमें आ गयो. और भक्तिसु भी समझमें आ सके हे. भगवान्कु यदि अपने आपकु रिवील् करनो हे तो ये बॅरियर् नहीं हें. बॅरियर् अपने हें. अपनूने बॅरियर् बनाये वामें अपन् कैद हो गये हें. वा बॅरियर्मेंसु जेलर्की तरेह हर जो कैदी हे वो जेलमें बन्द हे पर जेलर् तो वा सेल्में घुस भी सके और बाहर भी आ सके. जेलर्कु जब कम्युनिकेट् करनो होय तो जेल्के सेल्में लग्यो भयो ताला वाकेलिये ताला नहीं हे. वो कैदीके लिये ताला हे.

ये काम क्रोध लोभ मोह भय मद मात्सर्य अज्ञान, ये सब अपनी बुद्धिकी सेल्में लगे भये ताला हें. जेलर् जब चाहे तब ताला खोलके अपनेसु कम्युनिकेट् करनो चाहतो होय, दोस्ती करनो चाहे, साथमें दो-चार चायके प्याला भी पीनो चाहतो होय, तो जेलर् कैदीके साथ पी सके हे.

अपनो सेट्-अप् या ढंगको हे. या ढंगको होवेके कारण अपन् वाकु अपोह्य भी मान रहे हें और अभिधेय भी मान रहे हें. ये वाल्लभ दृष्टिकोणको (श्रौत ब्रह्मवाद हे) या जो तीसरी कॅटेगरी हे, वा सॅट्-अप्में अपनो श्रौत ब्रह्मवाद हे.

याही तरीकेको, निश्चिततया अब अपन् वाकु श्रौत तो नहीं केह सकेंगे, पर मिस्रको जो भी धर्म हतो वा धर्ममें भी ब्रह्मवाद कैसे हतो वो थोड़ोसो आज अपनेकु समझनो चईये. **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः''** (वहीं) जाकु वो समझानो चाहे हे, वाके वो

उपनिषद् वामें **"तं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"** (बृह.उप.३।९।२६) **"न अवेद विद् मनुते तं बृहन्तम्"** (तैत्ति.ब्रा.३।१२।९।७) ऐसे वेद कहे हे. जो वेद नही जाने वाकु समझ ही नहीं आयेगो के क्या हे ब्रह्म. ये ताला अपनी बुद्धिपे लग्यो हे. वो ताला ब्रह्मपे नहीं लग्यो हे. ब्रह्म वाको ताला खोलके यदि ईजिप्शियन्सूकु समझानो चाहतो होय के भई! मैं ब्रह्म ऐसो हूं तो अपन् वामें ऑब्जेक्शन् नहीं कर सके हें के मिस्रकु ब्रह्म समझमें नहीं आयेगो.

मूलमें ये ब्रह्मवादकी रॅन्ज् समझावेके लिये ईजिप्शियन् ब्रह्मवादको थोड़ोसो रूप समझनो जरूरी हे. जासु अपन् ब्रह्मके लिये ब्रह्मवादकु ही ताला न बना दें.

क्योंके कई बखत अक्सर ऐसो होवे के जो ताला अपनूकु प्रोटॅक्ट् करवेके लिये बनायो वो ताला अपन् अपने गलेमें बांधवेके बजाय प्रोटॅक्टर्के गलेमें बांध दें. वो ऐसी स्थिति होवे के वाको एक सामान्य चित्रण समझो के कोई आदमी डूब रह्यो होय, वाकु बचावेके लिये तैराक कूदे, तो डूबनेवालो तैराकको हाथ-पैर बांधके ऐसो चिपक जाये के खुद भी डूब जाये और तैराककु भी डुबो दे. अपनी राजस्थानकी भाषामें यों कह्यो जाय के "हाड़ा ले डूबी गनगौर". हाड़ा तो बिचारो गणगौरको विसर्जन करवे गयो पर गणगौरको वजन इतनो हतो के गणगौरको विसर्जन करते-करते खुद हाड़ा भी विसर्जित हो गये. 'हाड़ा' मानें बूंदीके क्षत्रिय राजायें.

ऐसे अपन् ब्रह्मकु श्रौत ब्रह्मवादमें कैद कर दें तो बिचारो ब्रह्म भी कन्फ्युज्ड् होयगो के भई, कौनकु मैंने ब्रह्मवाद बतायो! कहीं अनधिकारीके सामने उपदेश तो नहीं हो गयो! सो ब्रह्मके हाथ अपनेकु खुले रखने पड़ेंगे. **"न अवेद विद् मनुते तं बृहन्तम्"** (वहीं) ये अपनी समझपे लगायो गयो ताला हे ब्रह्मकी सामर्थ्यपे लगायो भयो ताला नहीं हे. ये बात अपनेकु स्पष्ट समझनी चईये.

ये बात यदि अपनेकु स्पष्टतया समझमें आवे तो महाप्रभुजीकी सुबोधिन्यादिके सारे अर्थ समझमें आयेंगे. ब्रह्म प्रमेयबलसु भी वेद्य हे. प्रमाणबलसु भी वेद्य हे. साधनबलसु भी वेद्य हे और फलबलसु भी वेद्य हे. ब्रह्म जा बखत केह रह्यो हे के ये फल मोकु याकु देनो हे तो वाकु कोई साधनकी दरकार नहीं हे. जाकु कह्यो गयो हे **"न अयम् आत्मा प्रवचेन लभ्यो, न मेधया, न बहुना श्रुतेन, यमेव एष वृणुते तेन लभ्य: तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"** (वहीं) वो अपनो सारो विवरण करके वाके सामने रख दे. वाकु साधनबलकी दरकार नहीं हे. साधनबलकी दरकार वाकु पावेके लिये अपनेकु हे. प्रमाणबलकी दरकार वाकु पावेके लिये अपनी हे. वो अपने प्रमेय बलसु, वो अपने प्रमाण बलसु जाके सामने प्रकट होनो चाहे, वाके सामने प्रकट हो सके हे. करके ब्रह्मवादको ताला हे वो अपनेकु समझनो चईये. वन्स् फॉर् ऑल् वो अपनी समझकी और अपने साधनकी सामर्थ्यपे लगायो भयो ताला हे. ब्रह्मपे लग्यो ताला नहीं हे. पर मनुष्यकी बुद्धि खुराफाती हे ना! अचानक दास्तावस्की याद आ गयो, बुद्धिकी खुराफातके कारण. दास्तावस्कीने एक बहोत अच्छी स्टोरी लिखी हे.

एक बुढ़ियाको बेटा मर गयो. वहांके बिशपने वा बेटाको संस्कार कर दियो. और बुढ़िया छाती कूट-कूटके रो रही थी. इतनेमें एक भिखारी जैसो आदमी आयो. वाने पूछी के क्या प्रॉब्लेम् हे? वाने कही के मेरो इकलौता बेटा मर गयो. कैसे मर गयो? दिखाओ कहां हे? देख्यो तो मर्यो भयो पड़्यो हतो. वाने वाको हाथ पकड़के खड़ो कर दियो के अपनी मांकु तकलीफ मत दे. खड़ो हो जा. बिशप्को ईगो हर्ट हो गयो. "अन्तिम संस्कार मैंने कर दियो, जिन्दो कैसे कर दियो! तुम मोकु शैतान लग रहे हो. कौन हो तुम?" वाने कही के "मैं क्राईस्ट् हूं" बिशप्ने कही के "क्राईस्ट् हो तो हमने तो तुम्हारे नामपे ही वाको अन्तिम संस्कार कियो हे. अब

तुम ही या तरेहसु जिन्दो करोगे तो लोगनूकु क्राईस्ट्पे अश्रद्धा हो जायेगी. याकेलिये क्राईस्ट्कु पांच हंटर् लगाओ. बिचारे क्राईस्ट्कु ही वाके उत्तराधिकारीने पांच हंटर्को हुक्म सुना दियो. ऐसे दास्तावस्कीने बहोत मीठी स्टोरी लिखी हे.

हम भी वो ब्रह्मकु पांच हंटर् कहीं लगावे. क्यों हमारे बिना दूसरेके सामने रिवील् भयो! वो दास्तावस्कीकी स्टोरी अपनेकु रिपीट् नहीं करनी चईये. अपन् श्रौत ब्रह्मवादी हें. वाको मजा लेनो चईये. ब्रह्म जाके सामने चाहे वाके सामने वो रिवील् हो सके हे. वा फ्रेम्वर्कमें अपनेकु ईजिप्शियन् ब्रह्मवादकु समझवेको प्रयास करनो चईये. ये वाकी रॅशनल् बॅक्ग्राउन्ड् नहीं हे पर इमोशनल् बॅक्ग्राउन्ड् हे क्योंके अपन् भक्तिवादी हें. अपनो भक्तिको इमोशन् इतनो ॲडिक्शन् नहीं हो जानो चईये के ब्रह्मकु ही अपन् वाके वादके नामपे पांच हंटर् मार दें. भक्तिके इमोशन्के आवेशमें के चलो मारो पांच हंटर जैसे वो बिशप मरवा दे क्राईस्ट्कु. वहां क्राईस्ट्को उधम ही ये हतो के ''इब्ने मरियम हुआ करे कोई मेरे दु:खकी दवा करे कोई'' भगवान्ने वाकु भेज्यो ही या लिये हतो के मरेनूकु जिन्दो कर दे. बिचारे क्राईस्ट्ने जिन्दो कर दियो और वो बिशप्कु सहन नहीं होवे. अपन् वा तरीकेकी बिशप्गीरी नहीं करें. वाकेलिये ईजिप्शियन् ब्रह्मवाद भी अपने ब्रह्मवादके साथ समझनो थोड़ो सो जरूरी हे. वो मैं आपके साथ शेयर् करनो चाह रह्यो हूं.

(श्रौतब्रह्मवाद और मिस्रमतकी समानता)

([१] कछुआ और बत्तख की दृष्टिसु)

इनकी भाषा क्या हती मोकु पता नहीं हे. ईजिप्शियन् आज वो भाषा नहीं बोल रहे हें जो पिरामिड्स्में लिखी गई हे. पर बरसन् तक इनने क्या लिख्यो वो चित्रलिपिमें लिख्यो होनेके कारण दुनियाकु भी पता नहीं हतो. पर बेबीलोनियामें एक शिलालेख ऐसो

मिल्यो के जामें कुछ ईजिप्तको भी लिख्यो भयो हतो और बेबीलोनियन् भाषामें भी लिख्यो भयो हतो, आरमेनियन् भाषामें भी वो ही बात लिखी भयी हती. वो स्क्रिप्ट् पढ़ी जा सकी करके पहेली बार ईजिप्शियन् स्क्रिप्ट् चित्रलिपि पढ़ी जा सकी. वाके बाद बहोत सारे स्कॉलर्सने बहोत सारो प्रयत्न कियो और प्राय: आज वो स्थिति हे के पिरामिड्की या उनके कफनपे लिखे भये जो उनके सिद्धान्त हें वे प्राय: पढ़ लिये गये हें जितने भी मिले हें उतने. अभी भी कोई और नये प्रकट हो जायें कुछ वो नहीं पढ़े गयें होंयगे पर बहोत सारे पढ़े गये हें. उन स्कॉलर्समें कई लोगन्ने बहोत पुरुषार्थ कियो. कई तरेहसु उनको पढ्यो हे.

एक स्कॉलर् हे आर.टी.रण्डलक्लार्क वाने 'मिथ् ॲण्ड् सिम्बॉल् इन् एनशियेन्ट् ईजिप्त' नामकी एक किताब लिखी हे सो मेरो सारो निरूपण यापे आधारित हे. व्यक्तिगत कोई मेरी या विषयपे जानकारी नहीं हे. या बातको खुलासा मैं पहेले ही कर दऊं. बहोत अच्छी किताब हे. पढ़वेमें मोकु इतनो आनन्द आयो तो मोकु भयो के ब्रह्मवादके बखत याकु शेयर् करनो नितान्त जरूरी हे. सो कुछ इन्लिश्में ट्रांस्लेटेड् बतावेके पहेले इनकी थोड़ी मॅटाफिज़िकल् कॅटेगरी क्या हे वो बताऊंगो.

इनको ख्याल ये हे के शुरुआतमें एक ओशन्, वो अपने यहां वेदमें भी कह्यो गयो हे, और वो ओशन् पानीको नहीं हे, पर कॅरेक्टर् वाको ओशन्को हे. अपने यहां भी ये कह्यो गयो हे के **''आपो ह वा इदम् अग्रे सलिलमेव आस''** (शत.ब्राहम.१।६।१) पहेले आप हतो. समुद्र हतो. अपने यहां आरण्यकमें यहां तक कह्यो गयो हे, वा ओशन्में अचानक एक कछुआ प्रकट भयो. अब अपन् अपनो कछुआ सोचें ये जरूरी नहीं हे. क्योंके मैंने आपकु कल याही लिये बता दियो के अपनो वेद एक तरेहकी भाषा नहीं बोले

हे. लक्षणात्मिका भाषा बोले हे, पारमात्मिकी भाषा बोले हे, पोयेटिकल् भाषा बोले हे. सब तेरेहकी भाषा बोले हे. क्योंके वेदकी प्रॉब्लेम् ये हे के आपकु समझानो!

वेदकी प्रॉब्लेम् ये नहीं हे के वाको निरूपण कैसे करनो! वो तो वेद कहे हे वाको निरूपण इदमित्थंतया हो नहीं सके हे. **''नेति नेति''** आपकु कैसे समझानो; जा तेरेहसु आपकु समझमें आ सके वा तेरेहसु समझाये. समुद्रमें कछुआ ही तो आयेगो और क्या आयेगो? बकरा थोड़े ही आयेगो समुद्रमें! वा ओशन्‌में एक कछुआ प्रकट भयो. अपने यहां वाकु 'नारायण' कह्यो जाय. **''आपो नारा इति प्रोक्ता''** नारा जाको अयन हे वो 'नारायण' हे. अपन्‌ने 'ब्रह्माण्डमूर्ति नारायण' कह्यो. वो नारायणमें 'नर'को मतलब नारासु उद्‌भूत होय वो नर. *''नराणाम् अयनं नारायण'', ''नारा अयनं यस्य''* ऐसे दोनों वाकी व्युत्पत्ति हो सके हे. बहुव्रीहि भी हो सके, तत्पुरुष भी हो सके. **''अन्तरतः कूर्मं भूतं सर्पन्तम्. तम् अब्रवीत्. मम वै त्वङ्मांसा समभूत्. न इति अब्रवीत् पूर्वमेव अहमिहाऽऽसमिति. तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्. स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् भूत्वोदतिष्ठत्. तम् अब्रवीत्. त्वं वै पूर्वं समभूः. त्वमिदं पूर्वः कुरुष्वेति इति.** (कृष्ण.यजु.तैत्ति.आर.१।२३) वो जो कछुआकी तरेह प्रकट भयो वो नारायण हे. इनके यहां जस्ट् पॉसिबल् हे क्योंके उनके यहां नाईल् नदीके किनारे बसी भयी हे और क्यों नहीं इनकु समुद्र मिल्यो या समस्याको चिंतन करवेसु यहां कोई फायदा नहीं हे.

अपनेकु क्यों समुद्र दीख्यो? वेस्टर्न स्कॉलर्स् कहें हें के ''ऊपरसु आर्यन्स् यहां आये'' ऊपर तो कहीं समुद्र हतो नहीं तो उनकु समुद्र क्यों दीख्यो! ऋषि आर्ष दृष्टा हें वा लिये दीख्यो, वो विचारो अमेरिकाको वामदेव शास्त्री हल्ला मचावे अमरीकामें के सौ खलासी चलावे इतनी बडी नाव चल सकें इतने बड़े समुद्रको वेदके ऋषिनुकु

ज्ञान हे. आर्य ऊपरसु आये तो सौ खलासी चलावे इतनी बडी नाव वाले समुद्र हते कहां, ये तो बताओ? अपने ॲक्चुलरिस्ट् कहें के वो आर.एस.एस.को माउथ्‌पीस् हे. **''को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुतः आजाता कुतः इयं विसृष्टिः...यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद''** (ऋक्.सं.८।७।१७।६-७) जवाहरलाल युनिवर्सिटीमें वाको प्रवचन होवे नहीं दे. और वो(वामदेव) सब जगह-जगह जा-जाके कहे के भई! तुम सुनो तो सही, समझो तो सही के सौ खलासी चलावें ऐसी नाव चलती थी. इतनी बड़ी नाव आर्यनुकु मिली कहां वहां? ये लोग कहीं न कहीं समुद्रके किनारे बसनेवाले होंयगे. अब ये तो इतिहासके गर्भमें छुपी भयी बात हे पर हकीकत क्या हती? ऐसे ये भी इतिहासके गर्भमें छुपी भयी बात हे के ईजिप्शियन् लोगनुकु समुद्र क्यों नहीं दीख्यो? कुछ तो कारण होयगो.

रण्डल् क्लार्क कहे के *''पानीकी नदीमेंसु अचानक एक बत्तख प्रकट भयो''* अब कछुआ प्रकट भयो के बत्तख प्रकट भयी, या

(बत्तख)

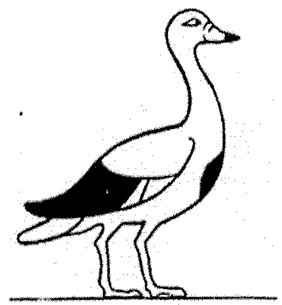

Fig. 9. The Primeval Goose

बातको अपन् झगड़ा करेंगे तो कछुआवाद या बत्तखवाद आयेगो, ब्रह्मवाद नहीं आयेगो. अब कछुआ होय के बत्तख होय, जो भी होय, पानीमेंसु कुछ प्रकट भयो या अर्थमें आप वाकु देखोगे तो उनके यहां भी वोही विवरणकी मॅथड् हे जो अपने यहां मॅथड् हे. पर केहवेको जो थ्रस्ट् हे के कोई तरहको कॅओस् हतो वा कॅओस्मेंसु कॉस्मॉस् करवेवालो कोई फिनोमिना प्रकट भयो.

वो कछुआ भी क्रियेटर् हे. और वो बत्तख भी उनके यहां बहोत सारी पिरामिड्की दीवारें हें, उनपे बत्तखके बहोत अच्छे-अच्छे चित्र अंकित हें. जैसे अपने यहां नारायणके चित्र होवें.

अपन्ने तो अपने यहां कच्छपावतार भी मान लियो के वो सारे मेरूकु अपनेपे टिकाके बैठ्यो भयो हे. अपन्कु तो कोई ज़ेनोको डर ही नहीं लगे के मनुष्यने भगवान्की मूर्ति बनाई या लिये भगवान् मनुष्याकार भयो. अपन्ने तो मनुष्य होते भये भी भगवान्कु मीनाकार भी बनायो हे. कच्छपाकार भी बनायो हे. वामनाकार भी बनायो हे. हंसाकार भी बनायो हे. अपन् तो वाकु सर्वाकार सर्वनामा सर्वरूप मान रहे हें. अपनेकु ये प्रॉब्लेम् नहीं हे. उन वॅस्टर्न् स्कॉलर्सकी ये बहोत बड़ी समस्या हे कछुआ या बत्तख होनेमें. समझो के बत्तखावतार भयो तो, अपने बापको क्या गयो? अरे, जब भगवान्को कच्छपावतार हो सके तो बत्तखावतार क्यों नहीं हो सके? मयूरावतार हो सके हे, हंसावतार हो सके हे, हंसमें और बत्तखमें कितनो फर्क हे? थोड़ीसी टांग लम्बी हे तो हंस हे और टांग थोड़ी छोटी हे तो बत्तख हे. बाकी तो वे दोनों एक ही वॅरायटीके प्राणी हें.

मैं मजाकमें बात नहीं कर रह्यो हूं. मैं बात वो कर रह्यो हूं के अपनी ताला मारवेकी आदत हे वा ताला खोलवेकी बात कर रह्यो हूं, जा तालामें अपन्ने ब्रह्मकु कैद कर रख्यो हे. भागवत

खुद कहे हे के **"गोपानां स्वजन:"** वो हस रहे थे यालिये स्वजन हें. अपन् यदि भगवान्कु अपनो स्वजन मानते होंय तो हस्यो जा सके हे. दोस्तन्में हसी-मजाक नहीं भयी तो कौनमें होयगी? अपनो भगवान् स्वजन हे. अपन् हस सके हें.

([२] हेलियोपोलिस् और आत्मरमण की दृष्टिसु)

वो बत्तख उनके यहां बहोत प्रॉमिनेन्ट् हे. अब मोकु निश्चित नहीं पता हे के वाको ईजिप्शियन् नाम क्या हतो? वाके लिये डायक्रिटिकल् मार्क दिये नहीं हें रेण्डल्ने और वाको नाम 'आतुम्' Atum was first alone in the universe. He was only God but all things to come. (myth and symbol.pg.41) अब यदि या बत्तखको नाम 'आतुम्' हे तो अपनी आत्माके कितनो सन्निकट हे! उपनिषद् केह रह्यो हे के **"आत्मैव इदम् अग्रे आसीत्"** (बृह.उप.१।४।१) वो बत्तखको नाम यदि आतुम् हे, आत्मा हे, मतलब सारे सृष्टिकी आत्मा वो बत्तख हे. वाको नाम 'आतुम्' हे. डायक्रिटिकल् मार्क नहीं दिये हें और अंग्रेजीके लफड़ा ऐसे हें के आतुम्को उच्चारण एटम् अतुम् आतुम् भी हो सके हे. वाके लिये यह निश्चित नहीं हो सके हे के ईजिप्शियन् उच्चारण वाको क्या हतो. पर जो भी उच्चारण होयगो Atum. अब वो अतुम् हे, आतुम् हे, एटुम् हे, आटुम् हे; जो भी वॅरियेशन् वाके होय, अपनी आत्माके तो बहोत सन्निकट हे. इतनो तो अपन् देख सकें. जो औपनिषदिक कन्सॅप्ट् हे. **"आत्मैव इदम् अग्रे आसीत्"** और वो Atum was creator. so he proceeded to playing with self in Haliopolis. (myth and symbol pg.42) 'Haliopolis' आत्माराम, आत्मरति, आत्मक्रीड़, **"स भगव: कस्मिन् प्रतिष्ठित: स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति"** (छान्दो.उप.७।२४।१) ये पिरामिड्के विधानपे लिख्यो भयो लेख हे, पिरामिडके ६२७वें शिलालेखमें ये लिख्यो हे Atum was creator. so he proceeded to playing with self in Haliopolis. 'Haliopolis'

को मतलब उनके यहां पुर होवे हे. अपने यहां कहे के **''ते असुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वदन्तः पराबभूवुः तस्मान् नापभाषित वै''** (शत.ब्रा.३।२।२।२३) अपन् यों समझ रहे हें के हेर्यो-हेर्योकु वो हेलयो-हेलयो कर रहे हें. और वो पहेलीबार प्रकट भयो हे, हेलियोपोलिस्में. अब 'हेलियोपोलिस्' कहो के 'हरिपुर' कहो, कहीं न कहीं कुछ तो रिज़ेम्ब्लेन्स् आ रह्यो हे. अपन् यदि अपने ढंगसु वाकु समझनो चाहें तो हरिपुरमें प्रकट भयो क्यों नहीं केह सकें? अपने यहां भी कह्यो हे **''पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुषः आविशद्''** (बृह.उप.२।५।१८)अब वो हेलियोपोलिस्में प्रकट भयो.

सारे विवरणके फॅक्टर्स् अपने उपनिषदन्के क्रियेशन्के फॅक्टर्ससु कैसे टॅली हो रहे हें! कैसे पॅराफ्रेसिंग् कर रहे हें! मैंने ये सारो टॅक्स्ट् पढ़्यो तो मेरे माईन्ड्में निरन्तर उपनिषद्की पॅराफ्रेसिंग् आती रही के या वचनकु कौनसे उपनिषद्के वचनसु टॅली करनो! मेरे मनमें ये आती रही के इन शिलालेखन्के कोई लेख ऐसे नहीं हें के जाकी पॅराफ्रेसिंग् अपन् उपनिषद्के वचनसु कर न सकें. ये याकी ब्युटी हे. या तरेहकी पॅराफ्रेसिंग् हो सकती होय तो इनको ब्रह्मवादी क्यों नहीं माननो? ये मेरो विचार हे. उनके यहां 'ब्रह्म' शब्द नहीं हे, उनके यहां 'बत्तख' हे तो अपने बापको क्या गयो? अपन् जब केह रहे हें के **''सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वा अभिवदन् यद् आस्ते''** (वहीं) ब्रह्मको जब अपने यहां या तरेहको वर्णन पुरुषसूक्तमें कियो गयो हे, तो *सर्वाणि रूपाणिमें बत्तखरूपाणि कृत्वा वदन् यदास्ते* यामें अपनो क्या गयो? अपनी क्रियेटर्शिप् प्रूव् करनी हे के ब्रह्मकी क्रियेटर्शिप् प्रूव् करनी हे? बत्तख जो हेलियोपोलिस्में प्रकट भयी वो और इनिशियली वो खुदके साथ खेल रही थी. जाकु अपने यहां भी कह्यो हे **''स वै नैव रेमे...स द्वितीयम् ऐच्छत्...स इममेव आत्मानं द्वेधा अपातयत् ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्''**

(बृह.उप.१।४।३) और वा तरेहसु वाने आत्मरमणको विस्तार नामरूप सृष्टिके रूपमें कियो. **''ब्रह्म वा इदम् अग्र आसीत् तद्देवान् असृजत् तद्देवात् सृष्ट्वेषु लोकेषु व्याहरोहयद् अस्मिन्नेव लोके अग्निं वायुम् अन्तरिक्षे देव्येव सूर्य्यम्. अथ ये अत ऊर्द्धा लोका नद्या अत ऊर्द्धा देवतास्तेषु ता देवता व्याहरोहयत् स यथा हैवेम आविल्लोका इमाश्च देवता एवमु हैव त आविर्ल्लोकास्ताश्च देवता येषु ता देवता व्याहरोहयत्. अथ ब्रह्मैव परार्द्धम् अगच्छत तत्पराद्धेङ्गत्त्वैक्षत कथन्नेव मांल्लोकान् प्रत्यवेयामिति तद्द्वाभ्यामेव प्रत्यवैद्रूपेण वैव नाम्ना च स यस्य कस्य च नामास्ति तन्नाम यस्योऽपि अपि नाम नास्ति यद्देवरूपेणेदं रूपमिति तद्रूपमेतावद्वा इदं व्यावद्रूपञ्चैव नाम च''** (शत.ब्रा.२।३।१-३).

([३]सृष्टिप्रक्रियाकी दृष्टिसु)

अब वो सॅल्फ्-क्रियेटर् खुदके साथ खेलनो चाहतो थो and proceeded to Shu and Tefnut. अब ये 'शू' क्या बला हे? 'शू' मानें द्यु 'टॅफनूथ्' माने पृथिवी. **''द्यावाभूमी जनयन् देवः एकः''** (वहीं) वाने क्रियेटर्शिप्में सबसु पहेले क्या स्टॅप् लियो? एक शू बनायो और टॅफनूथ् मानें पृथिवी बनाई, भूमि बनाई. और ईजिप्टोलॉजिस्ट्के विद्वान या बातकु कहे हें के 'टॅफ्' जो उपसर्ग हे या नाम हे वाकु थोड़ी देर भूल जायें तो टॅफनूथ्में 'नूथ' शब्द पाछो 'द्यु'को वाचक हे. Heliopolis is mentioned as the first location of the high God and essential home of God on earth. There are allusions to separation of earth (Geb) and sky (Nut) (myth and symbol pg.47) अपन् उपनिषदन्की दृष्टिसु देखें तो अच्छी तरेहसु समझ सके हें के **''द्यावाभूमी जनयन् देवः एकः''** पर भूमि जो हे **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोः अग्निः, अग्नेः आपः, अद्भ्यः पृथिवी''** (तैत्ति.उप.२।१)द्युमेंसु भू बनी हे. ये अपन् केह रहे हें. 'भू'मेंसु द्यु नहीं बनी हे.

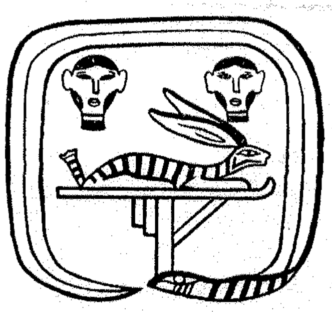

Fig. 8. The Cosmic Serpent encircles Hermopolis

यदि अपनूकु ग्राफिकली समझनो हे, तो स्पष्ट समझनो पड़ेगो के पहेले वाने एक स्पेस् क्रियेट् कियो. वा स्पेस्में वाने खेलवेके लिये एक ग्राउन्ड् क्रियेट् की. वो ग्राउन्ड्की तरेह वाने भू बनाई. द्युमेंसु भू बनी. (ऐसे वहां शूमेंसु नूथ बनी). वो टॅफ्पे उनने काफी डिस्कशन् करी हे. पर पृथिवीकु वहां 'टॅफनूथ्' कह्यो जाय. याके बहोत सुन्दर चित्र मिले हें. वे चित्रें क्या हें? एक सर्कल् बनावें और वा सर्कल्में टॅफनूथ्कु और द्युकु एक सर्पने घेरके रख्यो हे शेषनागकी तरेह. जो अपने यहां कहे के शेषनागके ऊपर ये द्यु और भू को आखो ब्रह्माण्ड सर्पवत् स्थित हे. वाकु टॅफ् और नूथ् के एक सांपसु यों घेरा डालें. एक सांपको सर्कल् बनावें और वो सांप इतनो खूबसूरत हे के जहां वाको मुंह हे वहां वाकी पूंछ हे. मतलब वो टाईम्को जो कन्सॅप्ट् हे, **''भवान् एक: शिष्यते शेष संज्ञ:''** (भाग.पुरा.१०।३।२५) जहां वो खतम हो रह्यो हे वहांसु पाछो वो शुरु हो रह्यो हे. जहांसु शुरु हो रह्यो हे वहीं आके वो खतम हो रह्यो हे. वो लीनियर् कन्सॅप्ट् नहीं हे वो साइक्लिकल् कन्सॅप्ट् हे. ये टॅफ् और नूथ शू और टॅफनूथ् शेषनागसु घिरी भयी

हे. अपने यहां कह्यो गयो हे के सारो ब्रह्माण्ड शेषनागके माथेपे एक सरसोंके दानाके तरह रख्यो भयो हे. भागवत यों केह हे **''कोटिश: हि अण्डराशय:''**, **''भवान् एक: शिष्यते शेष संज्ञ:''** (भाग.पुरा.३।११।४०, -१०।३।२५)

([४] ब्राह्मिक अहंकारकी दृष्टिसु : ''भवान् एक: शिष्यते शेष संज्ञ:'')

ये 'टाईम् कपल्ड् विद् सॅल्फ्अवॅयर्नेस्' मानें जो सॅल्फ्अवॅयर्नेस् हे जाकु अपन् अहंकार केह रहे हें, वो स्वयंप्रकाश ब्रह्मको प्रोडक्ट् हे के नहीं? स्वयंप्रकाशमें अपन् क्या बात केह रहे हें? ब्रह्म स्वयंप्रकाश हे, मतलब ब्रह्मकु अहंकार हे. वो ऐसो अहंकार हे के वा अहंकारके बाहर कुछ भी नहीं हो सके. वा अहंकारकु अपन् थोड़ो शॅयर् कर रहे हें. सो अपनो अहंकार कैसो हे? मेरे अहंकारकु मैं आपसु शॅयर् नहीं करूं. मेरे अहंकारकी एक लिमिट् हे. सो अपनी चेतना भी मैं आपसु शॅयर् नहीं करूं हूं. मेरी जो रतिकु भी शॅयर् नहीं करूं. ब्रह्मकी जो स्वयंप्रकाशता हे मानें परमात्माकी स्वयंप्रकाशिता जीवात्मामें अहंकारके रूपमें प्रकट हो रही हे. मोकु कोईसु पूछनो नहीं पड़े के भई, मैं क्या हूं? दूसरेकु मोकु पूछनो पड़े के तुम कौन हो!

हमारे संतरामपुरवाले जीजाजी बता रहे थे के उनके यहां दो भाई हते. अचानक मैं भी वा दिन मौजूद हतो. उनने कही के तुम्हारे कितने बच्चे हें? वाने अपने भाईसु पूछी के ''हें भाई! अपने कितने बच्चे? वाने कही के ''दो बच्चे बापू'' खुदके बच्चाके लिये भी पूछनो पड़े क्योंके बच्चा अपने अहंमें आ नहीं रहे हें. पर खुदके लिये कोईकु पूछनो पड़े के भई, मैं कौन? ये नहीं पूछनो पड़े. क्योंके कोई बतातो होय तो भी अपनेकु पाछो अपने अहंकारके बलपे ही अपनेकु समझनो पड़ेगो के मोकु ये ऐसे मान रहे हे. जैसे कोई अपनेकु केह दे के ''मैं कौन'' और वो केह

दे ''तू पागल'' तो वा पागलके बीचमें भी अपनो अहंकार तो बोलेगो के ये मोकु पागल समझ रह्यो हे. दूसरेकी समझकु भी स्थापित करवेको अहंकार हे वो पाछो बनायेंगे अपने अहंकारसु.

अंशीकी जो स्वयंप्रकाशिता हे, वो अंशमें अहंकारात्मना प्रकट हो रही हे. वा बातकी लाचारी समझो. केवलाद्वैतीनूकु भी ब्रह्मके साथ भेद अनुभव करवेके लिये अहंकारकु लानो पड़यो ''अहं ब्रह्मास्मि'', नहीं तो ब्रह्म सब कुछ हे तो 'केवल' कैसे समझमें आयेगो? ब्रह्म एकाकी हे ये समझवेके लिये 'तू ब्रह्म हे' केहवेसु ब्रह्मकी एकाकिता समझमें नहीं आवे! अपनी अन्डरस्टॅन्डिन्ग्की लाचारी कैसी हे! वाको कारण क्या?

गोवर्धनपीठके शंकराचार्य जो मॅथेमॅटिशियन् हते, उनने एक बहोत मजेदार आर्ग्युमॅन्ट् दी हे के 'तू'को बहुवचन 'तुम' होयगो. 'ही'(he)को बहुवचन 'धे' they होयगो, 'शी'(she)को बहुवचन 'धे' (they) होयगो. अहंको बहुवचन 'वयं' नहीं हे. क्योंके 'मैं' और 'तू' = वयं हो सके. मैं और तू बहुवचन हो सके हे. 'अहं' सदा एकवचनमें ही रेहवे हे. **''अहं ब्रह्मास्मि''** ब्रह्मकी एकाकिता समझनी हे तो ब्रह्मकु अपने अहंको सिंहासन प्रोवाईड् करें तो वाकी एकाकिता सिद्ध होवे. अहंके सिंहासनपे बैठे बिना ब्रह्मकी एकाकिता अपनेकु कन्वे नहीं होयगी. अपनी माईन्ड् सॅटिंग् या तरेहसु बनाई हे. अहंके सिंहासनपे ब्रह्मकु बैठाओ तो तो ब्रह्म एकाकी हे समझमें आ सके, अन्यथा तो ब्रह्म भले होयगो अपने घरमें एकाकी पर अपनेकु समझनो होय तो अपने अहंके सिंहासनपे वाकी प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी. *''इह आगच्छ इह सुप्रतिष्ठितो भव अहं ब्रह्मास्मि''* तब अपनेकु ब्रह्म एकाकी समझमें आयेगो. त्वं ब्रह्मास्मि केहते ही लफड़ा हो जाये. केहके देखो, ''तत् त्वम् असि'' ब्रह्मकी एकाकिता समझमें नहीं आयेगी. क्योंके केहवेवालो कौन हे? 'तत्' आ गयो, 'त्वम्' आ गयो पर केहवेवालो

अहम् हे. यदि वो ब्रह्म हे तो पहेले वो अपनेकु ब्रह्म क्यों नहीं मान रह्यो हे? 'तत्'कु ब्रह्म मान रह्यो हे. चापलूस तो नहीं हे! ये तो प्रश्न उठेगो ना! **''त्वम् आपः त्वं वायुः त्वम् अग्निः''** ये तो चापलूसी हे. **''त्वं ब्रह्म''** ये तो चापलूसी हो गई. **''तत् त्वम् असि''** कहीं कोईकी चापलूसी तो प्रकट नहीं करी हे? खाली-पीली चमचागिरी कायको करता हे! वोही तो प्रश्न हे वहां! 'तत्'कु ब्रह्म क्यों मान रहे हो? यदि ब्रह्म एकाकी हे तो वाके लिये सबसु अच्छो योग्य सिंहासन अहमानुभूति हे. ब्रह्म स्वयंप्रकाश हे तो अपनेकु समझनो पड़ेगो के अहमानुभूति जो हे वो ब्रह्मकी स्वयंप्रकाशिताकु समझवेको बॅस्ट् मॉडेल् हे.

या लिये जब वो आतुम् शू और टॅफ्नूथ् बन्यो और वाकु शेषसु कवर् करके सर्कल् बनायो. अब वो अण्डा बनायो के सर्कल् बनायो, जो भी बन्यो वो बनायो, वो सब केहवेकी विधा भी हें और जो वामें प्रतिपाद्य तत्त्व हे वापे अपन् ध्यान दें तो अपनेकु समझमें आ सके के उनकी प्रतिपादन शैली वा मूल तत्त्वके प्रतिपादनमें और अपनी प्रतिपादन शैलीमें बहोत अन्तर तो नहीं रेह गयो. इन सबनूकु कम्पॅयर् करके देखें तो सचमुचमें लोग काव्यशास्त्रको आनन्द समझें, पर दर्शनशास्त्र कितने आनन्दको विषय हे वो धर्मनूकी फिलॉसॉफीको तुलनात्मक अध्ययन करें तो अपनेकु लगे के काव्य क्या आनन्द देगो जितनो दर्शन आनन्द देवे हे.

([५]सृष्टिकी यज्ञात्मकता और अभिन्ननिमित्तोपादानता की दृष्टिसु)

अपने यहां एक वचन आयो हे के सृष्टिकु पैदा करवेके लिये प्रजापतिने क्या कियो? **''प्रजापतिः आत्मनो वपाम् उदक्खिदत''** (तैत्ति.सं.२।१।१।४)ये सारी सृष्टि एक यज्ञात्मिका सृष्टि है **''यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्''** (तैत्ति.आ.३।१३।२) सृष्टि अपने यहां [६]अज्ञानात्मिका नहीं हे. (शांकरसृष्टिसु सृष्टि अज्ञानात्मिका

हे) [२] संघर्षात्मिका नहीं हे. सृष्टि अपने यहां यज्ञात्मिका हे. सृष्टि अपने यहां [३] पापको फल नहीं हे के तुमने अपराध कर दियो सो गो टु हॅल्. गो टु अर्थ. पापको फल नहीं हे. क्योंके भगवान्ने कोई ड्युरेस्में कोई कम्पल्शन्में सृष्टि नहीं बनाई हे. (सॅमॅटिक् दृष्टिसु सृष्टि, अपने अपराधके कारण पैदा भयी हे) भगवान्ने आत्मरतिके ऑक्सटॅन्शन्में सृष्टि बनाई हे. यज्ञात्मक सृष्टि बनाई होवेके कारण प्रजापतिकु यज्ञ करवेमें कोई चीज़की आहुति देनी चईये, अब वा बखत आहुति देवे लायक तो कुछ हतो ही नहीं. न घेंटा हते, न मेष हती, न अजा हती, न गाय हती, न घोड़ा हते कुछ भी नहीं हतो. तो आहुति देनी कायसु? उपनिषद् बहोत सुन्दर समझावे. **''प्रजापतिः आत्मनो वपाम् उदक्खिदत''** सृष्टिरूप यज्ञ करवेके लिये भगवान्ने अपने आपमेंसु अपनी वपा=चरबीकी आहुति दी हे. ये आत्मरतिको ऑक्स्टॅन्डेड् मॉडेल् हे. **''यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्''**

([५-क] श्रुतिको स्वार्थमें प्रामाण्य)

अब यामें मीमांसकनूकु चिंता हो गई के या बातको स्वार्थमें प्रामाण्य कैसे हो सके हे? यदि उदक्खिदन खुदकी वपा निकालके वाने आहुति दी तो वो जिन्दो हतो के मर गयो? वपा निकालवेमें मर गयो तो वो वपा कैसे दे सकेगो? और वपा दी हे तो वो जिन्दो कैसे रेह गयो? याकेलिये याको स्वार्थमें प्रामाण्य नहीं हो सके. या लिये ये अर्थवाद हे. ''स्तावकत्वेन''

महाप्रभुजी ऐसे नहीं मानें. महाप्रभुजी कहे हें के भई, तुम एक मॉडेल् सामने लाओ जा मॉडेल्के कारण तुमकु समझमें आवे के श्रुति केहनो क्या चाह रही हे. स्वार्थमें प्रामाण्य क्यों नहीं हे? यदि तुम कहोगे के प्रजापतिने खुदकी वपाको होम कियो. या तरीकेको जो वचन हे वो अपने लेवल्पे अपनेकु समझमें नहीं आवे हे. वपाकी आहुति देवेसु आदमी जीवित नहीं रेह रह्यो हे, ये लाचारी

अपनी हे. वाकी लाचारी ये तुमने कैसे मानी? याकेलिये याको स्वार्थमें प्रामाण्य मानो.

अभी रीसॅन्टली साईन्टिस्टन्ने पता लगाई. एक गिलहरी ऐसी होवे के वाको जा बखत कोई शिकार करवे जाय तो वाकु ये फॅसिलिटी अवेलेवल् हे के अपनी टांग-हाथ तोड़के खावेकु दे दे. अब जितनी देर वो खावे उतनेमें वो भग जाय. सर्वाइवल् किट्की तरेह वाकु ये फॅसिलिटी प्रोवाईडेड् हे. जब भाग नहीं सके और वो समझ जाये के खावेकु आ रह्यो हे तो अपनेकु ये तीर तलवार बन्दूक वगैरह प्रोवाईड् किये गये हें. पर वाकु प्रकृतिने ये सिस्टम् प्रोवाईड् की हे के वो इच्छासु अपनो एक अंग तोड़के वाकु खावेके लिये दे दे. अपन् नहीं तोड़ सकें अपनो अंग, अपनेकु तो अंग तोड़वेके लिये भाला चाकू तलवार वगैरहकी ज़रूरत पड़ेगी.

''प्रजापतिः आत्मनो वपाम् उदक्खिदत'' यदि अपन् ह्युमन् लॉजिक्के आधारपे वाकु स्वार्थमें अप्रमाण मान रहे हें तो ह्युमन् बींग् ही एक जीवनको क्राईटेरिया हे? वो क्या यज्ञ नहीं कर रही हे? वो भी तो यज्ञ कर रही हे ना! *''ब्रह्मणे स्वाहाः ब्रह्मणे इदं न''* अंग खा जा. वाकु ये फॅसिलिटी ओर प्रोवाईडेड् हे के थोड़े दिनन्में वो अंग पाछो उग जाये. जैसे छिपकलीकी पूंछ कट जाये तो पाछे उग ओर जाये. अपने जैसे नख उग जायें, बाल उग जायें, ऐसे वाने जो अंग तोड़के दियो वो पाछे उग ओर जातो होय. अपनेकु वो फॅसिलिटी नेचर्ने प्रोवाईड् नहीं करी याके लिये या क्षुद्र सामर्थ्यके आधारपे अपन् सृष्टिकर्ताकी सामर्थ्यपे प्रश्नचिन्ह लगा रहे हें. तुम रॅशनल् ॲनीमल् हो के इर्रॅशनल् ॲनीमल् हो ये तो वन्स् फॉर् ऑल् डिसाईड् करो!!

मैं समझूं दुनियाको सबसु बड़ो इर्रॅशनल् स्टेटमॅन्ट् ये हतो के

मॅन् इज़् दि मेज़र् ऑफ् अॅवरी थिंग्. नथिंग् कॅन् बी मॉर् इर्रॅशनल् दॅन् दिस्. यस् इट् इज़् रॅशनल् स्टेटमॅन्ट् इन् रॅफरेन्स् ऑफ् मॅन् ओनली. अपन् अच्छी तरेहसु जानें के पेड़ कार्बन्‌सु जी रह्यो हे. वो अपनी तरेह प्राणवायु-ऑक्सिजन्‌सु नहीं जी रह्यो हे. तो मॅन् हर बातको मेज़र् कहां हे? पेड़ आंखसु नहीं देख रह्यो हे. जा दिशामेंसु प्रकाश आ रह्यो हे वा दिशामें बिना आंखके वो कैसे बढ़ जा रह्यो हे! आंखसु नहीं देख रह्यो हे, पेड़ मुंहसु नहीं खा रह्यो हे, **''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यति अचक्षुः शृणोति अकर्णः''** (श्वेता.उप.३।१९) पेड़ संगीत भी सुने हे. जगदीशचन्द्र बोसने सिद्ध कियो. वो **''शृणोति अकर्णः''** कानके बिना सुन रह्यो हे.

(५-ख अब्रह्मवादी चिन्तनसु गुण-दोषदृष्टि)

अब अपन् ये कहें के ये तो ब्रह्मके बारेमें श्रद्धासु कही गई बात हे. मिस्टिक् स्टेटमॅन्ट् हे, लॉजिकल् स्टेटमॅन्ट् नहीं हे. (वेदकी भाषा मिस्टिकल् हे, लॉजिकल् नहीं हे ऐसो आक्षेप हे.) तो जगदीशचन्द्र बोसकी पेड़की ये बात लॉजिकल् स्टेटमॅन्ट् हे के मिस्टिक् स्टेटमॅन्ट् हे? अब क्या ये कहोगे के जगदीशचन्द्र बोसको स्टेटमॅन्ट् मिस्टिक् स्टेटमॅन्ट् हे? सबसु पहेली इर्रॅशनलिटी यहां प्रकट भयी के जा बखत अपन्‌ने मॅन् इज़् दि मेज़र् ऑफ् अॅवरी थिंग् कही. अपनी जो कोई भी रीज़निंग् हे वाको मेज़र् मॅन् हे. वामें अपन् सामान्य भाव कर सकें के हमकु बात समझमें नहीं आ रही हे. तुमकु समझमें नहीं आ रही हे तो अच्छी बात हे. पर ऐसो दावा क्यों करनो के हम सब कुछ समझ जायेंगे! वोही तो समझोगे के जो स्थिति तुमकु प्रोवाईडेड् हे. वामें तुम्हारी समझकु धिक्कारो मत. **''सूर व्हेके काहे घिघियात हे कछु भगवद्लीला गा''** कुछ भगवद्‌लीला गाओ के तुमकु कितनी अच्छी समझ दे दी हे के जो अपनी समझ नहीं हे वो तुमकु समझ हे!

आज ही मैंने एक जैन मुनिको बहोत मज़ेदार स्टेटमॅन्ट् बांच्यो. ''मोहदृष्टिसु देहकु देखवेपे राग उत्पन्न होवे हे. तत्त्वदृष्टिसु देहकु देखवेपे विराग उत्पन्न होवे हे.'' मैंने कही के ''महाप्रभुजीसु पूछु के महाप्रभुजी क्या केह रहे हें?'' ये जैन स्टेटमॅन्ट्के विसा-विस्, वैसे तो मोसु महाप्रभुजी बोलते होते तो मेरो तो उद्धार हो गयो होतो, पर मेरी अन्तःस्फुरणामें महाप्रभुजीने मोकु कही के ''तत्त्वदृष्टिसु देखवेसु माहात्म्यज्ञान उत्पन्न होगयो.'' इतने क्षुद्र देहमें जो हर बातमें मरवेके लिये आमादा हे, वामें भगवान्‌ने कितनी-कितनी फॅसिलिटी पैदा करी हें. यदि ये फॅसिलिटी आर्टीफिशियल् भी पैदा करनी होंय अपनेकु तो अब्जन् रुपया चईयेंगे. और ये एक छोटेसे स्पर्मसु पैदा हो जा रही हे. जामें कोई खर्चा नहीं होवे. तो माहात्म्यज्ञान पैदा होयगो, विराग उत्पन्न नहीं होयगो. मोहदृष्टिसु देखोगे तो ''भक्तानां कृष्णदासता'' पैदा होयगी. ये देह इतनो अच्छो दियो हे तो ये तो भगवत्सेवार्थ हे, भक्त्यर्थ हे.

महाप्रभुजीकु पूछें तो महाप्रभुजी ये कहेंगे के मोहदृष्टिसु यामें भक्तिको भाव जगेगो के भई, इतनो अच्छो देह! अपने यहां वार्तान्‌में आवे के इतने सुन्दर देहकु खाली फोकट बलात् क्यों जला देनो! वाकु भगवत्सेवार्थ क्यों नहीं वापरनो. भगवद्भक्तिके लिये, भगवदनुभूतिके लिये क्यों नहीं वापरनो? जब ये फॅसिलिटी प्रोवाईड् की गई हे क्यों क्षुद्रतामें खपानो? मोकु लग्यो के जैनन्‌को एक अलग परस्पॅक्टिव् हे. क्योंके वो त्यागवादी हें. अपन् न त्यागवादी हें, न अपन् भोगवादी हें, अपन् तो भक्तिवादी हें. अपनेकु हर बातमें उनको जो परस्पॅक्टिव् हे, वो या दृष्टिसु दीखेगो के तत्त्वदृष्टिसु देखवेपे जगत्‌में अपनेकु माहात्म्यज्ञान होयगो के अद्भुत माहात्म्य हे ऐसो अपनेकु लगेगो.

एक शास्त्रीजी हते. उनको बेटा महान् गिलिन्डर्. कई बखत मारा-मारी करके जेलमें जा आयो. मैंने एक दिन पूछी के ''आपके

चिरंजीवी क्या करें?'' तो बोले ''अरे, मेरो बेटा! छः बखत जेलमें जाके आयो.'' शास्त्रीको बेटा छः बखत जेलमें जाके आयो, ये माहात्म्य हे के निन्दा हे? उनकु बेटामें स्नेह हे तो माहात्म्य लग रह्यो हे. अपनेकु वो वचन निन्दार्थक लग रह्यो हे. अरे मेरो बेटा! मेरो बेटा! बहोत गजबको हे. छः बखत जेलमें होके आयो हे.

पहेले मारवाड़ीनूमें भी लड़की तभी दी जाती के जब इन्कम् टेक्सकी रेड़ भयी होवे तो. ससुरालकी क्वालिटी ये मानी जाये के रेड़ कितनी भयी? बँकरप्ट् कितने भये? जितनी बार बॅन्करप्सी भयी मानें पैसा उतनो ही ज्यादा हे. अब अपन् वाकु निन्दाकी दृष्टिसु देखे हें. वहां वो लड़की देवेके लिये सबसु अच्छो घर मान्यो जाय के जाने अपनो दिवाला निकाल्यो होय. तो हर व्यक्तिके परस्पॅक्टिव् कितने अलग-अलग हे!

देहकु तत्त्वदृष्टिसु देखनो वो विरागोत्पादक हे के वो रागोत्पादक हे ये सारी बातें सबसु पहेले अपनेकु अहंसु पूछनी चईये के बता तू क्या हे? जब समझ गयो के 'तू क्या हे' तो 'ये क्या हे' वो समझमें आ जायेगो. जब-तक के 'मैं क्या हूं' वो समझमें नहीं आयो तब-तक ये क्या हे समझमें नहीं आयेगो. यालिये अपनेकु समझनो चईये के अपन् ब्रह्मवादी हें तो अपनो 'मैं' क्या हे? अब ब्रह्मवादीको 'मैं' क्या हे ये अपन् समझ गये तो ये ईजिप्शियन् ब्रह्मवाद क्या हे, अपन् अच्छी तरेहसु समझ सकेंगे.

या लिये वहां Another myth accounted for Shu and Tefnut, by having them spat forth from the creator's mouth...You spat forth as Shu, you expectoratd as a Tefnut, you put your arms arround them in an act of Ka-giving, so that your Ka might be in them. (myth and symbol pg.43)

वो जो आतुम् हतो वाने थूक्यो. वा थूकमेंसु शू और टॅफ्नूथ् पैदा हो गये. अब उनके यहां ''प्रजापति आत्मना'' वाली बात नहीं हे. वा आतुम्ने थूक्यो वासु द्यावा पृथिवी बन गई. याकी पॅराफ्रेसिंग् अपने उपनिषद्वाक्यसु हो रही हे. संहिता ब्राह्मण आरण्यक यों कहे हे **''प्रजापतिः आत्मनो वपाम् उदक्खिदत''** वाही बातकु उपनिषद् दूसरी तरेहसु कैसे केह रह्यो हे **''यथा उर्णनाभिः सृजते गृह्यते च''** (मुण्ड.उप.१।१।७) वो मकड़ी अपनो जाला थूकके आखी जालाकी सृष्टि बना दे हे और वामें आनन्दसु विचरण करे. उनके आतुम्ने थूक्यो और थूकके वामें रेहवे हे. वाकी थूकमें इतनी सामर्थ्य हे, अपन् वाकु अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मान रहे हें. जैसे मकड़ी थूकके जाला बनाके वामें रेहवे हे ऐसे वाकी स्वमहिमामें प्रतिष्ठित होवेको ॲक्स्टेन्शन् हे. **''स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः इति स्वे महिम्नि ... आत्मरतिः आत्मक्रीड आत्ममिथुन''** (छान्दो.उप.७।२४।१,७।२५।२) अपने थूके भये जालामें जो मकड़ी रेह रही हे वो आत्मरमण आत्मक्रीड़ आत्ममिथुन आत्मराम आत्मरतिशील हे. वाकु अपन्ने मकडीको उदाहरण मान्यो. उनके यहां थूककी बात आ गई. थूक दियो तो ये शू और टॅफ्नूथ् पैदा हो गये. कैसे अपनी श्रुतिसु पॅरेलल् जा रह्यो हे! या बातकु देखो. अपनो मॉडेल् भी वो कहीं न कहीं तो स्वीकार कर रहे हें के नहीं कर रहे हें! फिर अपन् क्यों नहीं मानें ये भी ब्रह्मवादी हें! श्रुतिके ब्रह्मवादी नहीं हें तो उनको ब्रह्मने वरण कर लियो और उनकु **''तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्''** हो गयो होयगो.

और देखो क्या केह रहे हें. From the two acts came Shu, the 'space', the light cavity in the midst of the primordial darkness. Shu is both light and air, and as the offspring of God he is manifest life. As light he separates the earth from the sky and as air he upholds the sky vault. (myth

and symbol pg.45) या थूकवेके बाद शू सबसु पहेले लाईट्र बन्यो. लाईट्र बनके वाने डिवीज़न् कियो के कुछ डार्कनेस् हे वासु मैं कौनसे अर्थमें अलग हूं? अपने यहां भी ये कह्यो जा रह्यो हे. **''तत्सवितु: वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्''** डार्कनेस्सु पहेले वो एक अलग लाईट्र बन्यो. **''ध्येयं सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायण सरसिजानसन् सन्निविष्टवित्त केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्यमयवपु धृतशंखचक्र:''** I the worms in the Eye of Atom, for I am the sun...I have come to repet his tears for him. I am Re (or sun) who wept for himself in his single Eye might cool the flame in my, cooling the way with tears. (myth and symbol pg.95) तो पहेले वो लाईट्र बन गयो और वा लाईट्रकु वे लोग सूर्य ही मान रहे हें. 'लाईट्र' बन्यो वाको मतलब क्या? केह रहे हें के सूर्य हे. वा सूर्यकु वे लोग 'रे' कहे हें. अपने यहां 'राय' कह्यो हे. अब उनको उच्चारण क्या हतो वो मोकु पता नहीं हे. क्योंके वे अंग्रेजी जा ढंगसु लिख रहे हें, ये लफड़ा तो हर भाषामें रह्यो भयो हे ही.

ॲलेग्ज़ॅन्डर्कु अपन् 'अलक्षेन्द्र' कहे हें. अपनी यमुनाकु ग्रीक यात्री 'जॅमुनेर्' कहे हे. अपन् 'पाटलीपुत्र' कहे हें वे लोग 'पॅलीब्रॉथ्' कहे हें. हर भाषामें या तरीकेको लफडा हे. युरोपियन् यात्री यहां आये तो हिन्दूकु 'घेन्तू' कहते. अपन् यों कहें के पर्शियन् लोग सिन्धुकु 'हिन्दू' केहते थे. पर ये युरोपियन् यात्री अपनेकु 'घेन्तू' केहते थे. सब यात्रीनकी डायरी पढ़ो तो ऐसे-ऐसे वर्णन करें के काले चेहरामें उनके सफेद दांत घेन्तूकी तरेह चमक रहे थे. अरे भई! तुम मंजन नहीं करते थे, तुम्हारे यहां मंजनकी पद्धति नहीं हती पर हमारे यहां तो बचपनसु ही मंजन करवेकी पद्धति हती. हमारे सफेद दांत तो चमकेंगे ही. तुम्हारे यहां मंजन करवेकी पद्धति नहीं हती, वो क्या करें के सुबह उठें और बीयरको एक कुल्ला कर दें तो उनको मौंह फ्रॅश् हो जाये. मंजन करनो भूल जायें.

हमारे भारतीय विद्याभवनके दीक्षिताचार्यजी केहते के ''श्याममनोहरजी, वेद मंजन करे बिना नहीं आता हे'' अब मंजनका वेदके साथ सम्बन्ध क्या? बोले के मुंह ही स्वच्छ नहीं होगा तो वेदका उच्चारण होगा कैसे? वे लोग मंजन नहीं करते थे यालिये उनकु लगतो थो घेन्तूनके काले चेहरामें सफेद-सफेद दांत बहोत चमक रहे थे. चमक रहे थे वो निन्दाकी बात नहीं हे. वो तो स्तुतिकी बात हे के हमारे काले दांत नहीं थे, हमारे पीले दांत नहीं थे क्योंके हम मंजन करते थे. तुमकु मंजन करनो नहीं आतो थो. सफेद दांत चमक रहे थे यामें इतने लफडाकी क्या बात हे? हर व्यक्तिकु या तरीकेकी अपनी कोई कल्चर्के सिविलाईज़ेशन्के तालामें बन्द होवेकी आदत होवे हे. अपन् भी अपवाद नहीं हें.

पर मैं ये बात या लिये बतानो चाह रह्यो हूं के अपनेकु ब्रह्मवादके कोई एक ब्राह्मिक संदर्भमें ये सारी बातें देखवेकी इन्साईट्र होनी चईये. कोई बात कोईकी निन्दाके लिये क्यों हे? कोई बात कोईके लिये स्तुति क्यों हे? अपने यहां यों कह्यो गयो हे के दन्तमंजन मुखशौच के बिना मन्त्रोचारण जप नहीं करनो. अपने यहांके दांत साफ रेहते हते उनके यहां नहीं रेहते होंयगे! यामें क्या चिंताकी बात हे!

Shu is both light and air and as the ofspring of God he is manifest life. (myth and symbol pg.45) सो वाने लाईट्र बनाई. जब लाईट्र बनी वाके बाद वो केह रहे हे के वा शू मानें द्युने टॅफ्नूथ् और शू के बीचमें हवा पैदा करी. देखो, अपनो उपनिषद् येही तो केह रह्यो हे **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन: आकाश: सम्भूत:, आकाशाद् वायु:...''** (तैत्ति.उप.२।१।१) यामें लफड़ेकी क्या बात हे? वोही तो सारी बातें आ रही हें. और वो केह रहे हें के एअर् दॅट्र सॅपरेट्स् अर्थ फ्रॉम् दि स्काई.

तैत्तिरीय उपनिषद् केह रह्यो हे. **"पृथिवी पूर्वरूपं द्यौः उत्तररूपं वायुः सन्धानम्"** (तैत्ति.उप.१।३।१) वायु सन्धान हे. वो वाको डिवाईडर् हे. इतनी सी बात हे ये कौनसी अलग बात हे. वाके बाद वे केह रहे हें. उनके यहांके एक शिलालेखमें ऐसे लिख्यो भयो हे I am Eternity, the creator of the millions who repeats spitting of Atum. (myth and symbol pg.45) **मैं सनातन हूं और सबको** क्रियेटर् हूं. अब वे अनन्त नहीं केह रहे हें मिलियन्स् केह रहे हें. अपने यहां भी तो **"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्"** (तैत्ति.आर.३।१३।२) अब ये सहस्र, हजारको वाचक नहीं हे अनन्तको वाचक हे. वे मिलियन्स् केह रहे हें तो ठीक हे. मतलब वाको अपनेकु अनन्त समझनो चईये. मिलियन्स्कु मैंने कैसे क्रियेट् कियो हे? who repeats spitting of atum. अपनो थूक थूकतो जाय.

इण्डियन् कल्चर् हे ना! दुबईमें नहीं थूकें. थूकें तो हंटर् पड़े वहां. प्रथमेश काकाजीने पाटिया लगायो. ये मन्दिरकी दीवार हे, यापे थूकनो मना हे. लोगन्ने इतनो थूक्यो के पाटिया ही दीखनो बन्द हो गयो! अब ये इण्डियन् कल्चर् हे.

ऐसे ही उनको भी ब्रह्म इण्डियन् होयगो के नहीं होयगो? इतनो इतनो थूकके इतनी सृष्टि पैदा कर दी वाने. चिन्ताकी बात नहीं हे. थूक रह्यो हे तो थूकवे दो, पाटिया दीखनो बन्द हो जाये तो हो जाने दो.

Atum was unhappy in the primeval Waters, he who had no companion when my name came into existence. The most ancient form in which I came into existence was as a drowned one. (myth and symbol pg.75) **"स वै नैव रेमे"** वो प्राईम् ईविल् वॉटर् मानें कॅओटिक् ओशन् हतो, वामें कॉस्मॉस्में जो बत्तख पैदा भयी, वो हॅप्पी नहीं हतो. कुछ अनहॅप्पी हतो **"स वै नैव रेमे... स द्वितीयम् ऐच्छत्... स इममेव आत्मानं द्वेधा पातयत्"** (बृह.उप.१।४।३) या तरहसु वो हॅप्पी नहीं हतो. **"तस्माद् एकाकी न रमते स द्वितीयम् ऐच्छत्"** (वहीं) वा लिये वा आतुम्ने ये सारी सृष्टि पैदा करी. वाके कारण ये सारे मिलियन्स् क्रियेटेड् चेहरे अपनेकु दुनियामें अनुभव दे रहे हें. I am Eternity the creator of milions. (myth and symbol pg.45)

(श्रौतनिष्कर्ष : यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्)

सो संक्षेपमें अपन् देख सकें. याको विस्तार तो हरेक शिलालेखकी पॅराफ्रेसिंग्, मैं आपकु आश्वस्त करके कहूं के अपने कोई न कोई शास्त्रवचनसु आनन्दसु करी जा सके. पर ये तो एक स्थालिपुलाक न्यायसु मैंने खाली एक दिशानिर्देश कियो हे के कैसे तरेहके ब्रह्मवादी वे हें और कितने अपने पॅरेलल् जा रहे हें. अब श्रौत नहीं हे तो नहीं हे. **"यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"** (वहीं)

या तरेहसु ईजिप्शियन्के ब्रह्मवादपे अपन्ने थोड़ो संक्षिप्त हाय्-हलोको परिचय कियो हे. खाली हाय हलो कर दो ईजिप्शियन् ब्रह्मवादकु हाय्, हाउ आर् यू? बस केह दो हाउ डूयु डु? विस्तार तो ये रॅण्डल् पढ़ोगे तो आपकु भी मजा आयेगी जैसी मजा मोकु आयी. याके हर शिलालेखके कफनके बहोत सारे वचनन्को अनुवाद याने कियो हे. और उनके चित्रें भी अपन् देखें और उन चित्रन्कु अपने चित्रन्सु कम्पॅयर् करें तो मोकु ब्रह्मवाद स्पष्ट लगे हे. यामें कोई संदेहकी गुंजाईश नहीं हे. ये छोटेसे ईजिप्शियन् ब्रह्मवादके इन्ट्रोडक्शन्के बाद अपन् आलेख पत्र लेंगे.

ब्रह्मवादी और सापेक्षतावादी चिन्तनके समान आधारतलका विमर्श

[१.त्वम् अस्य परि रजसो व्योमन: स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मन: चकृषे भूमिं प्रतिमानम् ओजसो अप: स्व: परिभू: एषि आदिवम्. त्वं भुव: प्रतिमानं पृथिव्या: ऋष्ववीरस्य बृहत: पति: भू: विश्वम् आप्रा: अन्तरिक्षं महित्वा सत्यम् अद्धा नकि: अन्य: त्वावान्.

२.तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिश: साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकं ज्योतिष्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च... एतद् विचित्रं सह जीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम्.

३.यथा प्रदीप्ते ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगा: तथैव नाशाय विशन्ति लोका: तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा: लेलीह्यसे ग्रसमान: समन्तात् लोकान् समग्रान् वदनै: ज्वलद्भि: तेजोभि: आपूर्य जगत् समग्रं भास: तव प्रतपन्ति विष्णो.][१]

(ऋक्संहि.१।४।१२-१३,भाग.पुरा.१०।८।३७-३९, भग.गीता.१२।१२-१३)

[१.मनको नीचा दिखानेवाले तुम! इस अवकाशमें चारों ओर फैले रज=लोकोंको सम्हाले हुवे हो, अपने बलकी प्रतिमान भूमिके निर्माता हो, अप=अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त फैले हुवे हो, तुम भूलोकके प्रतिमानके हो, विक्रमशीलोंके लिये दर्शनीय बृहद् लोकके रक्षक हो, पृथ्वी और द्युलोक के बीच रहे अन्तरिक्षको अपनी महिमाके सत्यसे पूरित करते हो. तुम्हारे सिवाय अन्य कौन है यहां!

२.गतिशील और स्थायी विश्व वहां दिखलायी देने लगा, आकाश दिशायें, पर्वत-द्वीप-सागरवाला भूगोल, वायु-अग्नि-चन्द्र-तारावाला ज्योतिष्चक्र... जल तेज वायु आकाश काल स्वभाव कर्म सूक्ष्म-स्थूलदेहोंके प्रभेदवाला...

३.जैसे प्रदीप्त अग्निमें खतम हो जानेको पतंगे तीव्रवेगके साथ कूदते हैं, वैसे तुम्हारे मुखोंमें सारे लोक अतिवेगके साथ प्रविष्ट हो रहे हैं]

(उपक्रम)

इन श्रुति पुराण और गीता के वचनोंपर दृष्टिपात करनेपर ब्रह्मचिन्तकको तो ब्रह्मके स्वरूपका निरूपण लगता है परन्तु अब्रह्मवादियोंको सारोपा-लक्षणा वृत्ति द्वारा ब्रह्माण्डका ही निरूपण प्रतीत होगा. अतएव यूरोपमें पॅनथीस्ट बारुक स्पिनोज़ाको ईश्वरवादी नास्तिक मानते थे पर नास्तिक लोग ईश्वरव्यसनी मानते थे. इसी तरह केवलाद्वैतवादियोंको यहां 'बाधार्थसामानाधिकरण्य'न्यायेन मिथ्याभूत सृष्टिद्वैतके प्रतिषेध द्वारा आरोपाधिष्ठानभूत ब्रह्मका कैवल्य ही केवल प्रतीत होगा. आत्यन्तिकद्वैतवादी, यद्यपि सृष्टि बाधार्ह मिथ्या तो नहीं मानते, फिरभी सृष्टिके ब्रह्माश्रित उत्पत्तिस्थितिलयात्मिका होनेसे ब्रह्मकी सृष्ट्याधारता या सृष्टि-अन्तर्यामिता ही यहां लक्षित होती मानेंगे. महाप्रभु वल्लभाचार्यको, परन्तु, यहां **''यह सब कुछ भूत और भावी भी पुरुष ही है-यह सारा ऐतदात्मक है''** (ऋक्संहि.१०।९०।२, छान्दो.उप.६।८।७) श्रुतिवचनोंमें प्रतिपादित सृष्टि और ब्रह्म के तादात्म्यका प्रतिपादन ही मान्य लगेगा.

महाप्रभुकी ऐसी इस अवधारणाकी उपपत्ति अल्बर्ट आईन्स्टीनके सापेक्षवादके आधारपर खोजनेके प्रयासके रूपमें प्रस्तुत विमर्श नहीं है. क्योंकि इस तरहकी अश्रौत उपपत्ति खोजना तो महाप्रभुके चिन्तनका मूलोच्छेदन होगा. उनका मत तो ''**अपनी बुद्धिसे वेदार्थ ऐसा होना चाहिये निर्धारित कर वेदके अर्थका विचार किया नहीं जा सकता.**

वेदान्तमें ब्रह्म जैसे समझाया गया हो वैसा मानना चाहिये'', ''**श्रुतिओंके बिना ब्रह्मवाद सिद्ध नही हो पाता**'' (अणुभा.१।१।१, १।३।३) है. अत: कोई भी अश्रौत उपपत्ति ब्रह्मवादकी खोजना तो उसे अनुपपन्न सिद्ध करनेमें पर्यवसित हो जायेगा. इसलिये हमारा उद्देश्य तो केवल आईन्स्टीनके सापेक्षवादी चिन्तनका वाल्लभ वेदान्तके दृष्टिकोणसे स्वरूपनिर्धारण करना ही है. महाप्रभुके चिन्तनका आधारतल जो श्रौतमीमांसा है वह अल्बर्ट आईन्स्टीनको मान्य होगा ऐसी अपेक्षा तो अतएव नितान्त बचकानी बात ही होगी. फिरभी कुछ अवधारणायें इन दोनोंके चिन्तनमें जिस समान आधारतलपर खड़ी हुयी हैं, उसे स्पष्टतया शब्दांकित कर देना हमारा लक्ष्य है.

''**द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीवएव च वासुदेवात् परो ब्रह्मन् नच अन्यो अर्थो अस्ति तत्त्वत:. तस्यापि द्रष्टु: ईशस्य कूटस्थस्य अखिलात्मन: सृज्यं सृजामि सृष्टो अहम् ईक्षया अभिचोदित:**'' (भाग.पुरा.२।५।१४-१७) की सुबोधिनी व्याख्यामें महाप्रभुने यह प्रतिपादित किया है कि यहां जो तत्त्व प्रतिपाद्य है वह नाना नहीं है. इन सभी रूपोंमें अनुस्यूत तत्त्व एक ही है. सभी कुछ पांच अंगोवाले होते हैं. इन पांच रूपोंमें सर्वप्रथम द्रव्य महाभूतादिका समवायी आधिभौतिक कारण माना जाता है. इसे पुराने युगका **matter**मानों या आधुनिक युगका **mass** मानों अन्तर क्या पड़ेगा? कर्म **motion or kinetic energy**जगत्के जन्ममें निमित्त कारण बनता है. द्रव्य/प्रकृतिके जिन गुणोंका परिणाम यह जगत् है, काल **time** उन गुणोंका क्षोभक होता है. एतावता फलितार्थ यही निष्पन्न होता है कि दो अणुओंको जोड़नेवाले कर्ताके बिना कालक्रमश: द्रव्यमें उत्पत्ति स्थिति या लीन होते रहनेके गुण उनकी कालिकता या कालसापेक्षता का प्रमाण है, आकस्मिक कुछ नहीं होता. आधुनिक विज्ञानमें देश और काल के इतरनिरपेक्ष द्वैत बजाय इतरेतरसापेक्ष युग्मकी अवधारणाके वश भूतसे वर्तमानमें गुजरते हुवे भविष्यकी ओर दौड़नेवाली ऋजुरेखा तो कबकी वक्रीभूत

हो कर वर्तुलाकार या चक्राकार के रूपमें मान्य हो गयी. भारतीय शास्त्रोंमें तो कालका स्वरूप आरंभसे चक्रात्मक ही ''**वो मेरे अनिमिष कालचक्रके ग्रास नहीं बनते हैं**''(भाग.पुरा.३।२५।३८) स्वीकारा गया था. वस्तुस्वरूपकी आधारभूत होनेके रूपमें प्रतीयमान तथता ही परिणामहेतु बनती है. अर्थात् मेघागमन होनेपर ही वर्षा होती है अन्यथा नहीं पानीसे दही जमता दूधसे ही जमता है आदि स्वभाव या **static energy** माना जा सकता है. और अन्तमें सच्चिदानन्दकी चिदंशभूत जीवचेतना इस चतुष्टयीमें द्रष्टा-कर्ता-भोक्ता बनती है. इसे भूतलपर प्रकट हुवे कर्मोके कारण स्वर्ग या नरक जानेवाली चेतना होनेके सीमित अर्थमें न ले कर द्रव्य काल कर्म और स्वभाव के इतरेतरसापेक्ष पर्यावरणमें प्रकट हो कर, समायोजित हो कर स्वयं तथा पर्यावरण के प्रति सभान अर्थात् द्रष्टा कर्ता भोक्ता हो पानेकी एक शक्तिके रूपमें जीवचेतनाको लेना विवक्षित है. आधुनिक विज्ञानके साथ संवादार्थ इसे एक अनिरास्य सम्भाव्यताके प्रत्ययके रूपमें लिया जा सकता है. आधुनिक विज्ञानमें जिसे 'स्पेस्' कहा जाता है उसे भारतीय शास्त्रोंने चिरकालसे द्रव्यकी ही आदिमतम अवस्था मान रखा है : ''**ऐसे उस आत्मामेंसे आकाश बनता है. आकाशमेंसे वायु, वायुमेंसे अग्नि, अग्निमेंसे जल, जलमेंसे पृथिवी**'' (तैत्ति.उप.२।१) अत: वह द्रव्याभावरूप नहीं. द्रव्यशून्य अवकाश स्वयं विज्ञान भी अब कहां स्वीकारता है? द्रष्टव्य : **"From the fact that space is directly united to the matter it contains, this space could not be infinite since the presence of matter would have the effect of curving it locally"** (हिलैर कुनी द्वारा उद्धृत 'अल्बर्ट आईन्स्टीन : द मॅन एंड हीज़ थियरी'पृ.८३). अर्थात् अवकाशके द्रव्यके साथ सीधा एकीभूत होनेके तथ्यके कारण, यह अवकाश अनन्त नहीं हो सकता. क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता इसमें दैशिक वक्र होनेका प्रभाव प्रकट करेगी. अन्तमें ये जिसके ये पांच रूप हैं वह ज्ञान-क्रियाशक्तिविशिष्ट अखिलात्मा स्वयं अविकृत रहते हुवे भी इन अनेकरूपोंमें सृष्ट्यर्थ प्रकट होता

है.

यह एक तत्त्वके अनेक रूपोंमें प्रकट होनेकी अवधारणामें द्योतित होता तादात्म्यरूप समीकरण अल्बर्ट आईन्स्टीन द्वारा भी प्रस्तुत हुवा है. उसकी तत्त्वमीमांसाके अनुसार वस्तुकी गति और स्थिति इतरनिरपेक्ष न हो कर इतरसापेक्ष होती है. द्रव्यपिण्ड और द्रव्यगत ऊर्जा परस्पर अविभाज्यतया एक हैं. दूसरे शब्दोंमें शक्ति और शक्तिमान के बीच तादात्म्य रहता है. यहां उल्लेखनीय है कि इतरसापेक्षका मतलब ही इतरेतरसत्त्वे इतरेतरसत्त्व या इतरसिद्धिसापेक्षसिद्धिकत्व होगा. अन्यथा कोई भी दो वस्तु आत्यन्तिकतया भिन्न हों तो अन्योन्याश्रय दोषका परिहार शक्य नहीं. तादात्म्यको स्वीकारनेपर तो आत्माश्रयदोषका भी परिहार हो जाता है, क्योंकि वस्तुस्वभावमें ही द्वित्व और एकत्व का सामान्याधिकरण्य होता है. अत: किन्हीं दोका इतरसिद्धिसापेक्षसिद्धिक होना उनके बीच तादात्म्यके बिना उपपन्न नहीं हो पाता. और न तादात्म्य ही इतरसिद्धिसापेक्षसिद्धिकताके बिना उपपन्न हो सकता है. सापेक्षवादके अनुसार जागतिक तत्त्वोंके नियम सभी द्रष्टाओंके लिये समान होते हैं, अत: प्रकाशकी गतिमें उसके द्रष्टाके अभिमुखतया या विमुखतया गतिशील होनेपर भी कोई घटबढ़ नहीं होती. एक अन्य अवधारणा यह भी है कि द्रव्यपिण्डका ऊर्जामें और ऊर्जाका द्रव्यपिण्डमें रूपान्तर भी सम्भव है. यों जगत्प्रसिद्ध “$E=mc^2$” समीकरण भी अन्तत: औपनिषदिक **“ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं”**(छान्दो.उप.६।८।७) रूप विरुद्धधर्माश्रयता रूपी तादात्म्यकी ही विधान्तरमें उद्घोषणा है. विशेषत: जर्मनीके भौतिकीके विद्वान् हैज़नबर्ग और बॉर्न की गवेषणा कि प्रकाशगुच्छ तरंगरूप (Waves) भी होता है कणरूप (particles) भी. इस उभयरूपताके कारण वैव्स् और पार्टिकल्स के स्थानपर वैवीकल्स (wavicles) का अंगीकार भी मानवीय मस्तिष्कमें इतरेतरविरुद्धतया प्रतीत होते प्रत्यय भी कहीं सामानाधिकरण हो सकते हैं. यह औपनिषदिक ब्रह्मके बारेमें वाल्लभ वेदान्तको अभिमत **“उस ब्रह्मके अनन्त मूर्त स्वरूप होते**

हैं कूटस्थ भी होता है और चलायमान भी परस्पर विरुद्ध सारे धर्मोंका आश्रय होनेके कारण युक्तिगोचर नहीं हो पाता” (त.दी.नि.१।७१) ऐसी ब्राह्मिक विरुद्धधर्माश्रयताके कितने समीप उपस्थापित कर देता है!

यह तो हुयी तत्त्वमीमांसाकी दृष्टिसे समान आधारतलकी कथा. इसे दोनोंकी ज्ञानमीमांसाके दृष्टिकोणसे भी परख लेना अपेक्षित है ही.

महाप्रभुका चिन्तन उन्हें बाह्य जगत्को मन:कल्पित मिथ्या मान लेनेकी अनुमति नहीं देता :

> **१.“कार्य प्रत्यक्षसिद्ध और कारण श्रुतिसिद्ध होता है. इसी तरह कारणताका प्रकार भी. यहां कार्य और कारण के बीच अभेद ही बोधनीय है. अन्यथा एकविज्ञानसे सर्ववस्तुविषयक विज्ञान सिद्ध नहीं हो पायेगा, कार्यप्रकारोंके भेदोंको न ज्ञान न होनेके कारण. अत: कार्योंके विविध प्रकार कारणतत्त्वके साथ विविध व्यवहारार्थ वाणीसे विविधतया संकेतित होते हैं ‘घट’-‘पट’ इत्यादि. इन रूपोंमें कोई भी उपादेय कार्य उपादानकारणसे पृथक् वस्तु नहीं होते. अन्यथा एकविज्ञान सर्वविज्ञान शक्य नहीं रह जायेगा. अत: रूपभेदेन कार्यकी वास्तविक सत्यता तो ‘मृत्तिका’ होनेके रूपमें ही है. अत: कार्योंका कारणसे अनन्य होना श्रुतिद्वारा बोधित होता है नकि मिथ्यात्व शुक्तिरजतकी तरह.”**
>
> **२.“किसी अनुभूतिमें बाह्यार्थ प्रतीत नहीं होता अर्थात् उसके बिना ही कुछ प्रतीत होने लगता है. अत: पदार्थोंके याथात्म्यको जाननेको प्रमाणोंकी उपयोगिता है. शंका उठ**

सकती है वस्तु स्वयं भी ऐसी ही क्यों नहीं हो सकती कि विद्यमान न रहनेपर भी प्रतीत होती हो? कुछ वादियोंने जगत्का मायिक होना भी तो स्वीकारा ही है. ऐसा तब माना जा सकता, यदि विचार करनेपर ऐसा उपपन्न होता तो. प्रमाणभूत वेद 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' ही कहता है. ब्रह्मविदोंकी प्रतीति भी ऐसी वर्णित है. भ्रान्तप्रतीति तो बाह्यार्थकी नियामक हो नहीं सकती. अन्यथा स्वयं भ्रमण करते व्यक्तिको भ्रमण करता दिखलायी देता बाह्य जगत् भी भ्रमण करता हुवा सिद्ध हो जायेगा. अत: बाह्य विषय (The thing as it is) और उसके साथ जुड़ी विषयता (The thing as it is concieved) के प्रभेद स्वीकारने चाहिये. जिससे उसे (स्वयंकी सामर्थ्य या असामर्थ्य के वश) देखनेवाली दृष्टिको भी अपना विषय मिल पाये... विषयता मायाद्वारा प्रकट होती है परन्तु विषय तो स्वयं भगवान्का लिया हुवा रूप है. मायाके भीतर (अर्थात् बाह्यजगत्में नहीं) भगवान् अपना विषयतारूप स्वरूप भी प्रकट करते हैं. इसे नि:स्वभाव (शून्य) नहीं मान लेना चाहिये, क्योंकि अपनी मायाशक्तिके वशात् धारण किया भगवान्का ऐसा भी रूप क्यों नहीं हो सकता? और फिर माया भी तो नि:स्वभाव नहीं आत्मशक्ति होनेके कारण. ये सारे खेल बुद्धिमें प्रकट होनेवाली चेतनाके हैं... ग्राह्यविषय या ग्राहकचक्षु दोनों ही नियत जड़स्वभाववाले होनेके कारण कल्पना करवाने या करने सक्षम नहीं माने जा सकते.''

(त.दी.नि.प्र.१।८३, सुबो.२।९।२२).

महाप्रभुके इस विधानको पाश्चात्य चिन्तनमें जिसे 'नाइव रियालिज़म्' अर्थात् यथादृष्टबाह्यार्थास्तित्ववाद माना है, उस अर्थमें लिया नहीं

जा सकता. और यही बात आईन्स्टीनके बारेमें भी सत्य है. इसे सन् १९४४ में लायब्रेरी ऑफ लीविंग फिलोसोफर्स् ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्रकाशित 'द फिलोसोफी ऑफ बर्ट्रेन्ड् रसेल' ग्रन्थमें आईन्स्टीनने रसेलकी ज्ञानमीमांसाके बारेमें अपना अभिप्राय देते हुवे जो लिखा था उसके आधारपर देख सकते हैं :

''दर्शनशास्त्रके बाल्यकालमें सामान्यतया माना जाता रहा कि केवल चिन्तनके आधारपर किसी भी तथ्यको जाना जा सकता है. वस्तुत: तो यह एक भ्रमणा थी जिसे कोई भी समझ सकता है. यदि एक दार्शनिक विचार पढ़ कर बादमें दूसरा विचार पढ़े और प्राकृतिक विज्ञान भी पढ़े तो कोई भी विस्मित नहीं होगा. प्लातो भी बौद्धिक प्रत्ययोंकी उच्चस्तरीय वास्तविकता स्वीकारता था इन्द्रियानुभूतिके विषयोंकी तुलनामें. यहां तक कि स्पिनोज़ासे ले कर हेगल तक यह पूर्वाग्रह दार्शनिक दृष्टिके लिये जीवनदायक शक्ति थी. और अब भी प्रमुख पात्र होनेका अभिनय यह पूर्वाग्रह कर रहा है. कोई प्रश्न उठा सकता है कि इस भ्रमणाके बिना दार्शनिक चिन्तनमें कोई बड़ी उपलब्धि भी सम्भव ही नहीं. हम, परन्तु, इस बारेमें कुछ भी पूछना नहीं चाहेंगे. चिन्तनशक्तिके ऐसे असीमित वेधक सामर्थ्यकी इस उच्चवर्गीय भ्रमणाका प्रतिपक्षी सर्वजनसाधारण दूसरी भ्रमणा 'नाइव रियालिज़म' है. इसके अनुसार वस्तु वही है जैसी कि हमारी इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष अनुभूत होती है. यह भ्रान्ति मनुष्य और पशुओं के व्यवहारपर अपना आधिपत्य दैनंदिन जीवनमें भी प्रकट करती है. सभी विज्ञानकी शाखाओंका परन्तु प्रस्थानबिन्दु भी यही भ्रमणा है, विशेषत: प्राकृतिक विज्ञानकी शाखाओंके लिये. इन दोनों भ्रमणाओंसे उत्तीर्ण होनेके उद्यम भी

एक-दूजेसे स्वतन्त्र नहीं हो पाते हैं. रसेलके अनुसार, परन्तु, ''नाइव रियालिज़म भौतिक विज्ञानकी ओर ले जाता है; और वह भौतिक विज्ञान यदि प्रामाणिक हो तो, नाइव रियालिज़म अप्रामाणिक सिद्ध होता है. अत: नाइव रियालिज़म अप्रामाणिक है'' इन वैदुष्यपूर्ण पंक्तियोंको पढ़नेसे पहले कभी यह बात मेरे खयालमें आयी नहीं थी.''

(रसेल्स् थियरी ऑफ नोलेज पृ.२८७).

एतावता यद्यपि यथानुभूतबाह्यार्थास्तित्ववादके बारेमें रसेलके विचारोंसे प्रभावित हुवे लगते होनेपर भी आईन्स्टीन बिशप बर्कलेके दृष्टिसृष्टिवाद, ह्यूमके संशयवाद; और इमानुएल कान्टके अज्ञेयवाद की विकसित कड़ीके रूपमें बर्ट्रेन्ड् रसेलको देखते होनेके कारण कुछ और भी विधान जो करते हैं वह अवश्य मननीय है :

''रसेलके पैने विश्लेषणको कोई कितना भी पसन्द क्यों न करता हो, उनके हालमें प्रकाशित 'मीनिंग एंड ट्रुथ' के कारण मुझे लगता है कि पराभौतिकीके प्रेतकी सी भयग्रन्थिने कुछ नुकसान अवश्य पहोंचाया है. क्योंकि इसी भीतिग्रन्थिके कारण बाह्य वस्तु या द्रव्य को गुणधर्मोंका केवल संघात मान लिया गया है. जो गुणधर्म इन्द्रियजन्य अनुभूतिके अपरिष्कृत उपादानतया ग्रहीत होते हैं. जबकि द्रव्य और गुणधर्मोंका संघात वस्तुत: तो एक ही होते हैं. क्योंकि यदि इन्द्रियग्राह्य गुणधर्मोंका संघात कहीं हो रहा है तो उन गुणधर्मोंके बीच परस्पर बाह्य भौमितिक सम्बन्धके कारण ही वह शक्य होगा. अन्यथा तो आइफिल टॉवर पेरिसमें हो या न्यूयोर्कमें कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिये था. वैसे इसके विरुद्ध इतना ही कहना चाहूंगा कि यहां बाह्यार्थ वस्तुको भौतिकीके विषयके रूपमें देखनेमें

अकारण पराभौतिक संकट खोजना आवश्यक नहीं है. एक स्वतन्त्र बौद्धिक प्रत्ययतया मान लेना चाहिये कि जो देश-कालके ढांचेमें अपने गुणधर्मोका संघातरूप होता है''.

(वहीं पृ.२९१).

इसके प्रत्युत्तरमें रसेलने केवल लाघवतर्ककी दुहाई दी कि संघात माननेसे काम चलता हो तो अतिरिक्त द्रव्यकी कल्पना क्यों करनी? और इस विषयमें भविष्यमें कभी विस्तारसे चर्चा करनेका संकल्प भी प्रकट किया. वह किया कि नहीं उसका महत्त्व यहां उतना नहीं, जितना कि इस बातका है कि वाल्लभ वेदान्तने भी बाह्यार्थ द्रव्य और गुणधर्मो के बीच तादात्म्य पहिलेसे स्वीकार रखा है **''जैसे प्रकाश रूपी गुणधर्मके अपने आश्रयभूत सूर्य आदिसे, पृथक् स्थित न होनेके कारण भिन्न नहीं होते हैं और प्रकाश रूपी गुणधर्म सूर्यमें समवेत और मूलाविच्छेदेन अपना आधार बना कर रहते होनेके कारण सूर्यरूप भी नहीं होते हैं, भिन्नतया प्रतीतिके वश भी. इसी तरह ब्रह्म और उसके गुणधर्मोके बारेमें समझ लेना आवश्यक है.''** (अणुभा.३।२।२८). पृथिवि जल तेज वायु या आकाश रूपी सारेके सारे बाह्य भौतिक द्रव्योंको भी इन्द्रियग्राह्य पञ्च तन्मात्राओंका घनीभाव माना गया है (द्रष्ट.सुबो.३।२६।३१-४६). इसके बावजूद महाप्रभु यह पृथक्करण करना चूके नहीं हैं कि सारा सविकल्पक प्रत्यक्ष बाह्यार्थकी तथताका यथार्थ चित्र ही प्रस्तुत करता हो ऐसा भी नहीं. क्योंकि वैसे तो, महाप्रभुके अनुसार, सारा सविकल्पक ज्ञान राजस होता है, फिरभी उस राजसताके अन्तर्गत अवान्तर तामसताके कारण भ्रम और अज्ञान भी बुद्धिमें प्रकट हो पाते हैं. ऐसी अवान्तर राजसताके कारण संशय भी प्रकट हो पाता है. निश्चय तो, परन्तु, बुद्धिमें अवान्तर सात्त्विकताके प्रबल होनेपर ही शक्य होता है :

१.''सत्त्वगुणकी प्रबलता होनेपर बुद्धि प्रमाण बन पाती

है, अर्थात् सत्त्वगुण प्रवृद्ध होनेपर अन्त:करण(चित्त-बुद्धि-अहंकार-मन) प्रमिति प्रकट करते हैं... अन्यथा ये ही सामग्री भ्रम भी प्रकट करती है''.

२.''मन जैसे इन्द्रियोंको बाह्यार्थकी ओर प्रेरित करता है वैसे ही बुद्धि इन्द्रियोंके ऊपर अनुग्रहकर्त्री बनती है. बुद्धिसे अनुगृहीत इन्द्रियां ही कुछ देख या कर पाती हैं. अतएव बुद्धिकी अवस्थाओंकी तरतमताके वश इन्द्रियों द्वारा सम्पन्न होते ज्ञान और क्रिया में भी तारतम्य प्रकट होता है... क्योंकि अन्यथा केवल चक्षुसे ही ज्ञान प्रकट हो जाता होता तो तारतम्य हो ही नहीं पाता... अनुभवकी यथार्थताको 'निश्चय' कहा जाता है, क्योंकि बाह्यार्थ ज्ञानका आधा अंग होता है.''

(त.दी.नि.२।१४७, सुबो.३।२६।२९-३०).

पॉल आर्थर स्किल्प द्वारा सम्पादित लिविंग लायब्रेरी ऑफ फिलोसोफर्स ग्रन्थमालामें अन्तर्गत 'अल्बर्ट आईन्स्टीन दार्शनिक-वैज्ञानिक' ग्रन्थमें महाप्रभुके विषय और विषयता के प्रभेदके जैसे ही प्रभेद सूचित करते हुवे विक्टर एफ लेन्ज़ेनने दो महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्रकट किये हैं :

1.Natural science during modern era generally has presupposed dualism in theory of knowledge. Data of perception have been acknowledged to be relative to percipient events; objects have been concieved as independent of perception. In dualism a physical object is held to be an independent reality which manifests itself by initiating a chain of process that act on sensory mechanism. The resulting perception is interpre-

ted as mediate cognition of an independent object. Einstien has remarked that this dualist conception is an application of physical ways of thinking to the problem of cognition.''(pp.363).

2.''Cognition of reality, however, originates in sensory experience, is tested by sensory experience, and shares the uncertainty of such experience. Cognition of physical reality occurs through in the media of concepts which express properties of objects in sptio-temporal environment.''(pp.384).

अर्थात् आधुनिक युगमें प्राकृतिक विज्ञानने सामान्यतया ज्ञानमीमांसामें द्वैतवादका आधारतया अवलम्बन किया है. इस द्वैतवादमें प्रत्यक्षानुभूतिकी घटक सामग्रीको प्रत्यक्षानुभूतियोग्य घटनाओंसे जुड़ा माना जाता है. विषयवस्तुको प्रत्यक्षानुभूतिसे स्वतन्त्र माना गया है. इस द्वैतवादमें भौतिक वस्तुको स्वतन्त्र माना गया है. यह भौतिक वस्तु प्रकट होती है जो ऐन्द्रियक तन्त्रको प्रभावित करनेवाली शृंखलाकी आरम्भक होती है. फलरूपेण होती प्रत्यक्षानुभूति स्वतन्त्र बाह्यार्थका व्यवहित प्रतिनिधित्व करती है. आईन्स्टीन यह सूचित करते हैं कि ज्ञानमीमांसाकी समस्याओंके भौतिक पद्धतिसे विचार की यह द्वैतवादी धारणा क्रियान्विति है. बाह्यसत्ताका ज्ञान प्रकट होता है इन्द्रियजन्य अनुभूतिद्वारा, उसकी परीक्षा भी इन्द्रियजन्य अनुभूतिद्वारा होती है. यो वह अपना भाग अनिश्चयात्मकता भी वहींसे जुटाती है. भौतिक बाह्यार्थका ज्ञान तो प्रत्ययके माध्यमसे होता है जो बाह्यार्थके गुणधर्मोंको देश-कालके जुड़मा ढांचेमें अभिव्यक्त करता है. यों देखा जा सकता है कि श्रौत चिन्तन और वैज्ञानिक चिन्तन ब्रह्म या ब्रह्माण्ड रूपी दो विभिन्न चिन्त्यविषयोंकी प्रस्तुतिमें तत्त्वमीमांसकीय प्रत्यय और ज्ञानमीमांसकीय प्राग्धारणा कैसे एक जैसी ले कर प्रवृत्त

हुवे हैं. यही इनका समान आधारतल है. इसके बाद सुखेन वाल्लभ मतकी दृष्टिसे अल्बर्ट आइन्स्टाईनके मतका वाल्लभ मतकी प्रमाण प्रमेय साधन फल प्रक्रियाके अनुसार स्वरूपनिर्धारण किया जा सकता है.

(प्रमाणत: स्वरूपनिर्धारण)

जैसा कि हम देख गये आईन्स्टीनने भौतिकीके प्रतिपाद्य बाह्यार्थको युक्तिग्राह्य **"grand aim of all science is to cover the greater number of empirical facts by logical deduction from smaller possible number of hypotheses or axioms"** (द्रष्ट. उद्धृत ले.लिंकन बार्नेट 'द युनिवर्स एंड डॉ. आईन्स्टीन'पृ.११२-११३) अर्थात् विज्ञानकी सभी शाखाओंका भव्य उद्देश्य यही है कि अधिकतर आनुभविक तथ्योंको न्यूनतर प्राग्धारणा अथवा स्वयंसिद्ध धारणाओंके यौक्तिक निगमनके घेरेमें लाना. अर्थात् इन्द्रियग्राह्य गुणधर्मोका केवल संघात माननेके बजाय उन गुणधर्मोंकि इन्द्रियग्राह्य संघातको यौक्तिक उत्प्रेक्षा यौक्तिक स्वयंसिद्ध प्रत्ययोंके निगमनगम्यतया एकीकृत करना इन्द्रियग्राह्य गुणधर्म संघात और यौक्तिक प्रत्ययार्थ द्रव्यमें यह तादात्म्यकी स्वीकृति है.

वह महाप्रभुने भी श्रुति-आदि शास्त्रोंद्वारा वैसे प्रतिपादित होनेके रूप मान्य कर रखा है. न तो श्रुतिप्रामाण्य आईन्स्टीनको और न युक्तिप्रामाण्य महाप्रभुको मान्य है. फिरभी अपने-अपने प्रमेय ब्रह्माण्ड या ब्रह्म के बोधमें फलमुखप्रमाके जनकतया नहीं परन्तु उक्त बोधमें प्रमास्वरूपयोग्यताके सम्पादकतया कुछ बातें ऐसी हैं जो इन दोनों चिन्तनोंको एक ही मध्यपाती दीवारके व्यवधानवाले दो विभिन्न द्वारोंवाले भवन जैसा स्वरूप प्रदान करती हैं.

साक्षात् प्रमाण दोनोंके पृथक् हैं फिरभी प्रमाणावलम्बनार्थ अपेक्षित स्वरूपयोग्यता या तो जैसे आंगिकोंके सम्पादित करनेपर सिद्ध होती

है वैसे ही प्रतिबन्धोंका निरास करनेपर भी. उक्तविध प्रमेयोंके बोधार्थ प्रमाणव्यापारमें दोनों ही अहंकारको प्रतिबन्धक मानते हैं. यह विचारणीय है कि कैसा अहंकार प्रतिबन्धक होता होगा?

कुछ अहंकार शारीरिक होते हैं जैसे बलवान् या सुन्दर होनेका अहंकार. कुछ अहंकार पारिवारिक होते हैं जैसे माता-पिता या पति-पत्नी आदि होनेके अहंकार. कुछ सामाजिक भी होते हैं जैसे जनमान्य नेता या उच्च गुरुपदासीन होनेके कारण पनपते अहंकार. कुछ अहंकार धार्मिक भी हो सकते हैं जैसे परधर्मिओंको पापी मूढ़ नरकगामी पतित मान लेनेको उकसानेवाला अहंकार. कुछ अहंकार प्राणियोंके वर्गभेदके कारण भी हो सकते हैं. उदाहरणतया हालमें ही एक प्राणि-उद्यानमें कोई मनोविक्षिप्त मनुष्य बाघके पींजरेमें आत्मघातके लिये कूद पड़ा और वहांके संचालकोंने मनुष्यको अवध्य मान कर बिचारे निरपराध बाघको शूट कर दिया! ऐसे अन्य भी कतिपय अहंकारोंका यहां कोई प्रसंग नहीं है. यहां तो प्रसंग है जगत्का प्रत्येक पदार्थ जो एक-दूसरेके साथ तादात्म्यभावापन्न है उस परम सत्यको व्यक्ति अपने दर्शन धर्म या विज्ञान के द्वारा पनपाये दृष्टिभेदके वश वैयक्तिक अहंकार मुग्ध होनेके कारण स्वीकार नहीं पाता!

इस विषयमें आईन्स्टीन कहते हैं **"what separates me from most so called atheists is a feeling of utter humility toward the unattainable secrets of harmony of the cosmos.", "If it is one of the goals of religion to liberate mankind as far as possible from the bondage of egocentric cravings, desires, and fears, scientific reasoning can aid religion in yet anoyher sense."** (Al.En to Josef lewis April 18.1953, essay on Science and religion) आईन्स्टीन् कहते हैं कि दूसरे जो नास्तिक हैं उनसे मैं कैसे अलग हूं? नास्तिक तो सभी युगोंमें

होते रहे हैं. रसेल् खुद एक नास्तिक चिन्तक थे. ऐसे नास्तिकोंके साथ उनका लगातार संवाद (**continous dialogue**) चलता रहता था. पर "feeling of utter humility" नास्तिकोंमें दैन्यभाव नहीं होता और दैन्यके बिना कॉस्मोस्की हार्मनीवाली सिक्रेट् (ब्रह्माण्डके तादात्म्यवाला रहस्य) समझमें नहीं आती है.

मुझे लगता है यहां 'एथिस्ट' पदका प्रचलित अनीश्वरवादी लेनेके बजाय प्रस्तुत सन्दर्भमें "नास्ति इति मतिः यस्य सः नास्तिकः" ईश्वर स्वर्ग धर्म आदि निषेध्यविशेषोंकी उपेक्षा करके सामान्य निषेधपरा मतिके अर्थमें थोड़ी दैरके लिये स्वीकार कर चलें तो सहज ही समझमें आनेवाली बात है अपनी अनुभूतिसे पृथक् अनुभूयमानको स्वीकारनेमें अनुभूति ही पर्याप्त होती है परन्तु अनुभूयमानको भी अस्वीकार करना हो तो दार्शनिक अहंकारको प्रबल बनाये बिना वह सुकर नहीं होता! श्रद्धाको अनेकधा आस्तिक्यबुद्धिके रूपमें स्वीकारा जाता है. महाप्रभु कहतें हैं कि **"कृष्ण सर्वात्मक हैं अत: उनके सामने हमें दैन्यभाव रखते हुवे अहंकार नहीं करना चाहिये. वह अहंकारका मनोभाव यदि स्वत:सिद्ध भी हो तो भी मनमें दैन्यकी भावना auto suggestion** तो की ही जा सकती है. कमसे कम जहां-जहां हम कृष्णका अनुभाव देख पाते हों वहां तो अंहकार करनेसे बचना चाहिये, वैसे तो सारे लोकमें ही भगवद्बुद्धि रखनी चाहिये."(त.दी.नि.प्र.२।२४१).

यह कृष्णको ब्रह्म परमात्मा भगवान् समझ कर किया गया सर्वतादात्म्यके हेतुवश भेददृष्टिके उत्तेजक अहंकारका निषेध है. यह अहंकार सहज स्वाभाविक अहंकार नहीं परन्तु 'विकृत' कहो या शरीर परिवार समाज धर्मसम्प्रदाय बुद्धिशाली प्राणीसमूह में स्वयंकी स्थितिके वशात् परिष्कृत होता अहंकार कहो एक ही कथा है. ऐसा अहंकार नवजात शिशुकी अहंसवेदनाके जैसा निर्दोष नहीं होता. उसे तो भगवान् गीतामें अपना ही रूपविशेषके होनेके रूपमें मान्य करते हैं **"भूमि**

जल अनल वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार ये मेरी अष्टविध अवर प्रकृति परा प्रकृति जीवचेतना जो इन्हें धारण करती है उसकी ही तरह"(भग.गीता.७।४-५). वस्तुत: तो ब्रह्मकी अद्वय एकरस स्वयंप्रकाशरूपताका अनेकभावापन्न एक कृत्रिम रूप हमारा अहंकार होता है जिसे उद्देश्य बना कर उपनिषदोंमें कहा गया है **"यह पहले ब्रह्म ही था और उसने अपने आपको जाना कि ब्रह्म हूं सो वह सब कुछ बन गया. इस रहस्यको जो भी देव ऋषि या मनुष्य जान पाता है कि मैं ब्रह्म हूं वह ये जो कुछ हैं सब बन जाता है"** (बृह.उप.१।४।१०). यह शुद्ध अहंकार सर्वतादात्म्यकी कहो या हार्मनीकी कहो, उसे जाननेमें प्रतिबन्धक नहीं होता. शरीर परिवार समाज आदिकी परिच्छिन्नताके परिवेशमें परिष्कृत या विकृत हो जानेवाला अहंकार परन्तु सर्वतादात्म्यभावके अनुसंन्धानमें निश्चय ही प्रतिबन्धक बनता है. एक बार स्वयं आईन्स्टीनके विरोधमें तदातन शताधिक विद्वानोंने अपने-अपने लेखोंका संकलन प्रकाशित किया था ऐसा स्टीफेन हॉकिंग 'अ ब्रीफ हिस्टॉरी ऑफ टाइम'(पृ.१८८) में वृत्तान्त देते हैं और इसपर आईन्स्टीनने बहोत रोचक उद्गार प्रकट किया कि "यदि मैं ग़लत होता तो सौ विद्वान नहीं अकेले किसी विद्वानकी आलोचना भी पर्याप्त होती!

इसमें परन्तु अपनी आस्थाके प्रति आस्तिक्यबुद्धि या श्रद्धा का अनुभाव ही प्रकट हो रहा है अहंकारपूर्ण नास्तिक्यबुद्धिका नहीं. इस ऐसे अहंकारसे बचनेकी महाप्रभु और आईन्स्टीन दोनों प्रेरणा देते हैं. यहां इस प्रमेयकी प्रमाके उद्बोधनमें अहंकारका शिथिलीकरण प्रमाणकी स्वरूपयोग्यता सम्पादित करता हुवा हम पाते हैं.

आईन्स्टीन् जो कहना चाहता वह यह कि दूसरे नास्तिकोंमें दैन्य नहीं है. ब्रह्माण्डमें जो रहस्य है उनके प्रति मुझे दैन्यका भाव है, अहंकारका भाव नहीं है."

प्रमाणमें सबसे पहला प्रमाणांग दैन्य है "Feeling of utter humility towards the unattainable secrets of harmony of the cosmos" ब्रह्माण्डका रहस्य अज्ञेय हो या दुर्ज्ञेय हो. हर नास्तिकमें इसके विरोधमें अहंकार होता है कि मैने सब कुछ जान लिया है.

इस विषयमें एक अति सुंदर उदाहरण आपको बताउं. फ्रान्सूमें लुइस् १४वां था. तब विश्वकोश (encyclopedia) बन रहा था. उसमें 'गॉड्'का प्रकरण नहीं था. लुइस् १४ने पूछा कि इसमें गॉड्का chapter (प्रकरण) क्यों नहीं है? तब विश्वकोशकारने कहा कि "We know that God is not required subject in encyclpedia". वैसे विश्वकोश तो न जाने कितने निरर्थक लगते विषयोंको भी संकलित तथा ग्रन्थस्थ करता ही होता है. प्रश्न आवश्यक होने या अनावश्यक होने का नहीं. अलेक्जेंड्रियाके उस महान ग्रन्थागारको भस्मसात् करनेवाले अरबसेनापति उमर खलीफाका भी कुछ ऐसा ही धार्मिक अहंकार था कि कुरानमें जो कहा गया है वो बातें इन ग्रन्थोंमे हों तो कुरानके रहते इनकी आवश्यकता क्या है? और उससे विरुद्ध हों तो भी इनकी आवश्यकता क्या है? परमेश्वरके प्रकरणको अनावश्यक माननेवाला नास्तिक्यमतिवाला वैदुष्यपूर्ण अहंकार और धर्मोन्मादके अहंकार के बीच तारतम्य प्रकट नहीं होता, अधार्मिक या धार्मिक होनेके प्रभेदके अलावा!

आईन्स्टीन् कहते हैं "मेरेमें ऐसा अहंकार नहीं है. secret unattainable है और वह यदि unattainable secret है तो मैं जान नहीं सकता" इससे अपना अहंकार विगलित होना चाहिये. आकाशमें निहारिका तारामण्डल ग्रहपिण्डों को कितनी लम्बी अवधि तक दैन्यके साथ जब हम निहारते तब हमें कभी कुछ कुछ इशारा मिल पाता है. अन्यथा उनके रहस्यको समझना संभव नहीं. वैश्विक तादात्म्यकी

अनुभूतिमें प्रतिबन्धक विकृत अहंकार पुनः उक्त तादात्म्यानुभूतिके आनुषंगिक बन पाये, ऐसे उसे स्वाभाविक स्वरूपमें प्रतिष्ठापित करनेके प्रयोजनवश महाप्रभु भी कहते हैं :

"सच्चिदानन्द ब्रह्मके आनन्दांशके तिरोधानवश प्रकट हुयी सृष्टिमें आनन्दांश पुनः कथञ्चित् प्रकाशित अर्थात् (तुलनीय : 'मेरे वाणी प्राण चक्षु श्रोत्र बल इन्द्रिय सभी कुछ ब्रह्म हैं, जिनका मैं कभी निराकरण न करूं, मैं ब्रह्मका कभी निराकरण न करूं और ब्रह्म मेरा निराकरण करे, ऐसा अनिराकरण हो पाये तो आत्मा निरत हो पाता है. तब उपनिषत्में निरूपित ब्रह्मके धर्म जीवके भीतर भी' केनोप.१) प्रकट होने लगते हैं. इस तरह भगवान् कभी सभी कुछ स्वयं बन जाते हैं, कभी पुरुषको द्वार बना कर... कभी आकाशादिका क्रमिक निर्माण कर उनमें प्रविष्ट हो कर जड़ जीव अन्तर्यामी के अनेकविध रूपोंको धारण करते हैं. अचिन्त्य अनन्त शक्ति होनेके कारण वे क्या नहीं कर सकते हैं! यही कारण है कि श्रुतिओंमें एक नहीं प्रत्युत अनेक प्रकार सृष्टिके प्राकट्यके वर्णित हैं. ऐसे सारे निरूपणोंका प्रयोजन कथञ्चित् उसके माहात्म्यका निरूपण करना है... वेदोंमें भगवन्माहात्म्य प्रतिपादन करनेका प्रयोजन ब्रह्मका माहात्म्य समझा कर बादमें उसके साथ 'तत् त्वम् असि' ऐसे उपदेश द्वारा उस ब्रह्मके साथ हमारा तादात्म्य/अभेद समझाना है. ताकि हम भक्ति कर पायें. क्योंकि भक्तिके दो अंश होते हैं एक माहात्यका ज्ञान और दूसरा स्नेह."

(त.दी.नि.प्र.३६-४२).

ब्रह्मका यह माहात्म्य है कि वह सर्वरूप धारण करनेके बाद

सर्वातीत भी रहता है "**यह सभी कुछ वह पुरुष है, चाहे भूतकालीन हो चाहे भविष्यत्कालीन. वह ऐसे अमृतत्वका ईश है कि अन्नके रूपमें खाये जानेपर भी खतम नहीं होता. यह तो सब उसकी महिमा या माहात्म्य है. वह स्वयं तो इससे कहीं अधिक है**"(ऋक्संहि.१०।९०।२) स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे माहात्म्यके निरूपणके साथ उसके साथ तादात्म्यका भी यहां निरूपण है. जो सहज स्वस्थ अहंकारका असहिष्णु नहीं है; और, यह हृदयारूढ़ हो पाये तो अस्वस्थ विकृत अहंकारका कोई औचित्य भी टिक नहीं पाता.

आईन्स्टीन्का भी जगत्प्रसिद्ध उद्गार "**science without religion is lame, religion without science is blind, what is required is scientific religion and not lame and blind**"(**Einstien's essay on Science and religion**) विज्ञानके बिना धर्म अन्धा है और धर्मके बिना विज्ञान पंगु है. इसके अनुरूप महाप्रभुके उल्लिखित वचनोंको ढालना हो तो कहा जा सकता है ब्रह्मके सर्वतादात्म्यभावापन्न होनेपर सर्वातीत होनेके माहात्म्यको जाने बिना भगवत्स्नेह अन्धवत् हो जायेगा और भगवत्स्नेहविहीन ब्रह्मका माहात्म्यज्ञान पंगुवत् होता है. '**religion**'पद लेटिन '**re legare**' पुन: बंध जानेके अर्थमें प्रयुक्त होता है. और '**science**' अनुभवजन्य ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त होता है. द्वैतवादी आस्था मनुष्यको धर्मसाधनाकी प्रेरणा दे कर उस ईश्वरके साथ उसे इस लोकमें बांधना चाहती हैं जो सृष्टिका कर्ता नियन्ता कर्मफलदाता आदि अलौकिक गुणधर्मोंसे युक्त है. महाप्रभुके मतमें परन्तु धर्मतया विहित सभी साधना सच्चिदानन्द ब्रह्मके तीन आयामोंमें से सत्वाले आयामके साथ कर्मसाधनाद्वारा पुन: जुड़ा जा सकता है. चित्वाले आयामके साथ ज्ञानसाधनाद्वारा पुन: जुड़ा जा सकता है. और आनन्दवाले आयामके साथ भक्तिसाधनाद्वारा जुड़ा जा सकता है. एतदर्थ शरणागति उसके माहात्म्यकी अनुभूतिका उद्यम है और समर्पण उसके सर्वतादात्म्यको अनुभूत कर पानेकी दीक्षा है. और उसका नाम 'ब्रह्मसम्बन्ध' है.

इतना ही नहीं अपितु उसके उपदेशके उपक्रममें ही पहले समुद्रतरंगन्यायेन अव्युच्चरित अंशांशिभाव निरूपित किया गया है, जो बादमें अग्निविस्फुलिंगन्यायेन व्युच्चरणपूर्वक अंशांशिभाव बन जाता है. इसके कारण आपसी तादात्म्यकी विस्मृति और अहंकारकी विकृति जो प्रकट होती है उसे याद दिलानेका वह उपदेश है. यह 'रि-लिगारे' नहीं तो और क्या है? अनुभवविहीन पुन: भगवान्के साथ बंधनेकी प्रक्रियाको आईन्स्टीन जो अन्धप्रक्रिया मान रहें, वह उनके सापेक्षवादद्वारा प्रस्थापित सर्वतादात्म्यवादी दृष्टिसे मण्डित हो तो अन्धी नहीं रह जाती. और यह अनुभवजन्य ज्ञान रूपी विज्ञान भी जगद्विनाशक बन कर जगत्की सारी उर्वरा शक्तिओंके केवल उपभोगार्थ शोषणरूप विज्ञान हो तो ऐसे विज्ञानको पंगु ही मानना पड़ेगा. अत: धर्माग्रही या धर्मपक्षपाती कदाचित् इस विधानको "धर्मविहीन विज्ञान अंधा होता है और विज्ञानविहीन धर्म पंगु" ऐसे भी प्रस्तुत करना चाहें! दोनोंमेंसे किसी भी एक स्थितिमें ब्रह्म या ब्रह्माण्ड का माहात्म्यज्ञान और उसमें प्रकट हुयी विविधताओंमें इतरेतरतादात्म्यको तो कदापि विस्मरणीय नहीं बनाना चाहिये.

(प्रमेयत: स्वरूपनिर्धारण)

श्रुतिओंके संहिताभागमें 'ब्रह्म'पदके अलावा भी जिन अन्यान्य पदोंसे परमतत्त्वको निर्दिष्ट किया गया, उनमें स्रष्टा और सृष्टि के बीच रहे तादात्म्यभावके उद्बोधनार्थ, 'पुरुष'पद अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है. क्योंकि यह पांचभौतिक शरीरमें अवस्थित जीवात्मा और समग्र ब्रह्माण्डमें अवस्थित परमात्मा दोनोंका वाचक होनेकी अर्थवत्ता निभा पाता है.

जहां भी एकाधिक अर्थोंका वाहक वाणीमें ऐसा कोई एक पद स्फुटित होता है, या इन्द्रियसंवेद्य एकाधिक अर्थोंके अवधारणार्थ-प्रत्यायनार्थ बुद्धिमें ऐसा कोई एक प्रत्यय प्रस्फुटित होता है, वहां अर्थोंके बीच रही विविधता या अनेकता की उपेक्षा करनी ही पड़ती है. किसी

व्यक्तिके साथ वार्तालाप करते समय मुखके भावोंको देखा जाता है, पर कानोंपर ध्यान देना आवश्यक नहीं. एतावता उसके मुखके दोनों ओर कान नहीं है, ऐसा तो सोचा नहीं जा सकता! उपेक्षाका यह भाव ही, परन्तु, कभी-कभी संज्ञान और संख्यान में रहे एकत्वके दुराग्रहवश संज्ञेय और संख्येय में रही अनेकताके भी प्रत्याख्यान करनेकी वैचारिक रुग्णतामें विकृत हो जाता है. प्रतिक्रियारूपेण कभी अनेकत्ववादी भी एकत्वके ही प्रत्याख्यानमें कटिबद्ध हो जाते हैं. इस अबौद्धिक कलहात्मक उपद्रवकी रणभूमि एकमात्र मानवीय मष्तिष्क है, विशेषत: धार्मिक दार्शनिक और वैज्ञानिक मानवोंका!

प्रचलित धारणाके अनुसार हमारे शरीरमें बाह्य पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय और चित्ताहंकारबुद्धिमनोरूप चतुर्ग्रन्थी अन्त:करण होता है. इनमें ज्ञानेन्द्रियोंके प्रमेयरूपेण हमने रूपरसगन्धादि तन्मात्रायें मान्य की हैं. इसी तरह कर्मेन्द्रियोंसे सम्पाद्य गमनादानादि पांच कार्य मान लिये. वैसे कौन नहीं जानता कि हमारे शरीरके भीतर भुक्तान्नपाचन रक्तसंचालन श्वासग्रहणादि की आन्तरिक क्रिया और संवेदना के उत्तरदायित्वका निर्वाह करनेवाली कितनी सारी आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भी हैं ही. और उनके कितने सारे विषय और व्यापार भी शरीरके भीतर सतत चलते रहते हैं! ऐसे इस मतिमान प्राणीकी मतिमें कभी अभिमत तो कभी अनभिमत, स्वयं उस प्राणीके भीतर क्रियान्वित होते व्यापारों और संवेदनाओं के साथ जुड़े विषयों के विमर्शमें निरत मानवमतिने ज्ञान-विज्ञानकी अनेक शाखा-प्रशाखायें विकसित की हैं. इनके गवेषणीय एवं प्रतिपाद्य विषय परन्तु प्राय: परिच्छिन्न ही होते हैं. मानवीय ज्ञानकी तीन विधा, नामश:, धर्म दर्शन और ब्रह्माण्डविज्ञान के विषय अपरिच्छिन्न होते हैं. इस कारण ज्ञानकी इन विधाओंमें द्वैत या अद्वैत का विवाद अधिक विकराल बन गया. यों ब्रह्माद्वैतके पक्षधर ब्रह्माण्डकी विविधताको कभी झुठलाना चाहते हैं, तो ब्रह्माण्डकी विविधताके पक्षधर स्वयं ब्रह्मको ही.

महाप्रभु और आईन्स्टीन इस अतिरेकके पक्षपाती न होनेके कारण दोनोंके बीच रहे द्वैतका अंगीकार करनेपर भी दोनोंके बीच किसी तरहका अभेद अर्थात् तादात्म्यको भी अंगीकार करनेकी प्रेरणा प्रदान करनेवाले चिन्तक हैं. प्रमेयको इस तरह निहारनेपर इन दोनोंके चिन्तनका समान आधारतल सुखेन दृष्टिगत हो पाता है.

महाप्रभुके **''प्रमेय तो केवल एक हरि हैं जो सगुण भी हैं और निर्गुण भी. अपने गुण कार्य धर्म क्रिया उत्पत्ति आदि अनेक रूपोंमें वही प्रकट होते हैं. जैसे शब्द ही प्रमाण है, विशेषत: वेदादिरूप, ऐसे हरि ही प्रमेय है सर्वभावापन्न''** (त.दी.नि.प्र.२।८४). इस विधानकी तरह ही जोसेफ लुइसको १८ अप्रैल १९५३ में लिखे पत्रमें आईन्स्टीनने भी स्वीकार किया है कि **''ब्रह्माण्डव्यापी संवादिताके अलभ्य रहस्योंके प्रति अपने हृदयके अतिशय विनीत भावोंके कारण अधिकांश तथाकथित नास्तिकोंसे मैं अलग-थलग पड़ जाता हूं''** आईन्स्टीनके इस विधानका महाप्रभुके विचारसे संवाद खोजना हो तो यह विधान अवलोकनीय है :

> **''बहुधा भगवान्के माहात्म्यज्ञान पानेमें निरत और उसकी थोड़ी-बहोत झलक पाते ही भक्तिकी प्रार्थना करनेवाले लोग भी भगवान्की मायासे मोहित हो जाते हैं. वे अपने भगवन्माहात्म्यके पल्लवग्राही पाण्डित्यसे दूसरोंको मोहित करने जा रहे होते हैं, तभी स्वयं भी मोहित हो जाते हैं. कोई भी पथिक अपनी यात्राके सारेके सारे पथको कुछ अधिक दूरी जानेपर देख या निरूपण नहीं कर पाता है... ऐसी स्थितिमें प्रतिक्षण नूतन असंख्य ब्रह्माण्डोंके निर्माणपथपर यात्रामें निरत ब्रह्मके... रहस्यको इदमित्थं कौन जान सकता है! अनन्त ब्रह्माण्डोंमें से किसी एक गूलर जैसे ब्रह्माण्डमें पनपनेवाले मशकोंके**

जैसे हम अपनी स्वयंकी भी गति जान न पाते हों तो, उसकी गति कैसे जान पायेंगे?

(सुबो.३।६।३९).

अतएव आईन्स्टीन भी कहते हैं कि "**मेरी सीमित मानवमति और इस ब्रह्माण्डव्यापी संवादिताको दृष्टिगत करनेपर मैं यह तो मान लेने उद्यत हूं कि अब भी कुछ लोग ईश्वरके अस्तित्वको नकारते हैं. मुझे, परन्तु, एक बात क्रोधजनक लगती कि वे लोग खुदकी मान्यताओंके समर्थनमें मुझे क्यों उद्धृत करते हैं**" (प्रिन्स्टन युनिवर्सिटी प्रेसद्वारा प्रकाशित आईन्स्टीनके उद्धरण पृ.२१४). एतावता आईन्स्टीन ब्रह्माण्डव्यापिनी संवादिताको ब्रह्माभिव्यक्ति माननेमें पीछेहट करेंगे ऐसा सोचा नहीं जा सकता.

बर्ट्रेन्ड् रसेल्से भी पहले फिलोसोफर्समें जो मुझे सबसे अच्छा लगता है वो है बारुक स्पिनोज़ा. भगवद्गीता ब्रह्मसूत्र भागवत आदिपर अवलम्बित महाप्रभुके दार्शनिक मतमें अक्षरब्रह्म और पुरुषोत्तम का प्रभेद निश्चित ही प्राणोपम है. फिरभी इस एक तथ्यको थोड़ी दैरके लिये भुला कर केवल अक्षरब्रह्ममूलक ब्रह्मवादकी उत्प्रेक्षा की जाये तो बारुक स्पिनोज़ाका दर्शन महाप्रभुके मतका निकटतम पड़ौसी मत है. वैसे न वह हमारे मतको जानता था और न वो समकालीन ही था. फिरभी महाप्रभुको पढ़ें तो स्पिनोज़ा समझमें आता है और स्पिनोज़ाको पढ़े तो महाप्रभु भी भलीभांति समझमें आ पातें हैं. वैसे 'बारुक'का अर्थ भी कृपापात्र होता है और महाप्रभु जीवात्माके साधनानुष्ठानोंको भगवत्कृपाके अवान्तरव्यापाररूपेण देखनेके आग्रही हैं. आईन्स्टीन भी कुछ ऐसी ही धारणा प्रकट करते हैं. जब नाज़ीज़मसे त्रस्त हो कर अमेरीका गये तब अमेरिकनोंकी धारणा थी कि आईन्स्टीन नास्तिक हैं. इसलिये सभी लोग आईन्स्टीन्को 'गॉड्'के बारेमें प्रश्न पूछ-पूछके कॉर्नर् करना चाहते थे. उनके प्रश्नोंके उत्तरमें आईन्स्टीन

क्या कहते हैं वह देखने लायक है :

"I belive in spinoza's God, who reveals Himself in the orderly harmony of of what exists, not in a God who concerns himself with fates and actions of Human beings" (पूर्वोद्धृत 'आईन्स्टीन दार्शनिक-वैज्ञानिक' पृ.६५९). आईन्स्टीन गॉड्के अस्तित्वको स्वीकारते हैं किन्तु इस खुलासेके साथ कि "हां मैं स्वीकारता हूं पर स्पिनोज़ाने जैसे परमेश्वरका प्रतिपादन किया है वैसे परमेश्वरको" अपनी ऐसी अवधारणाकी उपपत्ति देते भी हैं कि ऐसा परमेश्वर जो स्वयंको दृश्यमान सत्ताकी सुसंवादितामें प्रकट करता हो. ऐसे परमेश्वरमें उनकी आस्था नहीं है जो (दिन-रात कहीं ऊपर बैठे-बैठे) मनुष्यके कृत्य और उसकी नियति के जमाखर्चका हिसाब लगता रहता हो!

यह संवादिता यदि न हो तो विज्ञानके सिद्धान्त गढ़े नहीं जा सकते. जैसे 'लॉ ऑफ् ग्रेविटेशन्' हमें कैसे पता चला? क्योंकि संवादिता है. कैसी संवादिता? छोटे-बड़े कदकी कमोबेश वज़नवाली वस्तु, यदि हवाका प्रतिबंध न हो, तो एक उंचाईसे फेंकी जानेपर एक ही समयपर संवादिताके साथ जमीनपे गिरती हैं. अत: गिरनेका कारण न तो कद हो सकता है और न वज़न. यों भूमिपर गिरनेवाली वस्तुओंके गिरनेमें रही संवादिताके कारण गुरुत्वाकर्षण शक्तिका प्रमाण मिल पाता है और 'लॉ ऑफ् ग्रेविटेशन्' स्थापित होता है. आईन्स्टीनकी गॉड्के बारेमें ये धारणा स्पष्ट है कि जो लॉ ऑफ् हार्मोनिमें अपने आपको रिवील् (प्रकट) करता हो. वाल्लभ वेदान्तके दृष्टिकोणसे यहां कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है कि **Orderly harmony is not equal to God but God is equal to orderly harmony.**

Godhood is neither result of orderly harmony nor God can be confined to it. But *"in orderly harmony God reveals Himself"*. इस बातको आगे बढ़ानेको यह भी कहते हैं कि मनुष्यके कर्मोंमें रही क्षुद्र ऑर्डरलिनेस या डिज़ोर्डर् का लेखा-जोखा रखनेवाला परमेश्वर उन्हें विश्वसार्ह नहीं लगता. बर्ट्रेन्ड रसेल भी कहते हैं कि मुझे उस भगवान्में विश्वास नहीं है जो बाथरुमके की-होल्मेंसे पीपिंग टॉम्की तरह ताक-झांक करता हो कि आदमी कहीं विवसन तो स्नान नहीं कर रहा! (ईसाईओंमें तब बाथरूममें कपड़े उतार कर स्नान करना भी सर्वदर्शी भगवान्की अवहेलना मानी जाती थी!).

अर्थात् कोई चर्चमें गया कि नहीं, किसीने नमाज़ पढ़ी कि नहीं. अपने सम्प्रदायमें भी हम गुसांई लोग भगवानकी विविध झांकीकी घोषणा करके वैष्णवोंसे धनराशी ऐंठनेका दुराग्रह रखते हैं. वह भी इस हद तक कि धमकानेसे भी बाज नहीं आते "झांकीमें मनोरथी बन कर भेंट नहीं धरोगे तो सारी सम्पदा हॉस्पीटलमें इलाज करवानेमें नष्ट हो जायेगी". अब ऐसे भगवानमें तो महाप्रभु भी अपना अविश्वास ही प्रकट करना चाहेंगे. एक सामान्य म्युनिसिपल् कमिश्नर् भी उनके अधीन कार्यक्षेत्रके सभी नागरिकोंकी हर बातमें पीपिंग टॉम् नहीं बनता हो तो, जो ब्रह्माण्डका नियन्ता है वो एक-एक आदमी क्या-क्या करता है, उस बातकी चिन्ता करने लगे तो ऐसा भगवान् तो मुझे भी स्वीकार्य नहीं है. अतएव सूरदासजीके **"हों पतितनको टीको मौ सम कौन कुटिल खल कामी"** सुन कर उबताके महाप्रभुने कहा सूर् व्हैके काहे घिघियात हे? कछु भगवल्लीला गा! पूरी भागवत पढ़के देख लो. नन्द-यशोदाजीने कभी भी मठड़ी भोग नहीं धरी थी. उस ज़मानेमें मठड़ी थी ही नहीं. भगवान् हमारे जैसे मठड़ीके व्यसनी नहीं थे. तदर्थ यदि कोई चन्दा न देता हो तो भगवदपराध कैसे माना जा सकता? अतएव आईन्स्टीन भी कहते हैं :

1."I cannot imagine a God who rewards and

punishes objects of his creation, whose purpose are modeled after our own—a God, in short who is but a reflection of human frailty."

2."The further the spiritual evolution of mankind advances, the more certain it seems to me that the path to genuine religiosity does not lie through the fear of life, nor the fear of death and blind faith, but through striving after rational knowledge."

(Seldes George 'The Great Thoughts' New York:Ballantine Book p.134, 'To Believe Or Not To Believe' p.40).

आईन्स्टीन कहते हैं स्वयंसृष्ट जीवात्माके कर्मफलदाता परमेश्वरमें मेरी आस्था नहीं है. ऐसा भगवान तो मानवीय दुर्बलताका प्रतिबिम्ब है. आध्यात्मिक विकासके साथ लगता है कि सच्ची धार्मिकता जीवन-मृत्युकी भीतिमूलक या अन्धश्रद्धामूलक नहीं प्रत्युत विवेकमूलक हो जायेगी.

तैत्तिरीयोपनिषद्में आता है **"जब यह उस अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन में भयरहिततया प्रतिष्ठित हो पाता है तो वह सर्वत: अभयपद प्राप्त कर लेता है'** (तैत्ति.उप.२।७). भगवान कृष्ण भी गीतामें ऐसा ही कुछ कहते हैं **"न तो मैं (साक्षात्) किसीको कर्मकर्ता बनाता हूं और न लोकमें कर्म करवाता भी हूं. अच्छे-बुरे कर्मोंके फल भी मैं नही देता हूं. यह तो सब कुछ स्वभावके कारण चलता रहता है. न मैं किसीके पुण्य अथवा पाप को स्वीकारता हूं...", "मेरी अध्यक्षताके कारण प्रकृतिसे सारा चराचर जगत् प्रकट होता रहता है... किन्तु राक्षसी और आसुरी मोहक स्वभावके वश लोग व्यर्थके ज्ञान आशा और कर्मोंमें रचेपचे रहते हैं. दैवी स्वभावके महात्मा तो मुझे समग्र भूतसृष्टिका आदि मान कर अनन्यमनसे मेरा**

भजन ही करते हैं... वैसे तो मैं सभीके लिये समान हूं कोई मुझे न प्रिय लगता है न द्वेष्य ही, फिरभी जो मेरा भक्तिभावके साथ भजन करते हैं, वे तो मेरेमें ही उत्पन्न स्थित-बद्ध और मुक्त हो रहे हैं ऐसा उन्हें निश्चय हो जाता है और उनकी हर अवस्थामें मैं ही उनके भीतर सब कुछ हो रहा होता हूं'' (भग.गीता.५।१२-१३, ९।१०-२९).

वाल्लभ दृष्टिकोणके अनुसार यह सारा जगत् और इसमें प्रकट हुयी अहंकारोपेत जीवचेतना और सर्वतोदिक् विद्यमान अनुभूयमान सत्ता सभी कुछ इतरेतरतादात्म्यभावापन्न है. ब्राह्मिक चेतनामें यह स्फुट होनेपर भी परिच्छिन्न आहंकारिक चेतनामें प्रतिबिम्बित हो नहीं पाता. परिणामतया उसमें प्रकट होते मोघ ज्ञान आशा और कर्म भी क्षुद्रतासे ग्रस्त हो जाते हैं. यह मोघता तो केवल हमारी परिच्छिन्नताका ही परिप्रेक्ष्य है. नाट्यमंचपर किसी व्यक्तिके राम या रावण होनेके प्रभेदके जैसा. परदेके पीछे न तो राम नायक है और न रावण खलनायक ही.

आईन्स्टीनके दृष्टिकोण और वाल्लभ दृष्टिकोण में कुछ जो वैषम्य यहां प्रकट हो रहा है, वह पुरुषविध साकारब्रह्म और अपुरुषविध विभुब्रह्म रूपी द्विविध ब्रह्मके अनंगीकार या अंगीकार के कारण ही वह केवल है. महाप्रभु, अतएव, ब्रह्मावबोधके तीन-चार स्तरोंका प्रतिपादन करते हैं : १.उक्त आहंकारिक क्षुद्रमतिके प्राथमिक कक्षाका ब्रह्मबोध जो ब्रह्मतादात्म्यके अंगभूतभेदको प्रधान बना कर घटित होता है : ''इदं विश्वं भगवान् इतरः''. २.सच्चिदानन्द ब्रह्मके आनन्दांशके तिरोधानवश अवशिष्ट सत्ता और चेतना रूपी दो अंशोंको ले कर विश्व और ब्रह्म के बीच सादृश्यबोध होता है : ''इदं विश्वं भगवानिव.'' यह भी अन्तर्निहित तादात्म्यसे निर्वाह्य है. ३.ब्रह्मोपादानकतया विश्वकी ब्रह्मात्मकका बोध : ''ब्रह्म=विश्व'' अर्थात् ''इदं हि विश्वं भगवान्''.

ऐसे ज्ञानाकारके साथ होता सखण्डब्रह्माद्वैतका बोध है. यहां उद्देश्यतया विश्व भासित होता है और विधेयतया उसकी ब्रह्मात्मकता भी. यह लीलात्मक खण्डविशिष्ट ब्रह्मके स्वरूपका बोध है. उद्देश्यतया या विधेयतया ब्रह्मसे अतिरिक्त ब्रह्मके नामरूपकर्मोंकी लीलाका बोध भी न रहे ऐसे अखण्ड ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्पक बोध, ज्ञानसमाधि ध्यानसमाधि या भावसमाधि की अवस्थाओंमें होता, बोध है ''ब्रह्म=ब्रह्म'' यह चतुर्थ स्तर है(द्रष्ट.सुबो.१।५।२०).

प्रश्न उठ सकता है कि आईन्स्टीनको यह कितना मान्य होगा? एतदर्थ किसी विवेचनामें छलांग लगानेसे पहले विभूतिरूप क्रान्तिकारी वैज्ञानिक आईन्स्टीन वैज्ञानिक अहंकारसे कितने निर्लिप्त थे यह समझना हो तो अधोनिर्दिष्ट विधान पर्याप्त होगा :

> **"The more a man is imbued with the ordered regularity of all events the firmer becomes his conviction that that there is no room left by the side of the ordered regularity for causes of different nature. For him neither the rule of human nor the rule of divine will exists as an independent cause of natural events. To be sure, the doctrine of a personal God interfering with natural events could never be refuted, in real sense, by science, for this doctrine can always take refuge in those domains in which scientific knowledge has not yet been able to set foot. But I am persuaded that such behavior on the part of representatives of religion would not only be unworthy but also fatal. For a doctrine which is not able to maintain itself not in clear**

light but only in the dark, will of necessity lose it's effect on mankind, with incalculable harm to human progress. If it is one of goals of religion to liberate mankind as far as possible from the bondage of egocentric cravings, desires, and fears, scientific reasoning can aid religion in yet another sense''.

(Quoted from 'Science and Religion'by Hilair cuny in 'Albert Einstien:The man His Theory p.148).

अर्थात् प्रत्येक घटनाकी नियतक्रमिकताके रंगसे जैसे-जैसे हमारा बोध रंजित होता जायेगा, वैसे-वैसे हमारी आस्था परिपक्व होती चली जायेगी कि यहां नियतक्रमिकताके अलावा दूसरा कोई भी मानवीय या दैवी कारणकलाप जगत्में मान्य नहीं हो सकता है. पुरुषविध परमेश्वरके द्वारा प्रकृतिके नियमोंमें हस्तक्षेपका मत, फिरभी अभी तक जहां वैज्ञानिक ज्ञानकी पहोंच ही न हो, उसकी दुहाई तो दे ही सकता है. धर्मसम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंका, परन्तु, ऐसा व्यवहार न केवल अनुचित होगा परन्तु घातक भी हो सकता है (अब्रह्मवादी ईश्वरास्थाका इतिहास इस आशंकाकी गंभीरताकी गवाही देता ही है प्रस्तुत लेखक) क्योंकि जो सिद्धान्त स्वयंको सुस्पष्ट प्रकाशमें निभा न पाता हो और अन्धकारका लाभ लेना चाहता हो, वह मानवसमुदायपर कल्पनातीत दुष्प्रभाव छोड़ेगा ही. धर्मका प्रयोजन मानवसमुदायको यावत् शक्य अहंकेन्द्रित वासना अभिलाषा और भय के बन्धनसे से मुक्त करना हो तो वैज्ञानिक युक्ति धर्मको अपेक्षित सहयोग प्रदान कर पायेगी(यथापूर्वोक्त पृ.१४८).

एतावता पुरुषविध परमेश्वरके काल-कर्म-स्वभाव-द्रव्य और चेतनासे

परे होनेकी धारणाने अब्राह्मिक सामी परम्परामें ही नहीं परन्तु अपने पुष्टिमार्गमें भी क्षराक्षरातीत लोकवेदातीत कालकर्मातीत पुरुषोत्तमकी कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्यके बहानेसे अनेकविध छलनात्मक प्रपञ्चोंकी विकृतिओं, जिनका महाप्रभुको दु:स्वप्न भी न आया होगा, उनसे इस मार्गको ग्रस लिया है. इसे इन्कारा तो नहीं जा सकता. अतएव आईन्स्टीन धर्मकी आदिम मध्य और विकसित तीन अवस्थाका निरूपण करते हैं : प्रथम, अत्यन्त आदिम अवस्था जहां भगवानको मानवरूपेण ही केवल स्वीकारा गया हो. द्वितीय, सामाजिक जीवनमें जहां उच्चतर स्तरपर नैतिकताकी प्रमुखता हो. तृतीय, जहां धर्म ब्रह्माण्डानुरूप भावनाओंसे ओतप्रोत हो. (द्रष्ट.वर्जिल जी हिनशॉ जूनियरलिखित आलेख 'आईन्स्टीनका सामाजिक दर्शन पृ.६६१'अल्बर्ट आईन्स्टीन:दार्शनिक-वैज्ञानिक'में).

अन्तमें महाप्रभुके 'दर्शनके दर्शन'को व्याख्यायित करनेवाले विधान "**सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तद्**" (त.दी.नि.१।७०) के साथ सुसंवाद प्रकट करनेवाला आईन्स्टीनका भी एक विधान, जो उनके मतके बारेमें अनेक विद्वानोंने अभिप्राय प्रकट किये उसके स्पष्टीकरणके रूपमें दिया है, उसे उद्धृत कर साधनदृष्ट्या और फलदृष्ट्या विमर्शकी अग्रसर होना है. तथाहि :

"The scientist, however, can not afford to carry his striving for epistemological systematic that far. He accepts gratefully the epistemological conceptual analysis; but the external conditions, which are set for him by the facts of experience, do not permit him to let himself be too much restricted in the construction of his conceptual world by the adherence to an epistemological system. He therefore must appear to the

systematic epistemologist as a type of unscruplous opportunist; he appears as *realist* insofar as he seeks to describe a world independent of the acts of perception; as *idealist* insofar as he looks upon the concepts and theories as the free inventions of the human spirit (not logically derivable from what is empirically given); as *positivist* insofar as he considers his concepts and theories justified only to the extent to which they furnish a logical representation of relation among sensory experiences. He may even appear as *Platonist* or *Pythagorian* insofar as he considers the viewpoint of logical simplicity as an indespensable and effective tool of his research."

(ibd.Reply to Criticism p.685).

हम देख सकते हैं इस विधानमें आईन्स्टीन अपने वैज्ञानिक प्रमेयके स्वरूपनिर्धारणमें दार्शनिक ज्ञानमीमांसकीय किसी भी एक वादकी सीमामें बंध कर नहीं प्रत्युत प्रमेयके स्वरूपके अनुरोधवश कभी यथार्थवाद, तो कभी कल्पनावाद, तो कभी तार्किकभाववाद, तो कभी प्लेटोनिक, तो कभी पाइथगोरिअन यों अनेक वादोंका अनुरोध एक अविवेकी अवसरवादीकी तरह अंगीकार कर अपने प्रमेयको इन सारे वादोंसे अतीत भी मान कर चलनेकी प्रेरणा दे रहे हैं.

महाप्रभुके मतमें भी जहां अनुभूतिका बाह्यार्थसंवाद निर्धारित करना शक्य हो वहां प्रमाको **''जैसा बाह्यार्थ वैसा अनुभव होता हो तो निश्चयात्मक होता है''** (सुबो.३।२६।३०) परिभाषित कर परत:प्रामाण्यवाद अर्धजरतीयन्यायेन स्वीकारा गया है. जहां बाह्यार्थसंवाद

निर्धारित कर पाना शक्य न हो वहां **''केवल शब्द ही प्रमाण उसमें भी अलौकिक वस्तुके ज्ञापक. इनका प्रमाण होना स्वत:सिद्ध होता है''** (त.दी.नि.प्र.१।७)यह पुन: अर्धजरतीयन्यायेन स्वत:प्रामाण्यवाद स्वीकार लिया गया है. ब्रह्मतादात्म्यका भान भी पूर्ण और अपूर्ण बोधके प्रभेदवश द्विविध परोक्ष होता है. इसी तरह अक्षरब्रह्मज्ञान और परब्रह्मपुरुषोत्तमभक्ति के प्रभेदवश अपरोक्ष ब्रह्मतादात्म्यज्ञान भी द्विविध होता है. अत: शाब्दिक अपूर्ण परोक्ष भानकी अवस्थामें महाप्रभु कहते हैं **''कहीं संवाद और कहीं विरोध दोनों प्रतीत होते हों तो अप्रमाण ही मान कर चलना चाहिये यह 'इससे विरुद्ध जो भी हो उसे कथमपि प्रमाण नहीं मानना चाहिये''** (त.दी.नि.प्र.१।८) पूर्ण परोक्ष शाब्दिक ज्ञान सिद्ध होनेपर महाप्रभु कहते हैं **''वाणीमात्र प्रमारूप बोधकी जनक होती है क्योंकि बाह्यार्थ सारा भगवद्रूप होता है. रूपलीलाकी तरह नामलीलाके विभेदोंका प्रतिपादन तो करना ही है''** (त.दी.नि.प.१।९) ब्रह्मतादात्म्यकी साक्षाद् अनुभूति होनेपर कोई भी अनुभूति या उसे शब्दायित करनेवाली पदराशी अप्रमा नहीं रह जाती है क्योंकि **''बाह्यार्थोंके निमित्तवशात् पदोंमें प्रतीत होते प्रामाण्याधायक गुणधर्म आकांक्षा योग्यता और संनिधि तो लोकदृष्टिसे कल्पित हैं अत: सारे सर्वब्रह्मतादात्म्य जहां अनुभूत होने लगा वहां सारे उद्देश्यविधेयभावात्मक वाक्य प्रमाण ही बन जाते हैं. ब्रह्मकी तरह बृहती=वाणी भी विश्वतोमुखी होती है''** (त.दी.नि.प्र.२।१७३). दूसरे शब्दोंमें कहें तो ज्ञानप्रामाण्यवादमें जैसे आईन्स्टीन किसी एक आधारके साथ प्रतिबद्ध नहीं होते सो महाप्रभु भी ऐसी अपनी अप्रतिबद्धता कहो या सापेक्षवादानुरोधी प्रामाण्यवाद स्वीकारे हुवे हैं.

ब्रह्माण्डके रहस्योंको उद्घाटित करना हो तो कोई भी एक वाद पर्याप्त नहीं हो पाता, यही तो है : अनुभवगम्य पदार्थकी अनुभवातीतता. यह वैज्ञानिकोंको ब्रह्माण्डके चिन्तनमें विनीत मनोभावसे अपने प्रमेयके निरीक्षण-परीक्षणका पाठ पढ़ाती है. जैसे ब्रह्मके चिन्तनमें निरत ब्रह्मवादियोंको

''कृष्णे सर्वात्मके नित्यं सर्वथा दीनभावना अहंकारं न कुर्वीत'' (त.दी.नि,२।२४१) महाप्रभु भी कहते हैं. एक-एक वाद ब्रह्मके एक-एक धर्मका प्रतिपादन करते होनेके कारण परस्पर अंगांगिभावसे समन्वित हो जाते हैं और ब्रह्म उन सारे वादोका अनुसरण करता है(द्रष्ट.त.दी.नि.१।७०). न केवल इतना प्रत्युत महाप्रभुने यह भी सुस्पष्ट शब्दोंमें अंगीकार किया है कि तत्तद् इन्द्रियोंके द्वारोके प्रभेदवश अर्थ बहुत सारे परस्पर विरोधी गुणोंका एक अविरोधी आश्रय होनेपर भी नानाभावेन अवगत होता है ऐसे ही भगवान् भी अनेक शास्त्रीय वादोंसे अनुरंजित मतिसे निहारनेपर अनेकविध प्रतीत इनमें गुणोंका परस्पर विरोधी होनेके कारण विभिन्न इन्द्रियों ग्राह्य होनेपर भी एक अविरुद्ध आश्रय होनेसे परस्पर विरुद्ध प्रतिपादन और अविरुद्धतया प्रतिपादन दोनों ही सत्य हो सकते हैं.

(साधनत: स्वरूपनिर्धारण)

आईन्स्टीनने धर्मकी जो तीन अवस्था आदिम मध्य और विकसित दिखलायी उनमें एन्थ्रोपोमॉर्फिक अर्थात् नराकार परमेश्वरकी धारणावाली आस्थाको आदिम अवस्था माना. इस बारेमें एक स्पष्टीकरण जान लेना आवश्यक है.

भारतीय विद्या पश्चिमी आलोचकोंके हत्थे चढ़ी तबसे हमारे आर्ष ग्रन्थोंमें वेदोंके संहिताभागको प्रकृतिपूजक बहुदेववादी, ब्राह्मणभागको कर्मकाण्डीय पौरोहित्यवादी, उपनिषदोंको ब्राह्मणोंके विरोधमें क्षत्रियोंके ब्रह्मज्ञानपरक जगत्की वास्तविकतासे विमुख करनेवाला पलायनवादी, रामायण इतिहास पुराणोंको एन्थ्रोपोमोर्फिक देववादी आदि अनेक प्रकारके निन्दार्थक विशेषणोंसे नीचे गिराया गया. जबकि एन्थ्रोपोमोर्फिक मोनोथीज़मको आईन्स्टीन धर्मकी आदिम अवस्था मान रहे हैं, हमारी मानवीय दुर्बलताओका प्रतिबिंब! यहां प्रश्न केवल नराकृति होनेमात्रमें सीमित नहीं मान लेना चाहिये अपितु मानवीय स्वभावकी दुर्बलता रागद्वेष प्रतिशोध अपराधक्षमा

आदिका भी उतना ही प्रसक्त है. अनीश्वरवादी उच्चस्तरीय नैतिक बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जैसे मूल्योंकी प्राथमिकतावाले यहुदी आदि धर्मोंको मध्यम कक्षका मान रहे हैं. अपने यहांके धर्मोंमें जगत्को बंधनरूप मान कर मुक्त होनेवाले महापुरुषोंको भगवान माना गया है. उत्तम कक्षाके धर्मतया, आईन्स्टीन, जगद्व्यापिनी संवादितामें भगवदभिव्यक्तिको मान्य करनेवाले धर्मको प्रतिष्ठापित करना चाहते हैं.

प्राचीन यूनानी दार्शनिक ज़ेनोफनके विधान कि घोड़ा यदि परमेश्वरकी मूर्ति गढ़ पाता तो वह मूर्ति अश्वाकारक होती. मनुष्य मूर्तिकारोंने परमेश्वरको नराकार अतएव गढ़ा. यह विधान जिन पर लागू होता हो हो जाये, हमारी श्रुति स्मृति पुराण की ईश्वरसम्बन्धी अवधारणाका इससे कुछ भी लेना-देना नहीं मानना चाहिये था. क्योंकि यदि हमारी श्रौतदृष्टि **''तुम ब्रह्मा तुम ही विष्णु तुम रुद्र तुम प्रजापति तुम अग्नि वरुण वायु हो तुम इन्द्र तुम चन्द्र हो तुम अन्न हो तुम यम पृथिवी तुम विश्व और आकाश भी हो...''** (मैत्रा.उप.५।१), **''आकाशमें प्रकाशमान ज्योतिष्पिण्ड विष्णु है, सारे भुवन विष्णु हैं, सारे वन विष्णु है, पर्वतें और दिशायें भी, नदियां और समुद्र भी वही विष्णु हैं, जो कुछ है या जो कुछ नहीं सभी कुछ ये ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की ही अशेष मूर्तियां हैं. अत: कोई भी पर्वत समुद्र या पृथिवी के प्रभेद स्वयं वस्तुभूत न हो कर भगवज्ज्ञानकी विविधता हैं (**न कि अनादि अज्ञान या जीवके अज्ञान से प्रतिभास्य'' (विष्णुपु.१२।३७-३८) **''मत्स्य अश्व कच्छप नृसिंह वराह हंस राजन्य विप्र विबुध आदि अनेक रूपोंमें भगवान् अवतीर्ण होते हैं''** (भाग.पुरा.१०।२।४०).

इस तरहकी हमारी श्रौत पौराणिक आर्ष धारणाको शब्दायित कर पानेमें पाश्चात्य 'मोनोथीज़म' 'पोलीथीज़म' 'पॅन्थीज़म' 'एन्थ्रोपोमोर्फीज़म' 'पॅगानीज़म' आदि विविध पदावली केवल वाग्विलास मात्र लगती हैं! क्योंकि वैश्विक अनेकताकी जटिलतामें विवक्षित एक ब्राह्मिक

सुसंवादिता इनमें प्रकट नहीं हो पाती है.

सो ब्रह्मके इतने वैविध्यपूर्ण स्वरूपके अनुसंधानमें प्रकट हुयी धर्मसाधनाके बारेमें यह उल्लेखनीय हो जाता है कि यज्ञकुण्डमें आहित अग्निके माध्यमसे धर्माराधना करते समय अग्निको हम केवल 'फायरगॉड' नहीं मानते प्रत्युत **''अग्नि जो पुरोहित भी है और यज्ञका देवता भी ऋत्विक् भी है और होता भी'',''तुम अग्नि! द्युलोकमें प्रज्वलित होते हो तुम जलमेंसे तुम पाषाणमेंसे तुम वनोमेंसे ओषधियोंमेंसे भी''** (ऋक्संहि.१।१।१, २।५।१७) यज्ञवेदीमें आहित अग्निकी ऐसी सर्वसंवादिता ही देखी गयी है. पाषाण या धातु की मूर्तियोंमें भी प्राणप्रतिष्ठाके अनुष्ठानमें पुरुषसूक्तोक्त ब्रह्माण्डमूर्तिताका आह्वान किया जाता है. वह तो सेनेगॉग या चर्च या मस्जिद के भीतर भी की जाती भगवान् की प्रार्थनासे किस अर्थमें भिन्न हो सकता है? यही कथा पर्वत नदी वृक्ष पशु पक्षी के पूजाविधानमें भी देखी जा सकती है. योगध्यानकी आत्मकेन्द्रित साधनामें भी आत्माको भी **''जो इस तरह जान पाता है कि मैं ब्रह्म हूं वह सब कुछ बन जाता है''** (बृह.उप.१।४।१०) गुरुपूजनमें भी ''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुदेवो महेश्वरः गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म'' कौन नहीं जानता.

अतः आईन्स्टीनके द्वारा निर्धारित आदिम कोटिके धर्मके रूपमें अपनी आत्मजुगुप्साका कोई कारण हमारेलिये नहीं होना चाहिये. जब अनेक देवोंकी आराधना और सम्प्रदायकी बात करते हैं तब भी हम इस वेदके विधानकी अवहेलना या उल्लंघन करके नहीं कि **''जहां सारे लोक सारे कोश सारी जलराशी ब्रह्मजनोंको जान पड़ती है जहां असत् और सत्... ऋत और श्रद्धा ... जहां अमृत और मृत्यु समाहित हैं... जहां तैंतीस देवगण अंगोंमें विभक्त हैं उन तैंतीस देवोंके ब्रह्मविद तो एक ब्रह्म ही मानते हैं''** (अथर्वसहहि.१०।७।१०-२७). अतः इन ब्रह्मात्मक देवताओंकी आराधनाके हेतु कर्म ज्ञान भक्ति

तप योग ध्यान अर्चन नामसंकीर्तन तीर्थयात्रा त्याग-संन्यास रूपी अनेकविध धर्मसाधनाकी बात तो जाने दो भगवान् श्रीकृष्ण तो **''प्राणियोंकी प्रवृत्ति जहांसे आरब्ध होती है जहां यह सब कुछ वितत है उसकी अपने कर्मोंके निर्वाहसे अर्चना करो सिद्धि मिलती है''** (भग.गीता.१८।४६) करते हैं. वैसे तो धार्मिक अनुष्ठान भी ब्राह्मिक आस्थासे रहित हो धर्मरूप नहीं रह जाते और ब्राह्मिक आस्थासे स्वस्थ होनेपर तो भगवान् कहते हैं अपने सामाजिक उत्तरदायित्वोंका निर्वाह भी भगवत्पूजनके भावसे अनुष्ठित होनेपर सिद्धिप्रद होता है. अतः आईन्स्टीन अपने-आपको **"I am deeply religious nonbeliver... This is somewhat new kind of religion" (In letter to Hans Muchsam March 30 1954 on page 218 of Expanded Quotables Einstien).** कहते हों तो किन्ही और धर्मसम्प्रदायोंको आघातजनक धर्मविरुद्ध विधान लगता होगा पर भगवान श्रीकृष्णको तो कदापि नहीं लगेगा.

अविश्वासके भी तो अनेक प्रकार हो सकते हैं : अज्ञानमूलक स्नेहमूलक ईर्ष्यामूलक विस्मयमूलक श्रद्धामूलक अश्रद्धामूलक इत्यादि. सभी अविश्वास अधर्मरूप नहीं होते. अविश्वास तो स्वयं वेद-उपनिषद् भी प्रकट करते हैं **''कौन जानता है और कौन समझा सकता है कि यह विसृष्टि कहांसे आती है और कहां जाती है जो देवगण इसके प्रकट होनेके बाद प्रकटे वे भी कैसे जान पायेंगे कि कैसे प्रकट हुयी. यह विसृष्टि जहांसे आती है कोई इसे धारण कर लाता है या नहीं जो इसका परम व्योममें अध्यक्ष अरे उसे भी पता चलता है कि नहीं''** (ऋक्संहि.१०।१२९।६-७). **''तुम स्त्री हो या पुरुष हो तुम कुमार हो या वा कुमारी. तुम बुढ़े बन कर दंडा ले कर चलते दीखते वंचना तो नहीं कर रहे हो न क्योंकि तुम्ही तो सब कुछ हो''** (श्वेता.उप.४।३)

समग्र ब्रह्माण्ड, वाल्लभ वेदान्तके अनुसार, कृष्णका श्रीविग्रह

है. भगवान्‌ने ऐसा अपना विराट् स्वरूप अर्जुन और यशोदा दोनोंको दिखाया है. कृष्णात्मक ब्रह्माण्डको समझनेके लिये कृष्णका ब्राह्मिक माहात्म्य समझना जरूरी है. माहात्म्य समझके कृष्णके शरणागत होना है. यह शरणागति पराजित पुरुषकी विवशताकी जैसी नहीं और न किसी लालचीकी लालसाभरी शरणागति है. किसी भीति या निराश के कारण भीतिसे त्राण या आशापूर्ति के हेतु यह शरणागति नहीं है. गृहवाचक जो 'शरण'पद है उसके अर्थानुरोधवश खुदके घरमें निरूढ़ स्नेहभावसे या ममताके भावसे लौटनेकी यह प्रक्रिया है. शरण+आगति है. शरणागत होकर जो अपना प्रिय है उसके साथ प्रेमभाव निभानेकी शरणागति है.

स्नेह क्यों करना है? स्नेह ही एक ऐसा फिनोमिना है जो सब भयसे मुक्त कर देता है. समझ कितनी भी हो पर उससे भयमुक्त नहीं हो सकतें. मैं घरमें सबसे तुफानी था. उसके कारण मेरी मां मुझे अन्धेरी कोठडीमें पूर देती थी. आज मैं ७५ सालका हो गया तब भी मुझे अन्धेरेसे डर लगता है. समझसे भय जाता नहीं है. पर यदि मैं अन्धेरेके साथ स्नेह करने लग जाउं तो डर टिक भी नहीं पायेगा. पानीमें जानेवालेके लिये शार्क व्हेल जैसे जलचरका भय सहज होता है. फिरभी वे लोग वहां जाते हैं वो प्रेम/स्नेहके कारण जाते हैं.

मैं अभी एक पुस्तक पढ़ रहा हूं 'Does octopus has soul or not' ऑक्टोपस्‌का अभ्यास करनेके लिये लेखिका जहां ऑक्टोपस् रहते थे वहां गयी. पहले तो वो वहां खड़ी हो कर ऑक्टोपस्‌को स्नेहसे देखने लगी, जिससे ऑक्टोपस् मुझसे डरे नहीं और मेरा डर भी दूर भी हो जाय. ऑक्टोपस् भी उसको देखता रहा कई दिनों तक. बादमें लेखिकाने धीरेसे पानीमें अपना हाथ ऑक्टोपस्‌को दिया. हाथ देते ही उसने हाथ खींचना शुरु किया. सामान्य रीतसे

ऑक्टोपस्‌के दंशसे इन्सान पांच मिनिट्में मर जाता है. वो डर गई पर बादमें उसको समझमें आ गया कि ऑक्टोपस् उसको मारना नहीं चाह रहा है किन्तु वो ये देखना चाहता था कि इतने समयसे मैं उसको क्यों देख रही हूं? मैं ऑक्टोपस्‌को क्यों चाह रही हूं? लेखिकाके जब हाथ खींचनेका शुरु किया तो हाथ खींचने पर भी ऑक्टोपस्‌ने कोई रिएक्शन् दिखाया नहीं. ऑक्टोपस् जिनको स्नेह करने लगता है उनको दंश नहीं देता है. वो अपने शरीरसे ही हमारे भावोंको जान लेता है. उसके अलगावसे वो रोने लगी. क्या हम ऐसे सोच सकते है?

इसलिये ज्ञानसे हम निर्भय नहीं हो सकते किन्तु प्रेमसे हम निर्भय हो सकते है. यदि ऑक्टोपस्‌की शरीररचनाको देखें तो हमें उनके पास जानेमें घिन आती है. फिर भी स्नेह ऐसा पदार्थ है कि अरुचिकर ऐसे ऑक्टोपस्‌को उसने प्रेम करना शुरु किया. ऐसा कैसे सम्भव हुआ? क्योंकि दोनोंने एक-दूसरेके प्रति शरणागतिकी भावना व्यक्त की. **''सारे धर्मोंका त्याग कर एक मात्र मेरे शरण ग्रहण करो मैं तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त करूंगा शोक मत करो''** (भग.गीता.१८।६६) भगवद्गीताकी इस बातसे हम समझ सकतें हैं कि कितने भी हिंसक प्राणीके साथ स्नेहसे कितना मैत्रीपूर्ण व्यवहार हो सकता है. मैंने ये पुस्तक पढ़ी और बात समझमें भी आयी किन्तु ऑक्टोपस्‌के बारेमें मेरे मनमेंसे भयकी निवृत्ति नहीं हुई है. इसलिये ब्रह्माण्डके समक्ष हमें शरणागत ही केवल नही होना है, उसे चाहना भी है. जिस दिन हम ब्रह्माण्डको चाहने लगेंगे उस दिनसे ब्रह्माण्ड हमको चाहने लगेगा. ये साधनाके बारेमें मूलभूत सिद्धान्त है, श्रीवल्लभाचार्यके. आईन्स्टीन भी इसे कैसे इन्कारेंगे !

(फलत: स्वरूपनिर्धारण)

महाप्रभुकी फलसम्बन्धी अवधारणाका प्रमुख बिन्दु यों है :

"साधारण लोकमें भगवान्की इच्छासे फल नियत होते हैं, वैदिक कर्मोंके फल वेदोंमें निरूपित हैं. भगवान्के अपने स्वरूपसे पुष्टिजीवोके फल नियत होते हैं. सृष्टिगत भिन्नताके अनुरूप फलोंकी नियतिमें भी भगवदिच्छा ही नियामक होती है... वैसे फल तो भगवान् जैसे भी स्वयं प्रकट हो कर या अपने गुणोंको भूतलपर पर प्रकट करना चाहें भगवान् ही ही होते हैं. पुष्टिजीवोंके लिये तो वही फलरूप होता है." "फल स्वयं जहां साधन बन जाता हो उसे 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं".

(पु.प्र.म.१०-१६, पुष्टिमार्गलक्ष.१)

अर्थात् समग्र सृष्टि ब्रह्मात्मिका लीला होनेके कारण प्रमाण प्रमेय साधन और फल के विविध रूपोंमें एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही लीलार्थ विविध रूप धारण करता है. ब्रह्मके अन्यतम प्राकृत अचेतन रूप अहंकारके साथ ब्रह्मांशभूत जीवचेतनाको योजित किया गया होनेके कारण, उसमें स्वतन्त्र प्रमाता और स्वतन्त्र साधक होनेका भाव इतना प्रबल हो जाता है कि ब्रह्मतादात्म्य सहसा लक्ष्यमें नहीं आ पाता. इस अहंकाररूप आन्तरिक करणके आधीन उत्पन्न होते भान या प्रत्यय के भास्य या प्रत्याय्य-अर्थ स्थूलविषय ही बन पाते हैं. अहंकारास्पद देह इन्द्रिय प्राण या अन्त:करण के भी घटक सूक्ष्मतर तत्त्व भी नहीं. अत: सूक्ष्मतम ब्रह्मतादात्म्यका बोध अप्रासंगिक हो जाता है.

अत: प्रमाण-प्रमेयके तथा साधन-फल की व्यवस्थाके भीतर काम करती ब्राह्मिक नियति भी सहसा अनुभवगोचर नहीं हो पाती. औपाधिक ज्ञातृभाव तथा कर्तृभाव के व्यामोहवश भासित होता स्वातन्त्र्य और ममतामूलक भोक्तृभावजन्य व्यामोह परस्पर द्विगुणित हो जाते हैं. तब प्रमाणव्यापार और साधनव्यापार के अनियत होनेकी भ्रमणाके वश उसे स्वेच्छया नियत कर पानेके आत्मविश्वास तथा महत्त्वाकांक्षा भी उभरने

लगते हैं. यह स्वातन्त्र्य परन्तु भगवद्गीताके अनुसार केवल बीस प्रतिशत ही होता है :

"अधिष्ठानरूप देह, अहंकारोपहित चेतनरूप कर्ता, दस कर्मज्ञानेन्द्रियरूप पृथक्विध करण, बाह्य परिवेशमें निरन्तर चलती विविध पृथक्चेष्टा और दैव पांचमा. शरीर वाणी और मन से जो कर्म प्रारम्भ होते हैं न्याय्य हों या अन्याय्य हों ये पांच तत्त्व हेतु बनते हैं. इन पांच तत्त्वोंके रहते जो केवल अकेले अपनेको कर्ता मान कर चलता वह दुर्मति बुद्धिका प्रयोग न कर पानेसे कुछ भी देख नहीं पाता."

(भग.गीता.१८।१४-१६),

अस्सी प्रतिशत नियतिमें एक पञ्चमांश बीस प्रतिशत अनियति भी नियत की गयी है!

यह तथ्य महाप्रभुद्वारा प्रतिपादित सृष्टिकी चतुर्विधा नियति प्रवाह मर्यादा पुष्टि और चर्षिणी जीवात्माओंके पृथक्पृथक् सर्ग मार्ग साधन और फल की अस्सी प्रतिशत नियतिमें भी बीस प्रतिशत अनियतिकी नियति भी मान्य रख कर वाल्लभ वेदान्त चलता है. इसकी तुलना आईन्स्टीनके नियतिवादके साथ करनेपर ही फलके दृष्टिकोणसे विमर्श यथोचित हो पायेगा.

इस सन्दर्भमें आइन्स्टीन समझाते हैं **"Human being in their thinking, feeling and acting are not free agents but are as causally bound as the star in their motion"** (स्पिनोज़ा सोसायटी ऑफ अमरीकामें सितम्बर २२, १९३२ दिया गया वक्तव्य). अर्थात् हमारे क्रिया भाव और विचार में हमको अहंकार हो गया

है कि हम स्वतन्त्र है, वस्तुत: ऐसी बात नहीं है. जैसे चन्द्र और सूर्य लॉ ऑफ् ग्रेविटेशन्के आधारपे चल रहे हैं. ऐसे हमारे भीतर भी कोई लॉ ऑफ् एक्शन् काम कर रहा है. वह फिज़ीकल् (भौतिक) हों, सायकॉलॉजिकल् (मानसिक) हों, बायोलॉजिकल् (जैविक) हों. बायोलॉजिकल् भी न होके वो सोशियल् भी हो सकता है. पर ये निश्चित है कि हमारे व्यवहारमें तथाकथित इच्छास्वातन्त्र्य और कर्मस्वातन्त्र्य निरपवादतया अपराधीन नहीं. विशेषत: अधुनातन मायक्रोबायोलोजी जेनेटिक्स और ब्रैनमेपिंग में हुवे अनुसंधानोंने तो बहोत सारे चेतनाके गुणधर्म माने जाते राग द्वेष भय श्रद्धा आदिके कॅमिकल कम्पोनेन्टस् खोज लिये हैं. इन्हें घटा या बढ़ा कर कॅमिकली कन्ट्रोल भी किया जा सकता है. उपनिषदोंने तो यह तथ्य **''कामना संकल्प संशय श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य लज्जा बुद्धि भीति ये सभी कुछ हमारा मन ही तो बनता है''** (बृह.उप.१।५।३) कह कर बहोत पहले ही यह रहस्य उद्घाटित कर रखा था. ये सारे मानसिक क्रियाकलाप अयोगोलकन्यायेन चेतनावेशके वशात् मनके ही हैं स्वयं चेतनाके नहीं. ऐसी स्थितिमें इन मानसिक क्रियाकलापोंकी अचेतनके प्रकृतिके नियमोंके अनुसार काम करनेकी नियतिकी अवधारणा वेदान्तमें तो प्रश्नार्ह नहीं मानी ही नहीं जा सकती. दैनन्दिन अनुष्ठेय सन्ध्यानुष्ठानके मन्त्रमें अतएव **''कामने किया मैं कर्ता नहीं हूं काम करता है मैं कुछ भी करता नहीं हूं, इस कामकी आहुति मैं कामके लिये प्रदान करता हुं, क्रोधने किया मैनें नहीं किया न करता हूं क्रोध ही कर्ता है मैं कहां कर्ता हूं. इस क्रोधकी आहुति मैं क्रोधको प्रदान करता हूं''** (महाना.१८।२-३) ऐसी विलक्षण भावनाका उपदेश दिया है. अचेतन मनमें प्रकट होनेवाली क्रियाओंको अपना स्वभाव माननेके बजाय पुन: इन मनोजात क्रियाकलापोंको मनको ही सोंप देनेकी प्रेरणा उपनिषद् प्रदान करते हैं. स्पिनोज़ाका, अतएव, एक महत्त्वपूर्ण विधान इस सन्दर्भ यों मिलता है कि पहाड़परसे लुढ़कते पत्थरमें यदि चेतना होती तो वह गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तको स्वीकारनेके बजाय स्वयंकी नीचे लुढ़कनेकी इच्छाके कारण लुढ़क

रहा है, ऐसा इच्छास्वातन्त्र्य घोषित करता!

यही बात महाप्रभु कहतें हैं कि भक्ति भी हम कर रहें हैं ऐसा हम जो सोचते हैं पर वस्तुत: हम नहीं कर रहें हैं. वह भगवान्की पुष्टि है जो हमारी चेतनामें हमें भक्तिके रूपमें भासित होती है. भगवान्की पुष्टि न हो तो हम भक्ति कर नहीं पायेंगे. इसे भक्तिका 'बीजभाव' कहा जाता है (द्रष्ट.भक्तिवर्धिनी १) जो हमारे भीतर भगवान्के प्रति रुचिके रूपमें अन्तर्भासित होता है. अन्यथा भगवान्में रुचि हो नहीं सकती.

हमने देखा कि वैसे तो अहंकार भी बहोत सुंदर भगवत्प्रदत्त वरदान है. इस अहंकारका सदुपयोग दुरुपयोग और अनुपयोग तीनों हम अपनी बीस प्रतिशत स्वातन्त्र्यसे कर सकतें हैं. पर मनुष्यके साथ ये करुणाजनक है कि तथ्य है कि अहंकारके सदुपयोगके बजाय उसका दुरुपयोग ज्यादा हो जाता है. वर्षाकी बूंद जितनी हमारी सेल्फ-अवेयर्नेस्के आधारपर पूरे ब्रह्माण्डकी अवेयर्नेस् भी हम हमारे भीतर जगा सकते हैं. अपने अहंकारका सदुपयोग भी तो यही है. ऐसे अहंकारका यदि दुरुपयोग करते हैं तो भगवान् भी यही कहेगें **''जिस अहंकारका सहारा लेकर युद्ध नहीं करूंगा मान बैठे हो वह निश्चय सच्चा नहीं है क्योंकि तुम्हारी प्रकृति वह तुमसे हठात् करवा लेगी''** (भग.गीता.१८।५९), तुम्हारी समझसे ''युद्ध नहीं करुंगा'' ऐसी निरर्थक बात करना योग्य नहीं है. यदि कोई आके विपरीत वर्तन/व्यवहार करता है तो युद्ध करनेके लिये तत्पर होना ही पड़ेगा. तुम्हारे सामने विपरीत स्थिति आयी नहीं है इसलिये तुम ज्ञान और वैराग्य की बात कर रहे हो.

ये अहंकार बहोत ही डॅलिकेट् और डायनॅमिक् होते हुए भी थोड़ा भी स्वरूपेण विकृत होनेपर ज्ञानी और वैरागी को भी अपने

दुरुपयोग करनेपर आमादा कर सकता है. इतने कीमती अहंकारका अनुपयोग तो होना नहीं चाहिये.

अहंकारका सदुपयोग भगवान्के प्रति शरणागतिसे हो सकता है. यदि भगवान्में न मानते हो तो ब्रह्माण्डके प्रति शरणागतिका भाव रखना भी अहंकारका सदुपयोग है. आईन्स्टीन भी अपने प्रमेयके अनुसारिणी दृष्टिसे समझा रहे हैं : **"I know that philosophically murderer is not responsible for his crime, but i prefer not to take tea with him."** (वाल्तेअर ईसाक्सन द्वारा उद्धृत : 'आईन्स्टीनकी जीवनी और युनिवर्स' में).

अर्थात् मैं इस बातको अच्छी तरहसे जानता हूं कि दार्शनिक दृष्टिसे खूनीको अपराधका उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, फिरभी यदि कोई मुझे उसके साथ बैठकर चाय पीनेकी कहे तो मैं पीना नहीं चाहूंगा. यह सम्भवत: हमारे गीतोक्त बीस प्रतिशत स्वातन्त्र्यका ही शब्दान्तरमें अंगीकार है ऐसे मानना चाहिये.

यह सिद्धान्त महाप्रभु जीवात्माके बारेमें पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा वर्ग भगवान्के बनाया हुवा कह जताते हैं. उसका मतलब ये नहीं होता कि हम प्रवाहमार्गी व्यवहार करके उसे अपने बारेमें भगवदिच्छा कह कर बिरदायें. भगवान्ने अपनी वाणीसे मर्यादामार्ग, मनसे प्रवाहमार्ग और स्वरूपसे पुष्टिमार्ग प्रकट किया है. उस बातको ले कर हम यह नहीं कह सकते कि हमारे अच्छे कर्म या बुरे कर्म के लिये हम विश्वके मंचपर हमारा बीस प्रतिशत भी स्वातन्त्र्य नहीं है. अपनी अहन्ता-ममताके आवेशवश जब हम अपने इर्दगिर्द अनुभूत होती त्वन्ता और इदन्ता के प्रति उत्तरदायित्वको न निभाते हों तो ऐसे अनुत्तरदायित्वसे पहले अपनी अहन्ता-ममतासे मुक्त हो कर दिखाना पड़ेगा. जब हम पहले स्वयं अपनी अहन्ता-ममतासे मुक्त हो पायें चाहे तो ब्रह्मज्ञान,

या भगवद्भक्ति, या विषयवैराग्य; अथवा, यौगिक साधनासे लभ्य आत्मस्वरूपमें संस्थिति के द्वारा तब हमें त्वन्ता या तत्ता से पृथक् अपनी पहचान ही न रह जायेगी और न किसीके प्रति उत्तरदायित्व ही. यह बात महाप्रभुके शब्दोंमें समझनी हो तो **"यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा स्याद् इदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वर:"** (त.दी.नि.१।६९) अर्थ : जहां, जो, जिसके द्वारा, जिस लिये, जिस प्रकारसे हो रहा है वह सब ब्रह्म ही है. ब्रह्म ही प्रधान (मॅटर्) पुरुष (माइन्ड्) और ईश्वर (गॉड्) बनता है. इसलिये वही सब कुछ बना है. यदि तुम साधु या असाधु कर्म कर रहे हो तो वही तुमसे करवा रहा है अस्सी प्रतिशत यह लीलाभाव भी होना चाहिये और बीस प्रतिशत भगवत्प्रदत्त अहंकारके सदुपयोगकी निष्ठासे मुझे असाधु कर्मोंके प्रवाहमें बह जानेसे अपने-आपको बचानेका भी सदाशय होना चाहिये.

एक बात समझ लो, यदि दिल्ही जाना है तो तुम जैन मुनि तो नहीं हो कि पैदल चलके पहोंच पाओगे. तुम्हें रेल्वे हवाईजहाज या बस में ही सवार होना पड़ेगा. यदि तुम सवार नहीं होते हो तो ट्रैन हवाईजहाज या बस तुम्हारा अपहरण तो करनेके लिये नहीं आयेंगे. यातायातकी व्यवस्था ही तुम्हें दिल्ही पहोंचायेगी, यदि तुम सवार हुए तो! दिल्ही पहोंचनेपर "मैं पहोंच गया" ये अपना अहंकार बोल रहा है. वस्तुत: तो यातायातकी व्यवस्थाके कारण पहोंचाया गया है, इस बातको भूल नहीं जाना चाहिये.

हमारी बुद्धिमें प्रकट होते ब्लॉक्के कारण हमको विज्ञान और धर्म एक बिन्दुपर जुड़ते नहीं दीखते है. दोनोंके प्रमेयके विमर्शसे, किन्तु, यह समझा सकता है कितनी बार विज्ञान और धर्म किसी एक बिन्दुपर जुड़ भी जातें हैं. इसी आधारपर महाप्रभु और आइन्स्टीन् के दर्शनमें कैसी समानता है ये हम समझनेका प्रयास किया.

एक बन्दरपनेके कारण हमने धर्मका स्वरूप भी यही समझ रखा है कि कि यदि मैं खिड़कीसे अन्दर घुसूंगा तो पकड़ा जाऊंगा. यदि नहीं घुसा तो वहांकी वस्तु उठा कैसे पाऊंगा? अब बन्दर क्या करता है कि खिड़कीमेंसे हाथ पहोंचे उतनी वस्तुओंको ले कर बाकी वस्तुओंको छोड़ देता है!

धर्ममें भी हमारे बन्दरपनेका व्यवहार हम निभाते हैं, न धर्मका अच्छी तरहसे अनुसरण करतें है और न अधर्मका. यदि धर्म या अधर्म तक हाथ पहोंचता है तो उन्हें छोड़ना नहीं है और यदि नहीं हाथ पहोंचता तो त्याग तो करना ही है. भगवान् अपने इस बन्दरपना रॅलिश् नहीं करते है. भागवतमें आता है **''मर्त्य मनुष्य मृत्युके नागसे डर कर दौड़ता हुवा सारे लोकोंके चक्कर मारता रहता है पर निर्भय हो नहीं पाता कभी भगवच्चरण अर्थात् ब्रह्मभावात्मक अक्षरब्रह्मके रूपमें अपने मूल स्वरूपको पहचान पाये तो उसे मृत्यु नहीं अपनी चेतनामें जब-तब स्वस्थ निद्राकी तरह आती मृत्यु लगेगी''** (भाग.पुरा.१०।३।२७). जिन्होंने अच्छे काम किये हो उनके लिये मृत्यु धर्मराजका बुलावा है. हमें इस बातसे आश्वस्त रहना है कि धर्मराज स्वयंके धर्मका निर्वाह आज नहीं तो कल करेगा सो हमें हमारे धर्मका निर्वाह करना चाहिये. ऐसी निर्भयता हमें धर्मसे मिलनी चाहिये जिसको आइन्स्टीन् साधनके रूपमें स्वीकारते हैं. अन्यथा मृत्युका देवता धर्मराज होनेके बजाय यमराज लगेगा!

यह अक्षरब्रह्मके पांच पहलु काल (time) कर्म (kinetic energy/action) स्वभाव (static enedrgy) प्रकृति (matter/mass) पुरुष (consiousness) की एक सिस्टम् है. इसमें अपने-आप सब कुछ अस्सी प्रतिशत हो रहा है या बीस प्रतिशत कुछ हम कर पाते हैं. सिस्टम्-प्रोवाइडर् ब्रह्म है और हम तो सिस्टम्-यूज़र् हैं. मोबाइल् हम नहीं बनाते, हम मोबाइल्के यूज़र् हैं. ऐसे ही काल कर्म स्वभाव

प्रकृति पुरुष की व्यवस्था बनानेके अर्थमें ब्रह्म कारयिता है और हम कर्ता हैं. जैसे हम मोबाइल् यूज़र् हैं तो उसमें आते अनावश्यक डेटाको डिलीट् करना टाईम टु टाईम चार्ज करते रहना, जिस एप्लीकेशनका काम हो उसके बटन दबाना आदि-आदि अपना उत्तरदायित्व है. नहीं तो मोबाइल् निरुपयोगी बन सकता है.

अणुभाष्यकार कहते हैं :

''मूलत: कर्तृत्व तो ब्रह्मगत ही होता है. ब्रह्मके सम्बन्धवश वह अन्यत्र जीवात्माके भीतर भी संक्रात हो पाता है, ऐश्वयादि गुणधर्मों तरह. क्योंकि सभी जीवात्मसमुदाय ब्रह्मके विविध अंशभूत हैं. नतु पाञ्चभौतिक जड़रूप नहीं पर सच्चिदानन्दके सदंशभूत अहंकारके जीवचेतनामें संक्रान्त होनेके कारण... उपनिषदोंमें कर्ता-कारयिता होना तो ब्रह्मका ही प्रतिपादित हुवा है... लौकिक क्रियाओंमें उसके कर्ता होनेकी कथा दोषरूप होती यदि किसी एक जीवात्माके कर्ममें उसका कर्तृत्व कहा गया होता तो... प्रयत्नका स्वातन्त्र्य (उक्त बीस प्रतिशत स्वातन्त्र्यके न्यायानुसार) **जीवात्मचेतनाका शक्य है. बादमें तो इससे अधिक जीवात्मचेतना कुछ कर पाने सक्षम भी नहीं. अत: स्वयं भगवान् करवाते हैं... कर्म करा कर फल प्रदानमें कृत कर्मोंकि सापेक्ष होते हैं, कर्म करवानेमें उसके प्रयत्नोंकी अपेक्षा रखते हैं, प्रयत्नमें जीवात्माके भीतर उभरी कामनाओंकी अपेक्षा रहती है, कामनायें सृष्टिप्रवाह चतुरस्स प्रभावोंसे उभरती हैं सो प्रवाहके प्रकारोंकी अपेक्षा रहती है. उस प्रवाहसे उबरनेके लिये तटबन्धके जैसी मर्यादा वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्धारित की गयी हैं. अत: ब्रह्मको ब्रह्मको सर्वकर्ता माननेमें कोई दोषकी गन्ध नहीं है और न**

एतावता उसके निरंकुश ऐश्वर्यमें कोई न्यूनता प्रकट होती है. जीवात्माकी सदसद्गति दिखलानेवाली मर्यादा भी भगवान्निधारित ही हैं. इन मर्यादाओंका बन्धन जीवात्माओंके लिये होता है परमात्माके लिये नहीं अपनी पुष्टिकी सामर्थ्यसे वह इन मर्यादाओंका उल्लंघन भी कर सकता है''.

(भावानुवाद अणुभा.२।३।४१-४२).

फल कैसे प्राप्त होगा? जैसा तुमने कर्म किया होगा. कर्मकी भी एक व्यवस्था बनाई है कि कामनाके अनुरूप हम कर्म करतें हैं. कामना यदि न हो तो वैसे कर्ममें हमारा कर्ममें हमारा बीस प्रतिशत स्वातन्त्र्य जुड़ा ही नहीं. कामना कैसे होती है? जो हमारे चारों और परिवेश है या सराउंडिंग् होती है तदनुसार कामना प्रकट होने लगती है. यदि तुम पानीमें रहते हो तो पानीकी कामना होगी. जमीनपे रहते हो तो जमीनकी कामना होगी. इस तरह वह सिस्टम्-प्रोवाइडर् होनेके अर्थमें कारयिता है.

ऐसी एक बात आईन्स्टीनके द्वारा कही गयी बतायी जाती है **"He has created he has degraded himself in such harmony of the interdependency of reward, action, desire, surrounding..."** ( ) इसमें जो संवादिताके स्तर पर अवतीर्ण होनेकी कथा है वह सिस्टम् प्रोवाईडर्की है. महाप्रभु साधनके रूपमें यही बात समझाना चाहते हैं कि फल स्वयं हमारे पर्यावरणके अनुरोधवश प्रकट हुयी कामना प्रयत्न रूपी साधन और उनके फल की संवादिता बन गया है. सो फलं वा साधनं यत्रका समीकरण हस्तगत हो जाता है.

आईन्स्टीन कहते हैं :

"Every thing is determined, the beginning as well as the end, by the forces over which we have no control. It is determined for insects as well as for the stars. Human beings, vegetable or cosmic dust, we all dance to a mysterious tune intoned in the distance by the invisible piper."

(रोनाल्ड डब्ल्यु क्लार्क द्वारा उद्धृत 'आईन्स्टीन:द लाईफ एंड टाईम' पृ.४२२).

आदि और अन्त सभी कुछ पूर्वनिर्धारित है. ऐसी किसी शक्तिके द्वारा जिसपर हमारा कोई बस नहीं. यह कीट और तारापिण्ड की तरह मानवसमुदाय, शाकफलादि और ब्रह्माण्डीय रजोमेघों की भी स्वरूप और गति को निर्धारित करती है. हम सब नाच रहें हैं और इस नाचका संगीत कौन बजा रहा है? एक अदृश्य वेणुवादक. उसकी धुनके ऊपर हम सभी नाच रहे हैं.

हमारे यहां आश्रयके पदमें हम यह पद कहां नहीं गाते **''चरण शरण ब्रजराजकुंवरके, हम विधि अविधि कछु नहीं जानत रहत भरोसे श्रीमुरलीधरके''** वह मुरली बजा रहा है और हम नाच रहें हैं, वह अदृश्य बंसीवादक है.

निष्कर्षके रूपमें आईन्स्टीन यह कहते हैं **"I am deeply religious nonbeliver...this is somewhat new kind of religion."** वस्तुतः पश्चिमी जगत्के लिये वस्तुतः कितनी नूतन उत्प्रेक्षा और आर्ष चिन्तनमें कितनी चिरन्तन मान्यता!

महाप्रभु भी कहते हैं कि यह सृष्टि भगवान्ने बनाई है ऐसा

जान लेनेसे कुछ लाभ नहीं परन्तु सृष्टिको लीलाके रूपमें माननेके कारण ही हम इस सृष्टिमें निर्भय रमण कर पायेंगे. क्योंकि इसे लीला माननेपर अपने-आपको थोड़ा-बहोत तो अनुकूल अपने-आपको बनाना ही पड़ेगा. अन्यथा मुरलीके धुनके साथ हमारा नृत्य विसंगत हो जायेगा! केवल कर्ता माननेपर तो जटिल प्रश्न उपस्थित होने लगेंगे कि भगवान्‌ने ऐसी सृष्टि क्यों बनायी? इससे बेहतर भी तो बना सकते थे! स्वयंके रमणार्थ बनायी तो हमें क्यों उसमें बलात् शिकार बनाया गया हमारे लिये बनायी तो हमारे प्रतिकुल कुछ भी होना नहीं चाहिये था. सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान-दयालु हो तो पाप दुःख रोग प्राकृतिक उपद्रव और मृत्यु का त्रास क्यों है. असर्वज्ञ अशक्त और निष्ठुर हो तो जड़ प्रकृतिकी कल्पना ही पर्याप्त ईश्वरके होने न होने से क्या अन्तर पड़ेगा. यह विषमता माया या शैतान के कारण हो भगवान् तो सर्वशक्तिमत्ता व्यर्थ सर्वशुभता सर्वशक्तिमत्ता हो माया या शैतान को वह स्वयं क्यों निवारित नहीं कर पाता?

इस तरह हम देख सकते हैं साकारब्रह्मवाद और आईन्स्टीनके चिन्तनकी की रेखा इस बिन्दुपर आकर जुड़ जा रही हैं. किसी शायरने ठीक ही कहा है कि देखा तो मेरा साया भी मुझसे जुदा मिला सोचा तो हरेक सिम्तसे कुछ सिलसिला मिला!

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ तादात्म्यमथवाशून्यम् ! ॥

(मंगलाचरणम्)

[१]पूर्णम् अदः [२]पूर्णम् इदं [३]पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते ॥
[४]पूर्णस्य पूर्णम् आदाय [५]पूर्णमेव अवशिष्यते ॥१॥[(१)१]

(विषयोपक्रमः)

पञ्चधा पूर्णता यैषा शून्यतायां कुतो नहि ? ॥
शून्यम् अदः शून्यम् इदं शून्यात् शून्यम् उदच्यते ॥२॥
शून्यस्य शून्यम् आदाय शून्यमेव अवशिष्यते ॥
वक्तुं शक्यं सर्वथैव नच तर्कविरुद्धता ॥३॥
ब्रह्मण्यपि तथा वक्तुं शक्या शून्यता यतः ॥
ब्रह्मभेदेन शून्यं यद् ब्रह्मैव तद्धि नापरम् ॥४॥
ब्रह्मण्यपि ततश्चैवं कुतो नो धर्मशून्यता ॥
शून्यभिन्नमशून्यं यद् न तच्छून्यं मतं क्वचित् ॥५॥
तस्माच्छून्यमशून्यं च ब्रह्मैव ब्रह्मवादिनाम् ॥
अतएवोच्यते ब्रह्मवर्णने द्वादशे तथा ॥६॥
सावधानतया तस्य विमर्शोऽत्र चिकीर्षितः ॥

(एतस्य भागवतवचनेन उपपत्तिः)

''संसुप्तवच्छून्यवत्'' [(२)] चैवं तथैवैकादशेऽपि च ॥७॥

''यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात् पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमात्रं नानापदेशैर् अहम् अस्य तद्वत् ॥
ब्रह्म स्वयञ्ज्योतिर् अतो विभाति

ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ।
एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन'' [(३)]

''आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थं एकमेवाविकल्पितम् ।
तन्माययाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥
वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत् ।
तयोर् एरेकतरो ह्यर्थः प्रकृति सोभयात्मिका ॥
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते'' [(४)]

शून्यता या त्रिधा प्रोक्ता सौगतैः शून्यवादिभिः ॥
लक्षणैः शून्यतैवैकापरोत्पत्त्या हि शून्यता ॥८॥
परमार्थशून्यता तासां तादात्म्यानतिरेकता ॥
परामर्शे कृते नूनं सिद्ध्यत्येव न संशयः ॥९॥
अतो वै वसुबन्धोक्तपरामर्शः चिकीर्षितः ॥

(तत्र वसुबन्धूक्तशून्यतास्वरूपम्)

''येन येन विकल्पेन यद्यद् वस्तु विकल्प्यते ।
परिकल्पितएवासौ स्वभावो न स विद्यते ॥
परतन्त्रस्वभावस्तु विकल्पः प्रत्ययोद्भवः ।
निष्पन्नस्तस्य पूर्वेण सदा रहितता तु या ॥
अतएव स नैवान्यो नानन्यः परतन्त्रतः ।
अनित्यतादिवद् वाच्यो नादृष्टेऽस्मिन् स दृश्यते ॥
त्रिविधस्य स्वभावस्य त्रिविधां निःस्वभावताम् ।
सन्धाय सर्वधर्माणां देशिता निःस्वभावता ॥
प्रथमो लक्षणेनैव निःस्वभावोऽपरः पुनः ।
न स्वयम्भाव एतस्येत्यपरा निःस्वभावता ॥
धर्माणां परमार्थश्च स यतस् तथतापि सः ।
सर्वकालं तथाभावात् सैव विज्ञप्तिमात्रता ॥

यावद् विज्ञप्तिमात्रत्वे विज्ञानं नावतिष्ठति।
ग्राहद्वयस्यानुशयः तावद् न विनिवर्तते॥
विज्ञप्तिमात्रमेवेदम् इत्यपि ह्युपलम्भतः।
स्थापयन् अग्रतः किञ्चित् तन्मात्रे नावतिष्ठते॥''(५)

(तदत्र ब्रह्मवादेन समाधानम्)

नोपादानं यदुत्पन्नं न भिन्नं चेति तत्त्वतः॥१०॥
तस्मादन्योन्यात्मकं नो जन्यं च जनकं कुतः ?॥
घटस्य व्यक्तेर्लक्षणं यत् तत् सर्वानुगतं मतम्॥११॥
न क्वचित् तादृशो दृष्टो यो घटः सर्वरूपवान्॥
लक्षणं चापि नो मान्यं तत्तद् घटनिरूपकम्॥१२॥
अतो हि लक्षणैः शून्यं सर्वमेव घटादिकम्॥
नहि भेदस्तु तादात्म्यं न भेदाभावरूपता॥१३॥
नोभयात्मकमेवापि तस्मात्तादात्म्यमुच्यते॥
नह्यमित्रो क्वचिन् मित्रं मित्राभावएव वा॥१४॥
भावरूपो मित्रभिन्नो मतोऽमित्रतया यतः॥
तादात्म्यमेवं वक्तव्यं सर्वसन्देहवारकम्॥१५॥
पारमार्थिकधर्माणां विज्ञप्तिमात्रताकथा॥
पुरःस्फूर्तिकरूपेण विज्ञप्त्यात्मकसाधिका॥१६॥
अन्यथा ह्यविज्ञप्तित्वे सिद्ध्येत् तस्य वस्तुता॥
अतस् त्रिविधशून्यं यत् तद्विज्ञप्त्यात्मकं हि चेत्॥१७॥
तादात्म्यं निखिलस्यापि विज्ञप्त्यैव प्रसिद्ध्यति॥
या भेदाभेदयोः तावदन्योन्याभावरूपता॥१८॥
परिकल्पिता मृषा सा वै दृष्टतर्कोपपत्तितः॥
सर्वेषामेव सर्वत्र दृष्टा योभयरूपता॥१९॥
सा यदि स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्!॥
अतादात्म्ये शून्यतायाः विज्ञप्त्यात्मकतापि हि॥२०॥
न प्रसिद्ध्येदतश्चांगीकर्तव्यं तद् सुबुद्धिभिः॥

ननु नेयार्थ-नीतार्थभेदेन शून्यता द्विधा॥२१॥
आद्यातु तथता चैवमपरा निःस्वभावता॥
तादात्म्यरूपा कतरा चैतयोर्वै निरुच्यताम्॥२२॥
इति चेद् यतरैवाभ्युपेयते सैवमुच्यते॥
वस्तुनस्त्रिविधस्यापि यादृश्युक्ता हि शून्यता॥२३॥
तादृशी ब्रह्मवादेऽस्मिन् भवेत् तादात्म्यरूपिणी॥
नेयार्थवक्तृबुद्धाच्च बुद्धो नीतार्थवाचकः॥२४॥
यद्यभिन्नो विरुद्धं तत् भिन्नश्चदेकता कुतः ?॥
अतो बुद्धस्योभयोपदेशनापि विमृश्यताम्॥२५॥
न तादात्म्यं विना काचिद् गतिर्वै बौद्धदर्शने॥
अतस्तादात्म्यशून्यत्वे सर्वथा तु समे मते॥२६॥
पूर्णस्यैषा पूर्णता हि यत् तादात्म्येन राजते॥
अन्यथा पूर्णतः पूर्णादानं नो शक्यते क्वचित्॥२७॥
पूर्णमेव समादाय शेषस्य पूर्णतापि नो॥
तदेवोक्तं हि छान्दोग्ये ''ऐतदात्म्यमिदं''(६) समम्॥२८॥
त्रिस्वभावनिःस्वभावौ देशितौ वस्तुगोचरौ॥
बुद्धेनैवं हि कृष्णेन गीतायामपि स्वस्य वै॥२९॥

(उपनिषदाद्युक्तब्रह्मशून्यतयोः स्वरूपतुलना)

''अमृतञ्चैव मृत्युश्च सद्-असत् चाहमर्जुन''(७).
''अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तत् न असद् उच्यते'' (८).
यत्तु नागार्जुन प्राह शास्त्रे मध्यमके पुनः॥
शून्यस्य लक्षणं तच्च नैवातीव प्रतीपकम्॥३०॥
''अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैर् अप्रपञ्चितम्॥
निर्विकल्पम् अनानार्थम् एतत् तत्त्वस्य लक्षणम्''(९)
श्रौतं ब्रह्म स्वप्रकाशं(१०) शान्तमात्मरतं(११) सदा॥
स्वात्मभिन्नैः प्रपञ्चैश्चाप्यप्रपञ्चितमेव(१२) हि॥३१॥
अस्वात्मकैः नामरूपकर्मादिभिः विवर्जितम्(१३)॥

निर्विकल्पसमं तच्चैकमेवाद्वितीयकम्[१४] ॥३२॥
नेह नानास्ति चैतस्मिन् नानात्वं तत उद्गतम्[१५] ॥
अतोऽपि शून्यं बौद्धानां न ब्रह्मातिविलक्षणम् ॥३३॥
अतो भागवते शास्त्रे ब्रह्मणो रूपवर्णने ॥
''सएव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः
सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः
सर्वप्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपक्षितः
एकएव पर्यवशेषितः''[१६] ॥
''कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत्।
अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तद् उच्यते''[१७] ॥
असत्त्वाद् आत्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चापि मृषा स्वप्नदृशो यथा''[१८] ॥
इत्येवं ब्रह्मणो रूपं श्रुतिगीतोदितं तथा ॥३४॥
श्रीमद्भागवते चापि ज्ञातव्यमिह वर्णितम् ॥

(उपसंहारः)

आचार्याभिमतं सर्वमन्योन्यात्मकतयोदितम् ॥
तद्ब्रह्मैक्यात्तु तादात्म्यवादोऽयं सुदृढो मतः ॥३५॥
गोस्वामिदीक्षितसुतश्यामेनेह वर्णितम् ॥
'तादात्म्यमथवा शून्यं' समाप्तिमधिगच्छति ॥३६॥
यच्च दुष्टं मदीयं तद् यद्यदुष्टं कृपाबलात् ॥
श्रुत्युक्तं ब्रह्म मद्वाणीमनोभ्यां मापसर्पतु ! ॥३७॥

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण विरचितं
तादात्म्यमथवा शून्यं
सम्पूर्णम्

..............✻.............

१.ईशा.उप.१.
२.भाग.पुरा.१२।४।२१.
३.भाग.पुरा.११।२८।१९-२३.
४.भाग.पुरा.११।२४।२-४.
५.विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः : २।२०-२७.
६.छान्दोग्योपनिषद् : ६।८।७.
७.भग.गीता.९।१९.
८.भग.गीता.१३।१३.
९.मध्यमकशास्त्रं : १८।९.
१०.''स्वप्रकाशोऽपि अविषयज्ञानत्वाद् जानन्नेव हि अत्र न विजानाति...'' (नृसिं.ता.उप.९।१).
११.''विश्वेश्वर! नमः तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् विश्वभुग् विश्वमायुः त्वं विश्वक्रीडारतिः प्रभुः नमः शान्तात्मने तुभ्यम्'' (मैत्राय.उप.५।१). ''अथात आत्मादेशः... एवं विजानन् आत्मरतिः आत्मक्रीडः... भवति'' (छान्दो.उप.७।२५।२).
१२.''ब्रह्मविद् आप्नोति परं तदेषा अभ्युक्ता : सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म... तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः. आकाशाद् वायुः, वायोः अग्निः, अग्नेः आपः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्याम् ओषधयः, ओषधीभ्यो अन्नम्, अन्नात् पुरुषः. सवा एष पुरुषो अन्नरसमयः'' (तैत्ति.उप.२।१).
१३.''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि... रूपाणि... कर्माणि बिभर्ति. तदेतत् त्रयं सद् एकम् आत्मा आत्मा उ एकः सन् एतत्त्रयम्'' (बृह.उप.१।६।१-३).
१४.''निर्विकल्पं निरञ्जनम्'' (ब्रह्मबि.उप.८) ''सत्त्वेव सौम्य! इदम् अग्रे आसीद् एकमेव अद्वितीयम्'' (छान्दो.उप.६।२।२).
१५.''मनसैव अनुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन'' (बृह.उप.४।४।१९). ''सर्वाणि भूतानि सर्वे च कामाः तस्मात् तस्य उदयं प्रति प्रत्यायनं

प्रति घोषा उलूलवो अनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि भूतानि सर्वे चैव कामा:''
(छान्दो.उप.३।१९।३).
१६.भाग.पुरा.६।९।३८).
१७.भाग.पुरा.७।१५।६३).
१८.भाग.पुरा.११।१३।३१).

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

(अ - ऐ)

अण्डं हिरण्यमयं चैव	(ब्रह्मा.पुरा.१।१।१)	भू.१२
अच्छरियं भन्ते	(दीघनिकाय.ब्रह्मजालसुत्त.१४८)	६८
अजायमानो बहुधा	(यजुस्संहि.३१।१६)	भू.२०
अत्यन्तासत्यपि अर्थे शब्दस्य ज्ञानजननात्	(ब्र.सू.भा.१।१।१)	३०
अथात आत्मादेशः... एवं विजानन्	(छान्दो.उप.७।२५।२)	१८३
अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीला	(भाग.सुबो.१।१।१७)	२३
अन्धःतमः प्रविशन्ति ये अविद्याम्	(ईशा.उप.९-११)	७,७५
अन्तरतः कूर्मं भूतं सर्पन्तम्	(कृ.यजु.तैत्ति.आर्.१।२३)	१०९
अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात्, अन्नाद्ध्येव	(तैत्ति.उप.३।१)	६६
अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैः अप्रपञ्चितम्	(मध्यमकशास्त्र.१८।९)	४६
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यति	(श्वेता.उप.३।१९)	१२१
अपुच्छशृंगैः तार्किकबलीवर्दैः	(बृह.उप.शां.भा.२।१।२०)	३२
अर्वाक देवाः अस्य विसर्जनेन अथ	(ऋक्संहि.११।१२९।१-३)	६२
अव्यक्तं कारणं यत् तत्	(ब्रह्मा.पुरा.१।२।८)	भू.१३
अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते	(ब्र.सू.भा.१।१।१)	२८,४३
अवचनम् बुद्धवचनम् इति	(लंकावतारसूत्र.६)	५७
अवाच्यं वाच्यम् इति वा वस्तुनि प्रतिपाद्यते	(न्या.सि.३।४६)	५०
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम्	(केनोप.२।३)	२७
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति	(भग.गीता.८।१८)	६०
असन्नेव स भवति 'असद् ब्रह्म' इति वेद चेद्	(तैत्ति.उप.२।६)	३६
'अस्ति ब्रह्म' इति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः	(तैत्ति.उप.२।६)	३६
'अस्ति' इति वदतो	(श्रीमदद्वयवज्रपादकृत अद्वयवज्रसंग्रह पृ.६२)	४१
'अस्ति' इति प्रत्ययो यश्च यश्च	(वि.चू.५७३)	४०
अहं ब्रह्मास्मि	(बृह.उप.१।४।१०)	७७
अहं श्लोककृद्! अहं श्लोककृद्!!	(तैत्ति.३।१०।६)	६७
अहम् अन्नम्! अहम् अन्नम्!!	(तैत्ति.उप.३।१०।६)	६७

अहो! अनुमानकौशलं दर्शितम्	(बृह.उप.शां.भा.२।१।२०)	३२
आत्मा वा इदम् अग्रे आसीत्	(बृह.उप.१।४।१-७)	५
आत्मैव इदम् अग्रे आसीत्	(बृह.उप.१।४।१)	११२
आप्यायन्तु मम अंगानि	( )	भू.३०
आपो ह वा इदम् अग्रे सलिलमेवास	(शत.ब्राहम.१।६।१)	१०८
आभास्वरलोकमें देवताओंकी स्थिति बनी	(दीघनिकाय.१।३९)	६०
आयामतो विस्तरतः	(भाग.पुरा.३।८।२५)	भू.२६
आश्चर्यो वक्ता कुशलो अस्य लब्धा आश्चर्यो	(कठोप.१।२।७)	३३
आसीद् इदं तमोभूतम्	(मनुस्मृ.१।५-३२)	भू.११
आसीज् ज्ञानम् अथोहि	(भाग.पुरा.११।२४।२)	भू.२५
इदम् अमृतम् इदं ब्रह्म इदं सर्वम्	(बृह.उप.३।५।१)	९८
इस पुनरुत्पादके(सृष्टि) प्रारम्भमें एक शून्य	(दीघनिकाय.१।४०)	६०
एकएव अग्निः बहुधा	(ऋक्संहि.८।५८।१०।२)	भू.२०
एकमेव अद्वितीयम्	(छान्दो.उप.६।२।३)	४७
एकोहं बहु स्याम्	(छान्दो.उप.६।२।३)	६१
एतावान् अस्य महिमा	(ऋक्संहि.१०।९०।१७)	भू.९
एवमेव एतस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः	(बृह.उप.२।१।२०)	६४
एवं कदाचिद् भगवान्	(त.दी.नि.१।३६)	भू.१५
एषो अस्य परमः आनन्दः एतस्यैव आनन्दस्य	(बृह.उप.४।३।३२)	२
ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं	(छांदो.उप.६।८।७)	भू.२०,८५
ऋषिणां पुनराद्यानां वाचम्	(उत्तररामचरितम्.१।१०)	५४

(क - ङ)

कः तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुम् अर्हति	(कठोप.१।२।२०-२१)	२७
कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनः अन्यथा	(त.दी.नि.१।३७-४१)	६९
कर्तृकरणाद् धात्वर्थे	(पा.गणपाठ)	१
कथम् असतः सद् जायेत	(छान्दो.उप.६।२।२)	भू.२७
कस्मिन्नु खलु आपः ओताः च प्रोताः च	(बृह.उप.३।६।१)	९०

काम एष क्रोध एष	(भग.गीता.३।३७)	१०३
कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः	(न्या.कु.५।१)	३४
कालः स्वभावः नियतिः	(श्वेता.उप.१।२)	भू.२२
किं पुन तद् वेदान्तवाक्यं	(ब्र.सू.शा.भा.१।१)	३४
के यूयम् अनुमान	(बृह.उप.शां.भा.२।२।२०)	३२
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुतः	(ऋक्.सं.८।७।१७।६-७)	११०
खिड्डोपदोसिका नाम देवा	(दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४५)	६६
गोप्यः कामाद् भयात् कंसो	(भाग.पुरा.७।१।३०)	१०३
(च - ञ)		
जडो जीवोऽन्तरात्मेति	(त.दी.नि.१।३०)	८७
जन्माद्यस्य यतो अन्वयाद्	(भाग.पुरा.१।१।१)	५०
(त - न)		
तं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि	(बृह.उप.३।९।२६)	२८,४३
ततो भूयइव ते तमो य उ	(ईशा.उप.९।११)	७५
तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्	(तैत्ति.उप.२।६)	६१
तदा संहत्य च	(भाग.पुरा.२।५।३३)	भू.९
तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा	(बृह.उप.१।६।१)	२०
न स वेद यथा पशुरेव	(बृह.उप.१।४।१०)	६६
तदेव अग्निः,तद् वायुः	(श्वेता.उप.४।२)	७९,८०
तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत	(तैत्ति.उप.२।७)	७१
'तन्तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'	(ब्र.सू.भा.१।१।१)	४३
तब कोई देवता अपने आयुःक्षय	(दीघनिकाय.१।४०)	६१
तभी कुछ दूसरे प्राणी (देवता)	(दीघनिकाय.१।४१)	६२
तस्मातिह त्वं, आनन्द,	(दीघनिकाय.ब्रह्मजालसुत्त-१४८)	६८
तस्माद् एकाकी न रमते स	(बृह.उप.१।४।३)	६२
तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः	(तैत्ति.उप.२।१।१)	८८,११४
तस्मै नमो भगवते	(भाग.पुरा.२।५।११)	भू.२६

तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं	(कठोप.१।२।२३)	४४
ते असुरा आत्तवचसो हेऽलवो	(शत.ब्रा.३।२।२।२३)	११३
ते एवमाहंसु-'एवं खो नो आवुसो	(दीघ.नि.पाथि.सु.४०।४५)	६८
त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म	(बृह.उप.१।६।१-३)	भू.२०,७
त्रयस्त्रिंशद् देवा एके ब्रह्मविदो विदु	(अथर्व.संहि.१०।७।२७)	२०
दूसरे भी जीव मेरी ही तरह यहां	(दीघनिकाय.१।४२)	६३
द्यावाभूमी जनयन् देवः एकः	(ऋक्संहि.१०।८१।३)	८९,११४
द्रव्यं कर्म च कालः	(भाग.पुरा.२।५।१४)	भू.२८
द्वयाः ह प्राजापत्याः	(बृह.उप.१।३।१)	८०
द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं च	(बृह.उप.२।३।१-६)	९९
न अयम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो	(कठोप.१।२।२३)	४४,४८
न अवेद् विद् मनुते तं बृहन्तम्	(तैत्ति.ब्रा.३।१२।९।७)	१०५
न असद् आसीद् नो सद्	(ऋक्संहि.१०।११।१२९।१-३)	भू.११,५९
'न' इति 'न' इति 'नहि एतस्मात्'	(बृह.उप.२।३।१)	३९
न एतद् एवं यथाऽऽत्थ त्वं यद् अहं	(भाग.पुरा.११।२२।५)	१०१
न चैकं तद् अन्यद् द्वितीयं कुतः स्याद्	(दशश्लोकी.१०)	७८
न भूमिः न तोयं न तेजो न वायुः	(दशश्लोकी.१)	३९
नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्भुत्कर्मणे	(त.दी.नि.१।१)	१६,१८
नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं	(बृह.उप.२।४५-६)	४
न स वेद यथा पशुरेव	(बृह.उप.१।४।१०)	६६
नहि इदम् अतिगम्भीरं	(ब्र.सू.शां.भा.२।१।३।११)	२८
नहि विरोधः उभयं भगवति	(भाग.पुरा.६।९।३६)	९९,१०२
नित्यदा सर्वभूतां ब्रह्मादिनाम्	(भाग.पुरा.१२।४।३५)	भू.२९
निर्विकल्पं निरञ्जनम्	(ब्रह्मबि.उप.८)	१८३
निषेधशेषो जयताद् अशेषः	(भाग.पुरा.८।३।२४।)	४३
नेह नानास्ति किञ्चिन्	(बृह.उप.४।४।१९)	४७
नैव इह किञ्चन अग्रे	(बृह.उप.१।१।१)	भू.१०
नो चेत्, पूर्वापरोक्ति	(तत्त्वमुक्ताकलाप.३।३)	५०

न्यग्रोधफलम् अतः आहर (छान्दो.उप.६।१२।१) ३६

(प - म)

पतङ्गमक्तम् असुरस्य (कृष्ण.यजु.तैत्ति.आर.१०।१७७।१) ८७
परन्तु वह वहां बहुत समय तक (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४१) ६१
पंगुलांधा यथा (सच्च.निब्बान.पंचमो परि.३१२-३१३) १९
परिहृतस्तु ब्रह्मवादिना स्वमते (ब्र.सू.शां.भा.२।१।२९) ५१
पाटच्चरलुण्ठिते वेश्मनि (लौकिकन्यायसाहस्री.६७२) ३२
पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः (बृह.उप.२।५।१८) ११३
पुरुषएव इदं सर्वं (ऋक्संहि.१०।९०।१७) भू.२१
पृथिवी पूर्वरूपं द्यौः उत्तररूपं वायुः (तैत्ति.उप.१।३।१) १२७
प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो (ब्र.सू.३।२।२२) ४३,४४
प्रकृतिः पुरुषः च उभौ (भाग.पुरा.११।२२।२६) भू.२८
प्रजापतिः आत्मनो वपाम् (तैत्ति.सं.२।१।१।४) ११८
प्राचीनैः व्यवहारसिद्धविषयेषु (सि.ले.सं.२) भू.१५
प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् (छांदो.उप.५।१८।१) ७४
बृहत्वाद् ब्रह्मणत्वाद् च यद्रूपं (विष्णु.पुरा.१।१२।५५) ८९
ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि (बृह.उप.१।६।१-३) १९
ब्रह्म वा इदम् अग्र आसीत् तद्देवान् (शत.ब्रा.२।३।१-३) ११४
ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचित् (पत्रा.३) ४६
ब्रह्मविद् आप्नोति परं तदेषा (तैत्ति.उप.२।१) १८३
ब्रह्माणं विष्णुमीश्वरं प्रधानं (लंकावतारसूत्र.३।८५।२०) ७९
ब्रह्माण्डानि बहूनि (प्रबो.सुधा.आनु.प्रक.२४२) भू.२७
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति (त.दी.नि.१।६) ४९
भवान् एकः शिष्यते शेष संज्ञः (भाग.पुरा.१०।३।२५) ११५
भिक्षुओं! उस ब्रह्मविमानमें (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४२) ६२
भिक्षुओं! जो प्राणी सर्वप्रथम (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४३) ६५
भिक्षुओं! फिर धीरे-धीरे एक (दीघनिकाय.ब्रह्मजालसूत्र.१।४०) ६०

भिक्षुओं! बहुत काल बीता हे के (दीघनिकाय.१।३९) ५८
भूतादिः महति (सुबा.उप.२) ५९
भूमिः आपो अनलो वायुः खं मनो (भग.गीता.७।४-५) १०
मनसैव अनुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति (बृह.उप.४।४।१९) १८३
मन्युरकार्षीत् नाहं करोमि मन्युः (महा.नारा.उप.३।१८।३) ९६
मा अतिप्राक्षी मां ते मूर्धा (बृह.उप.३।६।१) ९१
मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य (भाग.पुरा.११।२१।४२) १०१
मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदः (अम.१।४।२४-५) १
मुदित रहनेवाले प्रभावान् अंतरिक्षमें (दीघनिकाय.१।३९) ६०
मेरे इस ब्रह्मविमानमें कोई दूसरा (दीघनिकाय.१।४१) ६२
मैंने ही वर्तमान तथा भविष्यमें (दीघनिकाय.१।४२) ६३

(य - व)

य आत्मनि तिष्ठन् (शत.ब्रा.१४।५।३०) ८९
यः प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यति स (बोधिचर्यावतार.पं.९।१४) ६५
यः सर्वेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो (बृह.उप.३।७।१५) ९८
यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः तानि (तैत्ति.आ.३।१३।२) ११८
यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते (तैत्ति.उप.३।१) ३४
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य (तैत्ति.उप.२।४।५) ४३
यत् सत् तत् क्षणिकम् (क्षणभंगसिद्ध.१) ३६
यथा अग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगाः (बृह.उप.२।१।२०) ८८
यथा उर्णनाभिः सृजते गृह्यते च (मुण्ड.उप.१।१।७) १२४
यद् मदन्यद् न अस्ति कस्मान्नु (बृह.उप.१।४।३) ६२
यन्मूर्न्धि मे श्रुतिशिरस्सु (आळवन्दारस्त्रोत्र.६-७) १६
यन्न दुःखेन सम्भिन्नं नच ग्रस्तम् ( ) ३
यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष (कठोप.१।२।२३) ४४
यमकं नामरूपञ्च (अभिध्यावतार.परि.१८।१२१५) १९
यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येव (ईशा.उप.६-७) ७

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा	(अथर्व.संहि.१०।७।२७)	१९
य: प्रतीत्यसमुत्पादम्	(बोधिचर्यावतार.पं.)	६५
यहां(ब्रह्मविमानमें) भी वो	(दीघनिकाय.१।४०)	६१
ये चैव सात्त्विका: भावा:	(भग.गी.७।१२-१३)	११
येन अहं न अमृता स्याम् किम् अहं	(बृह.उप.२।४।१-३)	४
यो देवानां नामधा एकएव तम्	(ऋक्संहि.१०।८२।३)	८०
यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखम्	(छान्दो.उप.७।२३।१)	२
रूपाद्यभावाद् हि न अयम् अर्थ:	(ब्र.सू.शां.भा.२।१।३।६)	२९
लम् यलिद, व लम् यूलद	(कुर्आन-शरीफ,सूरतुल् इख्लेसि.११२)	३३
वाच्यत्वं वेद्यतां च स्वयम् अभिदधति	(तत्त्वमुक्ताकलाप.३।३)	४२,४९
विकारै: सहितो युक्तै:	(भाग.पुरा.३।११।३७)	भू.२४
विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म	(तैत्ति.उप.३।१)	३५
विद्याऽविद्ये हरे: शक्ती माययैव	(त.दी.नि.१।३१)	७७,९६
विद्यां च अविद्यां च य: तद् वेद उभयं सह	(ईशा.उप.९।११)	७६,९६
विराजनात् संपूर्णाक्षरा	(निरु.७।३।१३।९)	भू.१०
विश्वेश्वर! नम: तुभ्यं विश्वात्मा	(मैत्राय.उप.५।१)	१८३
वेदा: श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि	(त.दी.नि.१।७-८)	८२
वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रै: उदाहृत्य	(ब्र.सू.शां.भा.१।१।२)	३४
वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो	(त.दी.नि.१।४५-४६)	७५
व्याघातावधिराशंका तर्क: शंकावधि	(न्याय.कुसु.)	९१

(श - ह)

शास्त्रयोनित्वात्	(ब्र.सू.१।१।१-२)	४९
श्रवणायापि बहुभि: यो न लभ्य:	(कठोप.१।२।७)	२६
श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण	(त.दी.नि.१।७०)	भू.२२
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्	(भग.गीता २।२९)	२६
स 'भाण' अकरोत् सैव वाग् अभवत्	(बृह.उप.१।२।४)	६६
स 'भू:' इति व्याहरत् स भूमिम्	(तैत्ति.ब्रा.२।२।४।१-२)	५३
स इममेव आत्मानं द्वेधापातयत्	(बृह.उप.१।४।३)	५२
स ईक्षाञ्चक्रे	(प्रश्नो.उप.६।३)	६०
सदेव सौम्य !इदम् अग्रे	(छांदो.उप.६।२।१)	भू.२०
स भगव: कस्मिन् प्रतिष्ठित: स्वे	(छान्दो.उप.७।२४।१)	११२,१२४
समुद्रविष्टाश्च भवन्ति	(महायानसूत्रालंकार.बोध्यधिकार.९।८३-८५)	५९
स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न	(बृह.उप.१।४।४)	६२,६३
संसुप्तवच्छून्यवत्	(भाग.पुरा.१२।४।२१)	१७८
सत्त्वेव सौम्य! इदम् अग्रे आसीद्	(छान्दो.उप.६।२।२)	१८३
सत् च त्यत् च अभवत्. निरुक्तं च	(बृह.उप.२।३।१)	९९
सत्यं-ज्ञानम्-अनन्तम्	(तैत्ति.उप.२।१)	८
सन्मूलम् अन्विच्छ सन्मूला:	(छान्दो.उप.६।७।६-७)	१२
सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि	(त.दी.नि.१।७०)	४८
सर्वं खलु इदं ब्रह्म	(छान्दो.उप.३।१४।१)	भू.२१
सर्वाणि भूतानि सर्वे च कामा: तस्मात्	(छान्दो.उप.३।१९।३)	१८३
सर्वाणि रूपाणि विचित्य	(चित्यु.१२।७,महावा.उप.)	११३
सर्वे होतारो यत्र एकनीडं भवन्ति	(तैत्ति.आर.३।११।१)	२०
सर्वो हि आत्मास्तित्वं प्रत्येति	(ब्र.सू.शां.भा.१।१।१)	७३
स होवाच गार्गि ! मा अतिप्राक्षी	(बृह.उप.३।६।१)	९०
सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्	(तैत्ति.आर.३।१३।२)	९
सुखन्तु इदानीं त्रिविधं शृणु:	(भग.गीता.१२।३६-४०)	९
सुषुप्त्येकसिद्ध: तदेको अवशिष्ट:	(दशश्लोकी.१)	४०
सृष्टे: उक्ता ह्यनेकधा	(त.दी.नि.४०)	६६,८८
सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति!	(तैत्ति.उप.२।८)	२
सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय!	(तैत्ति.उप.२।६)	भू.२१,८
सो अन्ते वैश्वानरो भूत्वा	(सुबा.उप.२)	५९
सो अबिभेत् तस्माद् एकाकी	(बृह.उप.१।४।३)	६२
स्वप्रकाशोऽपि अविषयज्ञानत्वाद्	(नृसिं.ता.उप.९।१)	१८३
होति खो सो, भिक्खवे	(दीघनिकायपाली.ब्रह्मजालसुत्त. १।३९)	५८